हिंदू-जीवन का रहस्य

संपादक
श्रीदुलारेलाल भार्गव
(सुधा-संपादक)

गंगा-पुस्तकमाला का अस्सीवाँ पुष्प

हिंदू-जीवन का रहस्य

लेखक

भाई परमानंद एम्० ए०

प्रकाशक

गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय

२९-३०, अमीनाबाद-पार्क

लखनऊ

प्रथमावृत्ति

जिल्ददार १।=)] संवत् १९८५ वि० [सादी ॥।=)

प्रकाशक
श्रीदुलारेलाल भार्गव
अध्यक्ष गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय
लखनऊ

मुद्रक
श्रीदुलारेलाल भार्गव
अध्यक्ष गंगा-फ़ाइनआर्ट-प्रेस
लखनऊ

भूमिका

"धर्म एव हतो हन्ति, धर्मो रक्षति रक्षितः।"

"जो हठ राखै धर्म को, त्यहि राखै करतार।"

एक दिन अपने कमरे में अकेला बैठा मैं हिंदू-जाति के भाग्य पर विचार कर रहा था। कभी मेरे मस्तिष्क में इस जाति के अतीत काल का ध्यान आ जाता, मेरा मन सहस्रों वर्षों का समय लाँघ जाता, मैं सोचता, इसी पुण्य-भूमि की पवित्र नदियों के तटों पर ऋषिगण वैदिक मंत्रों का गान करते थे। यह वही पुण्य-भूमि है, जहाँ वनों में पर्णकुटीर के अंदर बैठे ऋषिगण ब्रह्मांड की कठिन समस्याओं पर विचार किया करते थे। वे अपने विचारों को रहस्यमय सूत्रों के रूप में लिखकर हमारे लिये छोड़ गए हैं।

यह वही भूमि है, जहाँ के दार्शनिकों ने संसार के दर्शन-शास्त्र की नींव डाली है। इसी पवित्र भूमि में उस अद्वितीय आत्मा बुद्ध ने जन्म लिया था, जिसने सर्वव्यापी प्रेम और भ्रातृभाव को मानव-प्रकृति में ढालने का अनुपम दृश्य उपस्थित कर उसके प्रचार के लिये बौद्ध-धर्म की संस्था की स्थापना की थी।

यह वही पुण्य-भूमि है, जिसमें मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने जन्म ग्रहण कर बाल्यकाल से ही असुरों और राक्षसों का वध कर आर्य-जाति की रक्षा का व्रत ग्रहण किया था। इस जाति में जन्म ग्रहण कर उन्होंने आर्य-सभ्यता की पताका को न केवल दूर दक्षिण में ही, अपितु लंका तक फहराया था। आज दिन तक उनके और उनकी सहधर्मिणी माता सीता के परमोज्ज्वल चरित्र हमारी जाति के लिये आदर्श

रूप बने हुए हैं, और उनका नैतिक प्रभुत्व हमारे हृदयों पर बना हुआ है।

इसी पुण्य-भूमि ने उस अद्वितीय नर-रत्न को जन्म दिया था, जो बाल-मंडली में खिलाड़ियों का मुखिया था। जिसकी सुरीली वंशी की तान पर वहाँ के पशु-पक्षी मोहित थे। वीरता में जिसका लोहा बड़े-बड़े नर-पुंगव भी मानते थे, जिसका दार्शनिक ज्ञान संसार के दर्शन-शास्त्रों से ऊँचा है। जो आध्यात्मिक ज्ञान का सबसे बड़ा गुरु है, जो मनुष्यों और देवतों का शिरोमणि है, उस भगवान् कृष्ण को जिस भूमि ने जन्म दिया है, यदि वह इसके पश्चात् अन्य किसी मनुष्य को जन्म न देती, तो भी इसका जन्म सफल हो चुका था। भगवान् कृष्ण के सदृश व्यक्ति को उत्पन्न करने के लिये इस जाति को अपनी संपूर्ण शक्तियाँ उसी प्रकार खर्च करनी पड़ी हैं, जिस प्रकार एक हीरक-खंड को उत्पन्न करने के लिये एक भूमि को अपनी सब शक्तियों को व्यय करना पड़ता है। इस जाति ने युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन के समान मनुष्य पैदा किए। इस जाति ने विक्रमादित्य, प्रताप तथा शिवाजी के समान वीरों को जन्म दिया है। उन सबके चित्र मेरी आँखों के सामने एक-एक करके फिर गए। दूसरे क्षण में इस जाति की वर्त-मान अवस्था का चित्र मेरी आँखों के सामने आ गया। मैं विस्मित था, क्या था, क्या हो गया, और अभी क्या होगा !

हिंदू-संतान की मुखाकृति देखकर यही संदेह होता है, क्या सचमुच यह उन्हीं पूर्वजों के वंशज हैं? न मुख पर वह तेज है, न शरीर में कोई बल का चिह्न। स्त्रियों की अवस्था उससे भी अधिक चिंताजनक है! जो आता है, वही बहका ले जाता है। कहाँ वह सीता, द्रौपदी और पद्मिनि थीं, जो प्रबल शत्रुओं का मुक़ाबला करने से भी नहीं झिझकती थीं, और अपनी मान की रक्षा के लिये अपनी जान तक पर खेल जाने के लिये तत्पर रहती थीं।

हमारे ब्राह्मण और क्षत्रिय भी नाम-मात्र को हैं। न ब्राह्मणों में त्याग है, न क्षत्रियों में वीरता। वैश्यों में न दान है, न व्यवसाय। सब नीच कार्यों में तथा वर्ण के मिथ्या अभिमान में फँसे मर रहे हैं। हमारे देश के राजा हैं, उन्हें न देश का ध्यान है, न धर्म की चिंता। प्रजा के दुःख हृदय को दहला देते हैं। करोड़ों को पेट-भर खाना नहीं मिलता। लाखों नित्य भूख और रोग के कारण मृत्यु का शिकार बन रहे हैं। बच्चों की शिक्षा उन्हें देश और धर्म से विमुख कर रही है। जाति के नेताओं की ओर आँख उठाकर देखते हैं, तो और भी निराशा होती है। इस समय इस जाति की अवस्था उस असहाय हिरनी के समान है, जिसे एक ओर से शिकारी ने, दूसरी ओर से कुत्तों ने, तीसरी और चौथी ओर से अग्नि तथा जल ने घेर रक्खा है। उसका उस दिन का उत्पन्न हुआ बच्चा भी उसके साथ है। दीन हिरनी भाग नहीं सकती, रक्षा का कोई उपाय नहीं, केवल भगवान् उसके सहायक हैं।

मैं विचारों में मग्न था, हृदय में एक प्रश्न उठा, भारत का वह समय फिर कभी लौटकर आवेगा या नहीं? मुख से एक आह निकली। एक पंजाबी भाई का कहा हुआ यह पद मुझे याद आ गया—"ऋषियों के वो ज़माने इक बार फिर भी आ जा।" विचारों की अवस्था स्वप्न के समान थी। अचानक एक व्यक्ति ने कमरे में प्रवेश किया। उसने मुझे संबोधन कर कहा—"मैं बहुत दूर से आपके दर्शन के लिये आया हूँ। मैं आपसे कुछ प्रश्न पूछना चाहता हूँ, क्या आप मेरे प्रश्नों का उत्तर देने की कृपा करेंगे?" मेरी स्वप्नावस्था दूर हो गई। मैंने उत्तर दिया, मैं उपस्थित हूँ, कहिए आप क्या प्रश्न करते हैं। इसके पश्चात् जो वार्तालाप हम दोनों में हुई, वह मैं पाठकों के सम्मुख उपस्थित करता हूँ।

प्रश्न—हिंदू-संगठन से आपका क्या अभिप्राय है? हम सैकड़ों वर्षों से इस देश में रहते आए हैं, परंतु इससे पूर्व हमने इसकी चर्चा कभी नहीं सुनी?

उत्तर—हिंदू-संगठन का अभिप्राय है कि हिंदुओं के अंदर एक संगठन (Organization) उत्पन्न कर उन्हें सशक्त बनाया जाय। सूत के धागे जब तक छिन्न-भिन्न रहते हैं, उनमें कोई बल नहीं रहता; परंतु जब उन्हें इकट्ठा बटकर रस्सी बना दी जाती है, तो उसे तोड़ना कठिन हो जाता है। हिंदू इस समय कच्चे धागों की तरह निर्बल हैं। इनमें एक बट की आवश्यकता है। संगठन से इस बट ही का अभिप्राय है।

प्रश्न—मुझे हिंदू-शब्द पर ही बड़ी आपत्ति है। हमने सुना है कि हिंदू-शब्द के अर्थ हां चोर, काला और काफिर हैं। हमें यह शब्द छोड़ देना चाहिए, आप इस शब्द का प्रयोग क्यों करते हैं ?

उत्तर—आपको हिंदू शब्द का जो अर्थ बताया गया है, उसमें केवल इतनी ही सचाई है कि जब यह देश विदेशियों के अधीन हो गया, तो उन्होंने अपनी घृणा प्रकट करने के लिये इस शब्द को घृणित बना दिया। इसी शब्द के अर्थों के बुरा होने का कारण हमारी अवनति और पराधीनता है, यदि हम उन्नति कर लें, तो यह शब्द ऊँचा बन जायगा।

प्रश्न—इस शब्द का वास्तविक उद्भव क्या है ?

उत्तर—यह शब्द वैदिक काल से चला आया है। पंजाब की पाँच नदियों के साथ एक सरस्वती और दूसरी ओर सिंधु को मिलाकर इस देश को सप्त-सिंधु और इस देश के निवासियों को सिंधु कहते थे। भारत का फ़ारस से बहुत प्राचीन संबंध है। फ़ारसी-भाषा में 'स' के स्थान में 'ह' हो जाने से इस देश का नाम हप्तहिंदू हो गया। इसी प्रकार यूनानी में 'ह' के गिर जाने से इस देश का नाम 'इंडो' इंडिया हो गया। फ़ारसी लोगों की धर्म-पुस्तकों में हमारे लिये 'हसहिंदवः' शब्द ही प्रयुक्त हुआ है। चीनी यात्रियों की पुस्तकों से भी जान पड़ता है कि 'हिंदू' शब्द गौरव-सूचक रहा है। भारत-

वासी अपने को आर्य ही कहते थे; परंतु जब मुसलमानी काल में हिंदी-भाषा का प्रचार हुआ, तो हिंदू-कवियों ने हिंदू-शब्द को आदर के योग्य समझ अपना लिया। हिंदी-भाषा के प्रयोग के साथ-साथ ही हिंदू-शब्द भी अधिक-अधिक प्रचलित होता चला गया।

प्रश्न—क्या हिंदू भी किसी मज़हब या मत का नाम है?

उत्तर—नहीं हिंदू किसी मज़हब अथवा मत का नाम नहीं है। हिंदुओं में सैकड़ों ऐसे मत हैं, जो परस्पर भिन्न-भिन्न होते हुए भी अपने को हिंदू ही कहते हैं हिंदू एक जाति का नाम है, और इससे उन लोगों का अभिप्राय है, जो इस देश में रहा करते थे और इस देश के निवासी थे।

प्रश्न—आप मत और जाति में क्या भेद समझते हैं?

उत्तर—मज़हब या मत से विशेष सिद्धांतों और नियमों में विश्वास रखने का अभिप्राय है। इन नियमों का मानना मत के अनुयायियों के लिये आवश्यक रहता है। जाति में इन सिद्धांतों के अतिरिक्त अन्य बातें भी होती हैं, जैसे एक देश के निवासी होना, देश को अपना समझकर उससे प्यार और उसकी रक्षा करना, एक भाषा का बोलना और उसके साहित्य को अपना समझना। इतिहास का एक होना अर्थात् विशेष-विशेष घटनाओं से गौरव और परस्पर सहानुभूति अनुभव करना। वंश-परंपरा का एक होना तथा विशेष व्यक्तियों को जातीय वीर समझ वीर-पूजा करना जातीयता के आवश्यक अंग हैं। मज़हब, मत या संप्रदाय किसी का कुछ हो, वह हिंदू ही है, और संसार की अन्य जातियाँ हिंदू-शब्द का इन्हीं अर्थों में प्रयोग करती हैं।

प्रश्न—आप सांप्रदायिक और राष्ट्रीय (वा जातीय) विचारों में से किसे अधिक महत्त्व देते हैं?

उत्तर—इसमें संदेह नहीं कि मज़हब या मत में मनुष्यों को एक

श्रृंखला में बाँध रखने की अद्भुत शक्ति है, परंतु जाति में समय के व्यतीत होने के साथ-साथ नए-नए मज़हब अथवा संप्रदाय फूटते जाते हैं और जाति को छोटे-छोटे टुकड़ों में बाँट देते हैं, जो भी कोई नया मत या मज़हब पैदा होता है, वही इस बात का दावा करता है कि वह अन्य सब मतों को मिटाकर एक कर देगा। परिणाम यह होता है कि सैकड़ों में एक और की वृद्धि हो जाती है। राष्ट्रीयता से जो एकता उत्पन्न होती है, वह उत्तेजना-शून्य होने पर भी अधिक टिकाऊ और वास्तविक होती है। राष्ट्र में जो विचार-स्वतंत्रता मनुष्य को मिलती है, वह मज़हब में मिलनी असंभव है। राष्ट्र में मनुष्य अपनी बुद्धि के अनुसार सिद्धांतों पर चल सकता है, और विचारों-संकीर्णता के बंधन से छुट्टी पा जाता है। मज़हब में विचार-संकीर्णता एक आवश्यक अंग है, और यही संसार के अनेकों युद्धों तथा रक्तपात का कारण है। मज़हब मनुष्यों में विचार और विश्वास के आधार पर भेद करता है; परंतु राष्ट्रीयता का विचार इन भेदों को दूर कर एकता की नींव रखता है।

प्रश्न—क्या कोई अन्य विचार भी मज़हब या मत के समान एकता उत्पन्न कर सकता है ?

उत्तर—राष्ट्रीय भाव के विषय में यह कह देना पर्याप्त होगा कि अपने पूर्वजों के देश को मातृ-भूमि तथा पुण्य-भूमि मानना वह भाव है, जिसे यदि पूरा विकास मिले, तो मज़हब से अधिक एकता का कारण बन सकता है। इसी भाव के आधार पर सच्ची एकता और राष्ट्रीयता बन सकती है। जिस समय यूसफ़ अपनी प्यारी मातृ-भूमि कानन से बहिष्कृत होकर मिसर का सम्राट् बना हुआ था, तब देश-प्रेम से विह्वल होकर ही उसने यह शब्द कहे थे कि मिसर के सम्राट् बनने से कानन की गलियों का भिक्षुक बनना कहीं अच्छा है। देश-प्रेम के भाव से पूर्ण होने पर हमें अपने देश की भूमि का एक-एक

कण पूजा के योग्य जान पड़ने लगता है। इस मिट्टी में उन महापुरुषों की भस्म मिली हुई है, जिन्होंने राष्ट्र के हित के लिये अपने जीवन उत्सर्ग किए थे। जापान की सारी उन्नति का कारण देश-प्रेम ही है। एक जापानी की दृष्टि में अपने देश का सम्मान उसकी अपनी कन्या के सम्मान से कहीं अधिक प्यारा है। जापान को बुरा-भला कहने पर उसकी आँखों में ख़ून उतर आवेगा, और वह मरने-मारने पर तत्पर हो जायगा। इस बात में अमेरिका भी जापान का अनुकरण कर रहा है। अमेरिका के स्कूलों में किसी भी प्रकार की सांप्रदायिक-शिक्षा नहीं दी जाती; परंतु प्रत्येक अध्यापक को स्कूल में कार्य आरंभ करने से पूर्व यह प्रतिज्ञा करनी पड़ती है कि वह प्रत्येक बालक को मातृ-भूमि के झंडे के सम्मान के लिये मरने-मारने के लिये तत्पर कर देगा।

प्रश्न—क्या इस देश में इस प्रकार की एकता का विचार पहले भी कभी रहा है?

उत्तर—यह कहानी कुछ लंबी है। पहले इस देश में न बहुत-सी जातियाँ थीं, न बहुत-से मत। यहाँ एक ही जाति थी, उसे चाहे 'हिंदू' कहते या 'आर्य'। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सभी एक जाति के अंग थे। इनके जीवन के उद्देश्य अपने को जाति की सेवा के लिये उपयोगी प्रमाणित करना था। अधिक समय बीत जाने पर जाति में अवनति के कारणों ने प्रवेश किया। भगवान् बुद्ध ने जाति को नए ढंग पर ढालना चाहा। उन्होंने व्यक्ति को प्रधानता दी। उनका विचार था, ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य की क्या आवश्यकता है, प्रत्येक मनुष्य को उसके कर्म ही आगे-पीछे ले जाते हैं। उन्होंने सबके सामने निर्वाण का आदर्श रक्खा। उनका उपदेश था कि यह संसार दुःख का स्थान है, इसके त्याग में और इच्छाओं के दमन में ही सुख-शांति है। व्यक्तिगत लाभ के विचार में हिंदू जातीयता को भूल गए और व्यक्तित्व में ही लीन हो गए।

प्रश्न—व्यक्तिगत और जातीय जीवन में क्या अंतर है ?

उत्तर—वैदिक धर्म या सभ्यता की दृष्टि से मनुष्य के वैयक्तिक जीवन का कोई अस्तित्व नहीं। ब्राह्मण का सारा जीवन जाति के हित के लिये होता था। क्षत्रिय के जीवन का उद्देश्य युद्ध में प्राण-त्याग था, जो मनुष्य अपना कर्तव्य पूरा नहीं करता था, वह पतित समझा जाता था, चाहे व्यक्तिगत दृष्टि से उसका जीवन कितना ही उच्च क्यों न हो। व्यक्तिगत कर्मों का प्रभाव एक व्यक्ति तक परिमित रहता है; परंतु जातीय कर्मों का प्रभाव संपूर्ण जाति पर पड़ता है। जयचंद्र-जैसा एक क्षत्रिय अपने एक काम से सारी जाति को नष्ट कर देता है।

प्रश्न—हिंदुओं को विशेषतः इस समय संगठन करने की क्या आवश्यकता है ?

उत्तर—अपना पिछला इतिहास देखने से हमें यह पता लगता है कि बहुत समय तक हिंदू दूसरी जातियों से भिन्न, एकांत और शांत जीवन व्यतीत करते रहे हैं। इन्हें दूसरी जातियों से किसी प्रकार का मुक़ाबला करने का अवसर नहीं पड़ा। इस शांतिमय जीवन के कारण इनकी मुक़ाबला करने की शक्ति का बिलकुल ह्रास हो चुका है। जब कभी इन पर कोई दूसरी जाति आक्रमण करती है, तो यह बिलकुल विवश और लाचार हो जाते हैं। इस जाति में सभी गुण हैं; परंतु संकट के समय एक होना इन्हें नहीं आता। यह संसार युद्ध-क्षेत्र है, यहाँ प्रत्येक व्यक्ति और समाज को अपने अस्तित्व की रक्षा के लिये लड़ना पड़ता है। यदि इस युद्ध में किसी जाति की अवस्था उस काँच के समान हो जाय, जिसकी टक्कर किसी पत्थर से लगी है, तो वह जाति स्वयं चूर-चूर होकर नष्ट हो जायगी। यह समय हिंदू-जाति की जीवन-मरण की समस्या के हल करने का है। इससे पूर्व भी यह जाति संकटों में पड़ चुकी है; परंतु अवस्था इतनी भयंकर

कभी न हुई थी। इस समय हमारा भविष्य स्पष्ट है। यदि हम इकट्ठे होकर इस आक्रमण को न रोकेंगे, तो हमारा अस्तित्व शेष न रहेगा।

प्रश्न—इस विचार के आजकल उत्पन्न होने का क्या कारण है?

उत्तर—योरप के पिछले महायुद्ध के समय से सारे संसार में एक जागृति फैल गई है। इस जागृति का प्रभाव भारत पर भी पड़ा है। अँगरेज़ों के नेतृत्व में लड़ते समय मित्र-दल का यह दावा था कि निर्बल शक्तियों की स्वतंत्रता की रक्षा के लिये लड़ रहे हैं। इस बात का खुला प्रचार होने से भारत को भी कुछ आशा हुई, और देश में राजनीतिक आंदोलन आरंभ हो गया। इन दो-तीन वर्षों में भारतवासी अपने प्राकृतिक अधिकारों के लिये लड़ते रहे। हिंदू और मुसलामन मिल गए। परंतु मुसलमानों के असंतोष का प्रधान कारण अँगरेज़ों का टर्की के विरुद्ध लड़ना था। उनके हृदय में अपने देश के लिये इतना प्रेम न था, जितना अपने मज़हब के लिये था। वे हिंदुओं के साथ मिलकर स्वराज्य आंदोलन में नाम लेने के लिये तत्पर हुए; परंतु उनके हृदय में अपने मज़हब के लिये भी उत्साह और उत्तेजना बढ़ती गई। मालावार और मुलतान की घटनाओं से उनके हृदय में हिंदुओं के लिये भ्रातृ-भाव बढ़ने के स्थान में विद्वेष बढ़ गया। हिंदुओं ने भी स्पष्ट अनुभव कर लिया कि उनका भला तभी है, जब वे परस्पर संगठित होकर शक्ति उत्पन्न करें। उन्हें इस बात का पता लग गया कि उनके पड़ोसी कठिन समय में उनका साथ छोड़ जायँगे। स्वराज्य के आंदोलन के लिये भी हिंदुओं को सुसंगठित तथा सशक्त होने की आवश्यकता है। अपने पड़ोसियों के भय की आशंका से हिंदुओं का ध्यान अपनी स्त्रियों की असहाय अवस्था अछूतपन, अपने तीर्थों की दूरवस्था और शारीरिक निर्बलता आदि व्याधियों की ओर गया है। ये व्याधियाँ हिंदुओं को घुन के

समान चुपचाप भीतर-ही-भीतर खोखला किए जा रही हैं। हमारा यह कर्त्तव्य है कि परस्पर मिलकर इन व्याधियों के निवारण का प्रयत्न करें।

प्रश्न—इस आंदोलन के विषय में कुछ विस्तार से कहिए?

उत्तर—इस समस्या को भली प्रकार समझने के लिये आप पंजाब की अवस्था पर ध्यान दीजिए। पंजाब में अन्य प्रांतों की अपेक्षा मध्यम श्रेणी के मनुष्य अधिक और संपन्न हैं। यहाँ हिंदुओं तथा मुसलमानों की संख्या में भी थोड़ा ही भेद है। इन दोनों संप्रदायों की आपस में उतरा-चढ़ी का दृश्य देखना हो, तो यहाँ बहुत स्पष्ट दिखाई दे सकता है। जीवन-निर्वाह का प्रश्न कठिन होते जाने से यह उतरा-चढ़ी भी इसी प्रश्न पर हो रही है। पंजाब के हिंदू अधिकतर साहूकारी और ज़मींदारी किया करते थे। भूमि-विनिमय (Land Alienation Act) क़ानून द्वारा हिंदुओं का भूमि ख़रीदने का अधिकार छीन लिया गया, और ज़मींदारी-बैंक खोलकर उनके साहूकारी को भी धक्का पहुँचाया गया। हिंदू अपने बच्चों को स्कूल-कॉलेजों में पढ़ाकर सरकारी नौकरी दिलवाते थे, परंतु अब दफ़्तरों में भी यह आज्ञा स्पष्ट तौर पर जारी हो गई है कि सबसे पहले नौकरी मुसलमानों को ही दी जाय। पुलीस और फ़ौज में हिंदुओं के लिये स्थान नहीं। सरकारी स्कूलों में अध्यापक भी सब मुसलमान ही भरती किए जाते हैं। हिंदू हलवाई तथा बजाज़ी का काम किया करते थे, परंतु अब एक ऐसी मुसलिम अंजुमन का चर्चा सुना है, जिसका काम चंदे द्वारा धन एकत्र कर मुसलमानों द्वारा ऐसी दुकानें खुलवाना है। बढ़ई और लुहार के पेशे आज स्वतंत्र रूप से निर्वाह चलाने के सबसे उत्तम साधन हैं। यह भी मुसलमानों के ही हाथ में हैं। हिंदुओं को इस प्रकार के कामों से घबराहट होती है, और वे अपनी संतान को ऐसे कामों से दूर रखते हैं। खेती का काम उत्तम

होने पर भी कठिन है, और हिंदुओं के भाग्य में नहीं। एक और छोटा-सा उदाहरण लीजिए, लाहौर-शहर में प्रायः एक हज़ार के लगभग जिल्दसाज़ हैं। इनकी आमदनी प्रति दिन डेढ़ रुपए से अढ़ाई रुपए तक है। हिंदू-नवयुवक हाथों में प्रार्थना-पत्र लिए दफ़्तरियों की ड्योढ़ियों पर प्रतीक्षा में खड़े रहते हैं; परंतु इन कामों को हाथ में लेने के लिये तैयार नहीं। जिस अवस्था में एक बलवान् तथा सुसंगठित समाज की ओर से दूसरी निर्बल समाज को निर्वाह के साधनों से रहित होकर भूखा मारने का प्रयत्न किया जाय, और निर्बल समाज बिलकुल बेख़बर तथा असंगठित बनी रहकर अपने भविष्य की चिंता भी न करे, तो उस समाज की रक्षा सर्वथा असंभव है।

प्रश्न—हिंदुओं को अनेक भिन्न-भिन्न संस्थाओं में आर्य-समाज, सनातनधर्म इत्यादि के परस्पर मिलकर कार्य करने की क्या कोई संभावना नहीं ?

उत्तर—यह कहना तो कठिन है कि ये संस्थाएँ कभी मिलकर एक हो जायँगी। प्रायः सभी समाजों में सर्वसाधारण का आचरण उसके नेताओं की नीति द्वारा परिचालित होता है। भारत के नेताओं में सम्मान की भूख का परंपरागत रोग है। उन्हें सब संस्थाओं का एक हो जाना कभी नहीं भाता। चाणक्य ने अपने नीति-शास्त्र में लिखा है कि नायक के अभाव में जनता नष्ट हो जाती है, और नायकों की अधिकता भी जनता को नष्ट कर देती है। नेताओं की अधिकता तथा एक प्रभावशाली नेता का अभाव हमारा पुराना दुर्भाग्य है। यह सब कुछ होते हुए भी प्रत्येक जाति में जातीय सहानुभूति का भाव भी किसी-न-किसी अंश में पाया ही जाता है। सभी जगह कुछ ऐसे सज्जन वर्तमान हैं, जो देश-जाति के सच्चे हितचिंतक हैं। इसलिये आशा की जा सकती है कि सब समाजों के ऐसे व्यक्ति परस्पर के भेद-भाव को त्याग, जातीय संगठन के लिये तैयार हो जायँगे।

प्रश्न—देश के लिये जब कांग्रेस आंदोलन कर ही रही है, तब फिर हिंदू-संगठन की क्या आवश्यकता है ?

उत्तर—कांग्रेस का उद्देश्य स्वराज-प्राप्ति है। इस उद्देश्य में सफलता तभी हो सकेगी, जब हिंदू, मुसलमान, सिख तथा भारत के अन्य सभी संप्रदायों के लोग इसके लिये मिलकर प्रयत्न करेंगे। परस्पर की एकता के बिना यह प्रयत्न सफल नहीं हो सकता। एकता उत्पन्न करने के लिये यह आवश्यक है कि सब लोग एकता की आवश्यकता को अनुभव करें, और उनमें एकता की प्रबल इच्छा हो। यदि इच्छा केवल मौखिक होगी, तो वह थोड़ा-सा प्रलोभन मिलने पर ही दब जायगी और एकता टूट जायगी। कांग्रेस का इतिहास इस बात का साक्षी है कि राजनीतिक क्षेत्र में काम करनेवाले सभी लोग हिंदू थे। सर सैयद अहमद के समय से मुसलमानों ने अपना हित कांग्रेस से दूर रहकर गवर्नमेंट का साथ देने में ही समझा है। हिंदुओं के हृदय में इस देश तथा इस देश के निवासियों के साथ वास्तविक प्रेम है। मुसलमानों के हृदय में अरब, मक्का, मदीना तथा उन देशों के निवासी अपने मज़हबी भाइयों के प्रति ही विशेष अनुराग है। मुसलमान हिंदुओं को अपने अन्य मज़हबी भाइयों के समान कभी नहीं समझते। उनका मज़हब तथा उनकी धार्मिक पुस्तक उन्हें अन्य मत के मनुष्यों को लूटने तथा मारने का उपदेश देती है। जब कभी भी उन्हें इसके लिये अवसर मिलता है, वे इससे लाभ उठाने में संकोच नहीं करते। लूट-मार के प्रलोभन तथा धार्मिक जोश के संयोग से एक भयंकर उत्तेजना मुसलमानों के दिल में पैदा हो जाती है। जब तक हिंदू इस उत्तेजना का मुक़ाबला करने में असमर्थ रहेंगे, वास्तविक एकता का होना असंभव है। इसलिये हिंदू-संगठन ही वास्तव में स्वराज्य-प्राप्ति का मुख्य साधन है। हिंदू-संगठन कांग्रेस से अलग होता हुआ भी इसके विरुद्ध न होकर पक्ष में है,

और कांग्रेस को अपने उद्देश्य में सफलता प्राप्त करने के लिये संगठन का होना अत्यंत आवश्यक है।

प्रश्न—तो क्या हिंदू-संगठन से आपका अभिप्राय हिंदुओं को मुसलमानों के विरुद्ध तैयार करना है ?

उत्तर—नहीं, हिंदू-संगठन का यह अभिप्राय कभी नहीं है। वस्तुतः हिंदुओं और मुसलमानों की भलाई दोनों के बलवान् होने में है। हिंदुओं और मुसलमानों के झगड़े का कारण यह है कि मुसलमानों में कुछ लोग ऐसे हैं, जो थोड़ी-सी उत्तेजना मिलने पर लूट-मार के लिये तैयार हो जाते हैं। हिंदू कमज़ोर होने से उनका शिकार बनते हैं। दूसरे मुसलमानों में अपने भाइयों के प्रति सहानुभूति रहने से यह झगड़ा जंगल की आग की तरह बढ़कर सारे देश में फैल जाता है। यदि हिंदू कमज़ोर न रहें, तो झगड़ा उठे ही न।

लूटना बुरा है और लूटनेवाले दोषी हैं; परंतु इससे बड़ा अपराध लूटनेवालों का है। निर्बलता मृत्यु का चिह्न है। निर्बलता से बड़ा अपराध संसार में दूसरा नहीं है। संगठन द्वारा इस निर्बलता को दूर करके हिंदुओं और मुसलमानों में भ्रातृ-भाव उत्पन्न करने का यत्न हमारा कर्तव्य है।

प्रश्न—परंतु इस विचार की सत्यता का प्रमाण क्या है ?

उत्तर—हिंदू-महासभा काशी ने अपने निर्णय की भूमिका में यह लिखा है कि हम अपना यह दृढ़ निश्चय प्रकट कर देना चाहते हैं कि इस देश में सुख, शांति तथा स्वराज्य स्थापित करने के लिये भारत में निवास करनेवाली सभी जातियों में पारस्परिक एकता तथा प्रेम-भाव का दृढ़ संबंध स्थापित हो। इसलिये हम हिंदू-मात्र से यह निवेदन कर देना चाहते हैं कि जिस समय वे जाति में संगठन उत्पन्न करने का प्रयत्न करें, तो इस बात का ध्यान रक्खें कि उनका प्रयत्न देश-हित के प्रतिकूल तथा अन्याययुक्त न हो।

प्रश्न—यह संगठन किस प्रकार हो सकता है ?

उत्तर—हिंदू-संगठन का एक ही उपाय है कि गाँव-गाँव और कसबे-कसबे में हिंदू-सभाएँ स्थापित की जायँ, और ज़िला-सभाओं द्वारा उनका संबंध प्रांतीय हिंदू-सभा से होकर अखिल भारतीय हिंदू-महासभा से हो जाय और संपूर्ण सभाएँ माला के मणियों की भाँति एक लड़ी में बंध जायँ।

प्रश्न—इन सभाओं से क्या लाभ होगा ?

उत्तर—सबसे बड़ा लाभ इन सभाओं से यह होगा कि हिंदुओं में एक जातीयता का भाव उत्पन्न हो जायगा, और वे एक जाति के ढंग से अपना हित-अहित सोचने लगेंगे। यह विचार कि वे एक संगठित संस्था के अंग हैं, वह संस्था उनकी प्रतिनिधि है, और इस संस्था द्वारा निरधारित नीति पर चलना उनका कर्तव्य है, हिंदुओं में जातीयता का भाव उत्पन्न कर उन्हें एक सूत्र में पिरो देगा। अभी तक हिंदू प्रत्येक समस्या को वैयक्तिक दृष्टि-कोण से देखते हैं। उनमें जातीयता का विचार उत्पन्न होने के लिये यह आवश्यक है कि उनका दृष्टि-कोण जातीय हो।

प्रश्न—सभा-समाजें और बिरादरियाँ, जो इस समय भी काम कर रही हैं, क्या इस न्यूनता को पूरा नहीं कर सकतीं ?

उत्तर—यह सभा-समाजें थोड़े परिमाण में सामाजिक सहायता करने में सहायक हो सकती हैं; परंतु सब समाजों को एक संगठन में बाँधने में बड़ी रुकावट है। भिन्न-भिन्न मतों की तरह बिरादरियाँ भी यही चाहती हैं कि उनके सदस्य अपनी बिरादरी के हित के लिये ही प्रयत्न करें, और इसी में वे जाति की भलाई समझते हैं। इन बिरादरियों की तुलना उस मनुष्य से की जा सकती है, जो यह कहे कि मैं अपनी संतान को विदेश भेजकर धन कमाने के योग्य बना रहा हूँ। यदि सारी जाति मेरा ही अनुकरण करे, तो जातीय उन्नति बहुत शीघ्र

हो सकती है। यदि यह मनुष्य जातीय हित की दृष्टि से इस प्रश्न पर विचार करे, तो उसे मालूम हो जायगा कि केवल सरकारी नौकरी तथा वैयक्तिक सम्मान के लिये विदेश में रुपया भेजना जाति के हित के प्रतिकूल है।

प्रश्न—हिंदुओं का शोक तथा उत्सव के समय सम्मिलित होना क्या उनमें जातीयता का भाव उत्पन्न करने में सहायक नहीं हो सकता?

उत्तर—हिंदुओं के रीति-रवाज जातीय भाव की उत्पत्ति में सहायक नहीं हैं, प्रत्युत वे जातीयता की उन्नति में बाधक हैं। इन रीति-रिवाज़ों के कारण हिंदू अपनी बिरादरियों के बंधन में जकड़े जाकर विवश हो गए हैं। ऐसा प्रतीत होता है, हमारे पूर्वजों ने यह सब रीति-रिवाज़ केवल मनोरंजन के लिये ही चलाए थे। परंतु इस समय प्रत्येक हिंदू-परिवार का जीवन लड़के-लड़कियों के विवाह का ख़र्च जुटाने की चिंता ही में घुल-घुलकर नष्ट हो जाता है। इन रीति-रिवाज़ो से हमें कोई लाभ नहीं पहुँच रहा, प्रत्युत वे जातीय संगठन में रुकावट बन रहे हैं।

प्रश्न—क्या यह सभाएँ जलसों और प्रचारकों द्वारा संगठित की जानी चाहिए?

उत्तर—मेरी सम्मति में यह जलसे लाभदायक नहीं। हिंदू इन जलसों को भी एक प्रकार का उत्सव समझकर इनकी कामयाबी के लिये बहुत-सा धन व्यय कर देते हैं। यह उत्सव एक प्रकार का दिखावा ही है, और हिंदुओं में दिखावे का रोग पहले ही बहुत अधिक मात्रा में वर्तमान है। सचाई और वास्तविकता का प्रायः हमारे सभी कामों में अभाव है। केवल दिखावे की तड़क-भड़क की ही अधिकता है। इस दिखावे ने हमारे धर्म तक को भी केवल दिखावे की ही वस्तु बना दिया है। हिंदू इन उत्सवों के दिखावे को जितना

शीघ्र छोड़ दें, उतना ही उनके लिये अच्छा है। आरंभ में शायद प्रचारकों के विना काम न चल सकेगा। परंतु मेरे विचार में प्रत्येक हिंदू को हिंदू-संगठन का प्रचारक होना चाहिए। यदि हम संगठन-जैसे सीधे-सादे और साधारण काम के लिये भी प्रचारकों का आश्रय लेंगे, तो सफलता हमसे बहुत दूर रहेगी! हिंदू-संगठन कोई नया मत नहीं है। इसलिये शास्त्रार्थों की आवश्यकता नहीं। न इसके समझाने के लिये बड़े-बड़े व्याख्यानों की आवश्यकता है। यह किस हिंदू से छिपा है कि पाँचों उँगलियों को इकट्ठा कर देने से उनमें वह शक्ति आ जाती है, जो अकेले एक-एक उँगली में कभी नहीं हो सकती! जिस प्रकार प्रत्येक मुसलमान अपने मज़हब का प्रचारक है, उसी तरह प्रत्येक हिंदू को भी संगठन का क्रियात्मक प्रचार करना चाहिए।

प्रश्न—परंतु हिंदू-सभा की स्थापना से लाभ क्या हुआ है?

उत्तर—लाहौर में हिंदू-सभा की स्थापना हुए अभी थोड़ा ही समय हुआ है। इस समय में सभा ने अपने को ठीक रूप से व्यवस्थित करने के पश्चात् लाहौर म्युनिसिपल कमेटी के हिंदू-मत-दाताओं (वोटर्स) की सूची की ओर ध्यान दिया। आपको यह जानकर विस्मय होगा कि इस सूची में दस फ़ी सैकड़ा भी हिंदू-मत-दाताओं के नाम नहीं थे। हिंदू-सभा ने इस काम के लिये स्वयंसेवकों को नियुक्त किया। स्वयंसेवकों ने दिन-रात कठिन परिश्रम कर प्रायः एक सप्ताह में ही लगभग सारे हिंदू-मतदाताओं की सूची तैयार कर दी। म्युनिसिपल कमेटी के अधिकारियों ने पहले वचन देकर भी पीछे हमारी सूची को अस्वीकृत कर दिया। हिंदू-सभा ने नगर के गण्यमान्य सज्जनों को एकत्र कर म्युनिसिपल कमेटी से असहयोग करने का निश्चय कर दिया। दो मास के लगभग सभा इस कार्य में लगी रही। इसके पश्चात् लाहौर में जाति-भूषण पंडित मदनमोहन मालवीयजी के सभापतित्व में एक पंजाब-प्रांतीय हिंदू-

सम्मेलन लाहौर में बुलाया गया । सम्मेलन कामयाब रहा, इसके अतिरिक्त पंजाब के हिंदुओं ने सभा की आज्ञा का पूर्णरूप से पालन किया ।

इसके पश्चात् सभा ने लाहौर के गली-मुहल्लों को एक संगठन में बाँधने का काम आरंभ किया । तीन सप्ताह तक ही यह काम हो पाया था कि लाहौर में प्लेग का प्रकोप हो गया। इस आपत्ति के समय भी हिंदू-सभा ने प्रशंसनीय काम किया । निर्धन तथा निस्सहाय लोगों के घरों में जाकर उनकी सुध लेने, उनके लिये औषध का प्रबंध करने और आवश्यकता पड़ने पर उन्हें अस्पताल पहुँचाने तथा मृतकों का विधिपूर्वक दाह-संस्कार करने में सभा के स्वयंसेवकों ने अद्वितीय निर्भयता तथा साहस का परिचय दिया । इस पवित्र कार्य में हमारे उन भाइयों की सहायता, जिन्हें हमारी जाति दुर्भाग्य से अछूत कहती है, विशेषतः उल्लेख के योग्य है । इसके पश्चात् अब सभा के सम्मुख प्रांत के हिंदुओं के संगठन का काम है ।

प्रश्न—हिंदू-सभा के सम्मुख ऐसा क्या काम है, जिसके लिये हिंदुओं का संगठित होना आवश्यक समझा जाय ?

उत्तर—अछूतोद्धार, शुद्धि, विधवा-सुधार, गोरक्षा, हिंदी-प्रचार, शारीरिक उन्नति, धर्मस्थान-सुधार इत्यादि सभी काम ऐसे हैं, जिनमें सभी विचारों के हिंदुओं का सम्मिलित होना सहज और आवश्यक है ।

प्रश्न—हिंदू-सभा का मुख्य उद्देश्य क्या है ?

उत्तर—हिंदू-सभा के पाँच मुख्य उद्देश हैं ।

(१) हिंदू-जाति में एकता तथा प्रेम-भाव का प्रचार करना और उन्हें एक ही शरीर के अंग जान संगठित करना ।

(२) भारत में निवास करनेवाली सब जातियों में सद्भाव उत्पन्न कर भारत में स्वराज्य-स्थापना के उद्देश्य से एकता के लिये प्रयत्न करना ।

(३) अछूत समझी जानेवाली जातियों सहित हिंदू-जाति के सभी अंगों की उन्नति करना।

(४) हिंदू-हित की सब स्थानों और अवस्थाओं में रक्षा करना।

(५) हिंदू-समाज की शारीरिक, शिक्षा-संबंधी, आर्थिक, समाजिक और राजनीतिक दृष्टि से उन्नति करना।

प्रश्न—अछूतोद्धार का काम तो कांग्रेस और आर्य-समाज कर ही रही हैं।

उत्तर—कांग्रेस अछूतोद्धार का काम अपने हाथ में नहीं ले सकती, क्योंकि कांग्रेस में हिंदू, मुसलमान, ईसाई आदि सभी मतों का समान भाग है। महात्मा गांधीजी ने भी यह स्पष्ट कह दिया है कि अछूतोद्धार हिंदुओं का ही कर्तव्य है। एक हिंदू केवल दूसरे हिंदू से ही यह कह सकता है कि यदि वे अछूतों को अपना भाई नहीं बनावेंगे, तो वे दूसरे मत में सम्मिलित होकर गोरक्षक के स्थान में गो-भक्षक बन जायँगे। हिंदू किसी दूसरे मतानुयायी के सम्मुख ऐसी प्रेरणा नहीं कर सकते।

यदि हम स्वयं अछूतों से ही पूछें कि वे क्या चाहते हैं, तो वे यही कहेंगे कि उन्हें हिंदू-समाज तथा धर्म के सब अधिकार दे दिए जायँ।

शेष रहा आर्य-समाज का प्रश्न। इसमें संदेह नहीं आर्य-समाज आरंभ से ही अछूतों की उन्नति के लिये प्रयत्न कर रहा है; परंतु इससे सनातन-धर्मियों के मन में यह शंका उत्पन्न होती है कि आर्य-समाजी अछूतों को अपने में मिलाकर अपनी संख्या बढ़ा रहे हैं, और संभवतः इसीलिये वे इस काम का विरोध करते आए हैं। इसलिये उचित यह है कि हिंदुओं के सभी अंग मिलकर इस काम को हिंदू-मात्र का काम समझकर निर्विघ्न रूप से करें।

प्रश्न—क्या आप यह नहीं मानते कि देश के लिये मुसलमानों से अधिक हानिकारक विदेशी राज्य है?

उत्तर—इस प्रश्न का उत्तर समय और अवस्था के अनुसार भिन्न-भिन्न होगा। यदि हमें आशा हो कि हम बहुत थोड़े समय में मुसलमानों की सहायता से स्वराज्य प्राप्त कर सकते हैं, तो हमें मुसलमानों द्वारा बहुत-सी हानि उठाने के लिये भी तत्पर हो जाना चाहिए। परंतु वास्तव में स्वराज्य प्राप्त करने के लिये बहुत अधिक समय दरकार है, और इस समय में मुसलमान हिंदुओं को हड़पकर अपनी संख्या बढ़ाने में जी-जान से लगे हुए हों, तो हमारा अपने अस्तित्व की रक्षा करना मुख्य कर्तव्य है।

प्रश्न—परंतु क्या आपके राष्ट्र का अस्तित्व स्वराज्य के बिना बचा रहेगा?

उत्तर—विदेशी राज्य और बात है, और राष्ट्र के अस्तित्व का लोप हो जाना दूसरी बात है। हिंदू-जाति पर कई शताब्दियों तक मुसलमानी शासन रहा; परंतु फिर भी इस जाति में जीवन के चिह्न बचे रहे और जातीयता का भाव भी शेष रहा। इसी जातीय भाव से प्रेरित होकर वे मुसलमानी शासन को दूर फेंक स्वतंत्रता प्राप्त करने में सफल हो सके थे। यदि हिंदू क़ौम उस पराधीनता से मिट गई होती, तो अन्य बड़ी-बड़ी पुराने राष्ट्रों मिसर, ईरान, यूनान आदि की भाँति केवल इनका नाम-मात्र ही शेष रह जाता। स्वराज्य का प्रयोजन राष्ट्रीय भावों और जातीयता की रक्षा के लिये है; परंतु इन दोनों वस्तुओं को नष्ट कर देने से फिर स्वराज्य से कोई लाभ नहीं रहता।

प्रश्न—ईसाई और मुसलमान, दोनों ही संप्रदाय हिंदुओं को हड़प जाने पर तुले हुए हैं। क्या ईसाई मुसलमानों की अपेक्षा अधिक भयानक नहीं, क्योंकि अँगरेज़ी सरकार भी उनकी सहायता कर रही है?

उत्तर—यों तो दोनों ही भय का कारण हैं, क्योंकि दोनों दूसरों को मिटकार स्वयं फैलना चाहते हैं। परंतु हमें मुसलमानों से अधिक भय है, क्योंकि मुसलमान प्रत्येक गाँव, शहर और गली-कूचे में हमारे

पड़ोसी हैं, और हमारी निर्बलताओं से परिचित होने के कारण हमें हानि पहुँचा सकते हैं।

प्रश्न—परंतु यह उतरा-चढ़ी और संग्राम किस उद्देश्य से है?

उत्तर—यह संसार ही उतरा-चढ़ी और संग्राम का क्षेत्र है। मनुष्य की उत्पत्ति के दिन से ही समाज में उतरा-चढ़ी जारी है। वैदिक काल में आर्यों और दस्युओं में संग्राम होता था। पौराणिक काल में यह संग्राम देवों और असुरों में हुआ। महात्मा बुद्ध ने शांति का राज्य स्थापन करने का प्रयत्न किया और इस संग्राम की ओर से दृष्टि फेर ली। जब तक बौद्ध-धर्म का प्रभुत्व रहा, शांति भी रही; परंतु बौद्ध-धर्म की प्रबलता हटने के साथ ही अन्य मत के अनुयायियों ने सिर उठाया और बौद्धों का अस्तित्व यहाँ से मिटा दिया। शांति की रक्षा के लिये शक्ति की आवश्यकता है। हिंदुओं का प्रयत्न इन सब शक्तियों को दमन करने के लिये है, जो भीतर या बाहर से इस जाति को हानि पहुँचा रही हैं। यदि मुसलमान हमें नष्ट करने का प्रयत्न करेंगे, तो हमें उनके भी विरुद्ध खड़ा होना होगा।

हम इस समय सब ओर से विपत्तियों में घिरे हुए हैं, हमारा भरोसा केवल परमात्मा पर ही है; परंतु परमात्मा केवल उन्हीं की सहायता करता है, जो स्वयं अपनी सहायता करते हैं।

प्रश्न—मुसलमानों में धार्मिक पक्षपात अधिक होने का क्या कारण है?

उत्तर—इसका कारण यह है कि इसलाम प्रारंभ से ही एक सैनिक संप्रदाय रहा है। इसका जन्म युद्ध में हुआ, युद्धों में ही इसका विकास हुआ, और इसका प्रचार भी युद्धों से ही हुआ। इसलाम का संपूर्ण अतीत इतिहास युद्धों का ही इतिहास है, और वह उन्हें हर समय युद्ध के लिये तत्पर रखता है। मज़हब के नाम पर वे सदा एक हो जाते हैं। जो संप्रदाय युद्ध-भूमि में उत्पन्न होता है, आवश्यक है उसके

अनुयायियों में एक प्रकार का भ्रातृभाव और सहानुभूति का भाव हो। यही प्रेम दूसरे संप्रदाय के मनुष्यों के प्रति पक्षपात का रूप धारण कर लेता है। इसके विरुद्ध हिंदुओं का धर्म शांति के समय की उपज है। हिंदुओं में कभी जातीय दृष्टिकोण से एकत्र होकर दूसरे से लड़ने का भाव उत्पन्न नहीं हुआ। हिंदुओं में सिख-धर्म की उत्पत्ति युद्ध के समय हुई है, और प्रमाण के लिये आप देख सकते हैं कि इस धर्म में धार्मिक पक्षपात की कमी नहीं है।

अपने अस्तित्व की रक्षा के लिये युद्ध करने के लिये तैयार होना ही हिंदुओं की निर्बलता को दूर करने का एक-मात्र उपाय है। यही भाव इन्हें संसार में जीवित रह सकने योग्य बना सकेगा। हिंदुओं को जीवन-संग्राम से न घबराकर इस जीवन के लिये आवश्यक समझ, इसके लिये तैयार हो जाना चाहिए।

प्रश्न—आपकी सम्मति में हिंदू-मुसलिम एकता किस सिद्धांत पर स्थिर हो सकती है?

उत्तर—मेरे विचार में धार्मिक पक्षपात और असहिष्णुता मुसलमानों की प्रकृति का उसी प्रकार एक अंग बन गया है, जिस प्रकार धार्मिक उदारता हिंदुओं की प्रकृति का अंग है। एकता तभी हो सकती है, जब दोनों में से एक अपनी प्रकृति बदल दें। या तो मुसलमान धार्मिक असहिष्णुता छोड़ दें, या हिंदू ही असहिष्णु बन जायँ। नहीं तो पत्थर और काँच का मेल असंभव है।

प्रश्न—मुसलमानों की प्रकृति किस प्रकार बदल सकती है?

उत्तर—इसका यही उपाय हो सकता है कि मुसलमान अपना मत इस्लाम को रखते हुए भी—जिस प्रकार ईरानियों ने इस्लाम को ग्रहण कर भी अपनी भाषा तथा अपने इतिहास को नहीं छोड़ा—अपनी भाषा, इतिहास और सभ्यता को हिंदोस्तानी रक्खें। इस प्रकार हिंदुओं का ही एक भाग बनकर एक हिंदोस्तानी क़ौम बना सकेंगे।

प्रश्न—क्या हिंदुओं की प्रकृति भी किसी तरह बदली जा सकती है ?

उत्तर—हाँ ! उसका ढंग यह है कि हिंदुओं में अपनी जाति के लिये पक्षपात उत्पन्न हो जाय। पक्षपात से अभिप्राय है गाढ़ सहानुभूति, अर्थात् यदि किसी भी हिंदू भाई को कोई कष्ट हो, तो प्रत्येक हिंदू उसे अपना कष्ट समझे।

प्रश्न—क्या यह पक्षपात बुरी बात नहीं है ?

उत्तर—नहीं, कभी नहीं, इस दृष्टि से पक्षपात बुरी वस्तु नहीं है। प्रत्येक जाति अपने मनुष्यों से प्रेम करती हुई दूसरी जातियों से थोड़ा-बहुत अलग हो ही जाती है। इसके अतिरिक्त मानव-प्रकृति में राग और द्वेष स्वाभाविक हैं। द्वेष का भाव भी बड़ा पवित्र है। हमें स्वभावतः ही इन शक्तियों से द्वेष होना चाहिए, जो हमें नष्ट करनेवाली हैं। इस प्रकार का द्वेष का भाव ही जाति को संकट से बचा सकता है। संक्षेपतः मैं चाहता हूँ कि मुसलमान भाई अपनी प्रकृति को बदल दें, और हमारे भाई बनकर रहें, नहीं तो फिर एकता की केवल एक ही सूरत शेष रह जाती है, और वह यह कि जिस अनुपात में हिंदू बलवान् होंगे, उसी अनुपात में एकता भी दृढ़ होगी। बलवान् और निर्बल में प्रेम नहीं हो सकता।

प्रश्न—फिर भी क्या मुसलमान अँगरेज़ों से अच्छे नहीं, क्योंकि अँगरेज़ हमारे राजनीतिक शत्रु हैं ?

उत्तर—मैं तो मुसलमानों को अँगरेज़ों से भी अधिक बुरा समझता हूँ। अँगरेज़ों ने हमारे देश पर अधिकार किया है, उनका राष्ट्रीय हित इसी में है कि वे अपने अधिकार की रक्षा के लिये सब प्रकार से प्रयत्न करें। हिंदुओं और मुसलमानों में फूट डाल रखना इसका सबसे अच्छा और सुगम उपाय है। ऐसा करने में अँगरेज़ अपने राष्ट्र का हित ही करते हैं। मुसलमानों की अवस्था ठीक इसके विरुद्ध है, वे

इस देश में रहते हुए अपने मज़हब के लिये, जो एक दूसरे देश की उपज है, अपने देश-वासियों के विरुद्ध सब कुछ करने के लिये तैयार हो जाते हैं। इस मज़हब के लिये वे अपने देश तथा राष्ट्र से बिलकुल विमुख हुए बैठे हैं।

प्रश्न—आप मुसलमानों के छोटे-छोटे अपराधों का डंका पीटकर हिंदू-मुसलिम विरोध को बढ़ा रहे हैं, क्या हिंदू भी वैसे अपराध नहीं करते ?

उत्तर—आपका कहना ठीक है। हिंदुओं में भी बुरे आदमी हैं, लेकिन भेद इतना है कि हिंदुओं में जो ऐसे मनुष्य हैं, वे व्यक्तिगत अपराध करते हैं, और हिंदू-समाज उनके इस काम की निंदा कर उनको सीधे मार्ग पर लाने का प्रयत्न करता है। इसके विरुद्ध मुसलमानों में ऐसे कामों को मज़हबी रंग देकर सब मुसलमान अपराधी की सहायता के लिये तत्पर हो जाते हैं। इसका परिणाम यह हो रहा है कि अब हिंदू भी सोचने लगे हैं कि क्या उन्हें भी ऐसे अपराधों को जातीयता का रंग देकर प्रतिकार के लिये तत्पर हो जाना चाहिए।

प्रश्न—हिंदुओं में सामाजिक विभिन्नता बहुत अधिक है, क्या वे कभी एक संगठन में बाँधे जा सकेंगे ?

उत्तर—मैं तो स्वयं कहता हूँ कि हिंदू-संगठन के आंदोलन को सफल बनाने के लिये इसे ऐसे मनुष्यों के हाथों से बचाना होगा, जो सामाजिक संकीर्णता में फसे हुए हैं। हिंदू-सभा को तो ऐसे कार्य-कर्ताओं की आवश्यकता है, जिन्हें केवल यही धुन और लगन हो कि हिंदू एक सुसंबद्ध माला में, किस प्रकार पिरोए जा सकते हैं। इस कार्य में समय भी लगेगा। जिस समय तक पार्टीबाज़ी और सांप्रदायिक संकीर्णता रहेगी, यह संगठन नहीं हो सकेगा।

भाई परमानंद

हिंदू-जीवन का रहस्य

समय की गति

बचपन में मैंने एक कहानी सुनी थी। कहते हैं, एक राजा था। उसे एक ज्योतिषी ने बताया कि अमुक दिन, विशेष मुहूर्त में, एक ऐसी विलक्षण वायु प्रवाहित होगी, जिसके स्पर्श से प्रत्येक मनुष्य पाग़ल हो जायगा। यह समाचार सुन राजा बहुत चिंतित हुआ। उसने अपने मंत्री को बुला इस विषय में उसका परामर्श लिया। विचार के पश्चात् राजा ने एक ऐसा घर बनाने की आज्ञा दी, जिसके भीतर बैठ जाने से उस विचित्र वायु के स्पर्श से मनुष्य सब प्रकार सुरक्षित रह सके। वह विशेष मुहूर्त आया। राजा और मंत्री, दोनों उस मकान में वायु के प्रभाव से सुरक्षित हो बैठ गए। वायु आई, और उसके प्रभाव से सारे नगर के मनुष्य पाग़लों की-सी बातें करने लगे। राजा और मंत्री अपने सुरक्षित स्थान से निकले जिसे वे देखते, वही अद्भुत, पाग़लों की-सी, बातें करता उन्हें जान पड़ता। उनका रंग-ढंग शेष सब प्रजा से विचित्र होने के कारण प्रत्येक मनुष्य उनकी ओर संकेत कर कहता, यह देखो—ये कैसे नए ढंग के अद्भुत मनुष्य हैं। सारी प्रजा की दृष्टि में दोनों ही पाग़ल जँचने लगे।

इस कहानी की ऐतिहासिकता के विषय में हमें झगड़ा नहीं करना; परंतु इतना निस्संदेह सत्य है कि संसार में प्रत्येक समय में, विशेष

प्रकार की वायु का प्रवाह होता है, और उसका प्रभाव जनता पर पड़ता है। जो मनुष्य इस वायु के प्रभाव से बच जाते हैं, वे लोगों की दृष्टि में पागल जँचने लगते हैं। इस प्रकार के पागलपन का ज्वलंत प्रमाण गुरु तेग़बहादुर थे। यह किसी से छिपा नहीं कि गुरु तेग़बहादुर का बलिदान जाति और देश के लिये कितना महत्त्व-पूर्ण प्रमाणित हुआ है। परंतु यह थोड़े ही लोग जानते होंगे कि जीवन के पहले भाग में उन्हें लोग 'तेगा झल्ला' (तेगा पागल) कहकर पुकारते थे। उस दुनिया को क्या कहा जाय, जो गुरु तेग़-बहादुर को 'तेगा झल्ला' कहती थी। किया क्या जाय, इस दुनिया के रंग ऐसे ही हैं।

गुरु तेग़बहादुर गुरु हरगोविंदजी के छोटे पुत्र थे। इनके बड़े भाई गुरदित्ता अपने पिता की आँखों के सामने ही इस संसार से चल बसे। गुरु हरगोविंदजी की मृत्यु के उपरांत उनके पोते गुरु हरराय गद्दी पर बैठे। गुरु हररायजी ने अपने बड़े पुत्र रामराय को गद्दी के अधिकार से च्युत कर दिया। गुरु हररायजी की मृत्यु के समय उनका छोटा पुत्र श्रीहरिकृष्ण अभी बिलकुल बालक था। देहली में गुरु-जी का देहांत होने पर बहुत-से लोग गद्दी पर अपना अधिकार जताने लगे, और अनेक स्थानों पर अनेक गुरु बन गए। सर्वसाधारण सिखों ने गुरु का पद गुरु तेग़बहादुरजी को सौंप दिया। गद्दी के दूसरे अधिकारी और गुरु गुरु तेग़बहादुर को 'तेगा झल्ला' कहकर परिहास करते थे। भाग्य की बातें कहिए या ईश्वर की करनी। एक व्यापारी ने कष्ट के समय गुरु की सेवा में एक सौ मुद्रा भेंट करने का प्रण किया था। विपत्ति से उद्धार पाने पर वह धन लेकर अमृतसर के निकट एक ग्राम में, जहाँ सब गद्दीधारी गुरु बैठा करते थे, आया। सब गुरुओं के सम्मुख वह पाँच-पाँच मुद्रा रखता गया, और वे लेकर प्रसन्न होते गए। जिस समय उसने श्रीगुरु तेग़बहादुरजी के चरणों

में भी पाँच मुद्रा अर्पण कीं, तो उन्होंने आश्चर्य से कहा—हैं, पाँच ही! व्यापारी ने समझा, यही वास्तव में गुरु हैं; इन्होंने जान लिया है कि मैंने क्या प्रण किया था। उसने तुरंत सब धन उनको अर्पण कर दिया। इस बात के सर्वसाधारण में प्रसिद्ध होने पर अकेले गुरु तेग़बहादुर ही सत्गुरु समझे जाने लगे।

इसी लाहौर का उदारण ले लीजिए। एक समय यहाँ मुसलमानों का ही डंका बजता था। हिंदू भी अपनी संतान को अरबी और फ़ारसी की शिक्षा लेने के लिये मसजिदों में भेजते और इसी में उनका लाभ समझते थे। मनुष्यों की वेश-भूषा भी समयानुसार बदल गई थी। न्यायालयों में 'शरह' का दौरदौरा था। हिंदू प्रजा भी 'शरह' के नियमों से परिचित होना आवश्यक समझी थी। उस समय किसी के हृदय में इस बात का आभास-मात्र न हो सकता था कि एक दिन इस लाहौर में उन्हीं सिखों का राज्य होगा, जिनके सिर शहीदगंज में प्रति दिन सैकड़ों की संख्या में काटे जाते थे। महाराजा रणजीतसिंह का समय आया। बड़ी-बड़ी दाढ़ियों का चलन हो गया; सुंदर दाढ़ीवाले को पुरस्कार मिलने लगा। किसका साहस था कि सिख सवारों की आज्ञा की अवहेलना करे। जिस ओर सिख निकल जाते, लोग भयाकुल हो काँपने लगते। एक समय इसलाम का प्रभुत्व था, फिर सिखों का हुआ; उसी तरह अब अँगरेज़ों और उसकी सभ्यता का समय है। अपनी जेबों से निकालकर लाखों रुपए हम अँगरेज़ी सभ्यता फैलाने के लिये कॉलेज़ों और स्कूलों पर व्यय कर रहे हैं। हम अपनी संतान को अँगरेज़ी पोशाक पहने देख प्रसन्न होते हैं। हमारे नवयुवक सड़कों और बाग़ों में टहलते हुए अँगरेज़ी बोलने में गौरव का अनुभव करते हैं। इसके विरुद्ध एक भी शब्द कहने का कोई साहस नहीं कर सकता। आजकल यह नक़ल की हवा चल रही है। हम यह भी नहीं सोच सकते कि कहीं इस नक़ल की

हवा ने हमें पाग़ल तो नहीं बना दिया! इसके विपरीत आज वही व्यक्ति पाग़ल समझा जायगा, जो इस हवा को पाग़लपन कहेगा, संसार उसे पाग़ल बना देगा। मैं नहीं कह सकता, मेरा विचार ठीक है या ग़लत, परंतु मुझे अनुभव होता है कि समय की वायु हमें उलटा उड़ाए लिए जा रही है। मैं कभी सोचता हूँ, मैं निरर्थक प्रयत्न कर रहा हूँ, समय की यह गति साधारण नहीं है, यह एक प्रबल आँधी है, इसमें मेरी धीमी-सी पुकार को कौन सुनेगा! कभी विचार आता है, चुप होकर बैठ जाऊँ, मुझे इससे क्या प्रयोजन। समुद्र का तूफ़ान एक मुट्ठी रेत डालने से नहीं रुक सकता। परंतु विवश हूँ, रहा नहीं जाता। हृदय का आवेग नहीं सँभलता। आओ, थोड़ा इस विषय पर विचार करें कि समय का प्रवाह किस प्रकार चलना आरंभ होता है? जिस प्रकार प्रकृति में आँधी या तूफ़ान आने के कई कारण होते हैं, वैसे ही मानव-समाज में समय की आँधी भी विशेष कारणों से ही आती और परिवर्तन उपस्थित करती है। जिस प्रकार प्रकृति में एक स्थान की वायु गरम हो जाने से ऊपर उठ जाती है, और उसके स्थान पर नई वायु आ जाती है, उसी तरह जब किसी जाति में अपनी रक्षा और शासन की शक्ति का अभाव हो जाता है, तो दूसरी जातियाँ आकर उसे अपने अधीन कर लेती हैं। प्रबल जातियाँ अपने साथ अपनी सभ्यता की वायु भी लाती हैं। इसलाम अपने साथ इसलामी वायु लाया था, और अँगरेज़ अपने साथ अँगरेज़ी सभ्यता की वायु लाए हैं।

इस प्रकार की आँधी आने का एक और भी ढंग है। किसी महापुरुष के मस्तिष्क में एक विचार उत्पन्न होता है। यह विचार शनैः-शनैः फैलना आरंभ करता है, और थोड़े ही समय में व्याधि के कीटाणुओं की भाँति जहाँ-तहाँ सब स्थानों में पहुँच जाता है। इस प्रकार विचार के फैल जाने पर उसकी पुराने विचारों से टक्कर लगती

है। यह टक्कर एक प्रकार के संग्राम का रूप धारण कर लेती है। इस टक्कर या संग्राम में पराजित हो जाने से नवीन विचार का लोप हो जाता है। परंतु विजय प्राप्त करने से वह अपने लिये स्थान बना-कर समाज में एक लहर उत्पन्न कर देता है, जिसके अनुसार समाज नए साँचे में ढल जाता है।

स्वामी दयानंद ने पश्चिमी सभ्यता के आक्रमण की भयंकरता को समझ लिया था। पश्चिमी सभ्यता ने केवल हमारी सभ्यता पर ही नहीं आक्रमण किया, बल्कि इसकी जड़ों को भी खोखला करना आरंभ कर दिया था। स्वामीजी के मस्तिष्क में विचार उत्पन्न हुआ कि वह अपनी सभ्यता की रक्षा का उपाय करें। स्वामीजी ने इस उद्देश को सम्मुख रख आर्य-समाज की स्थापना की। स्वामीजी के विचारों ने फैलना आरंभ किया। पुराने विचारों से टक्कर भी लगी और संग्राम भी आरंभ हो गया। यह कहना तो कठिन है कि इसका परिणाम क्या होगा, परंतु मेरे विचार में समाज ने ठीक मार्ग का अवलंबन नहीं किया। धर्म 'यज्ञ' से पुष्ट होता है, और 'यज्ञ' का अर्थ है त्याग तथा उत्सर्ग। समाज को आरंभ में त्याग का मार्ग कठिन जँचा। उसने ईसाइयों का अनुकरण कर स्कूल-कॉलेज तथा अन्य संस्थाओं की स्थापना द्वारा अपने धर्म का प्रचार करने का यत्न किया। इन संस्थाओं को चलाने के लिये धन की आवश्यकता अनु-भूत हुई। जनता से माँग-माँगकर फंड एकत्र किए गए। धन-संचय के लिये जलसों की आवश्यकता अनुभूत हुई। प्रत्येक समाज ने कोई स्कूल अथवा दूसरी अन्य संस्था स्थापित कर ली और धन-संचय के लिये उत्सव आरंभ कर दिए। इन उत्सवों को ही धर्म-प्रचार का मुख्य साधन समझ लिया गया। इन संस्थाओं के तो मैं इसलिये विरुद्ध हूँ कि ये हमें लाभ पहुँचाने के स्थान में हमारा नाश कर रही हैं। यदि इन संस्थाओं को ही लाभदायक समझा जाय, तो बंगाल ने

पंजाब और संयुक्त-प्रांत से कहीं अधिक उन्नति की है। बंगालियों ने केवल सरकार के ही ख़र्चे पर, जाति का एक पैसा भी ख़र्च किए बिना, इतना अधिक शिक्षा का प्रचार किया है कि उनके बराबर होने में अभी हमें बहुत समय लगेगा। फंडों के मैं इसलिये विरुद्ध हूँ कि मुझे ये मठों और दलबंदी की नींव प्रतीत होते हैं। चंदा माँगना मुझे इसलिये उचित नहीं जँचता कि इसके कारण लोगों के हृदय से दान देने की श्रद्धा उठ गई है। उचित तो यह था कि इन लोगों में तप और त्याग का बल होता, और लोग इनके चरणों पर धन का ढेर लगा देते; परंतु ये लोग झोली डाल निर्लज्ज बन माँगने के लिये निकल पड़े। इससे न लोगों के हृदय में दान की पवित्रता का विचार रहा, और न इन लोगों के लिये श्रद्धा। जलसे मुझे इसलिये निरर्थक जान पड़ते हैं, कि इनमें केवल दिखावा ही शेष रह गया है। हम इस दिखावे को ही काम समझकर इसमें अपनी शक्ति और समय नष्ट कर देते हैं, और दो दिन के पश्चात् थक-कर बैठ जाते हैं। फिर साल-भर आनेवाले जलसे की प्रतीक्षा करते रहते हैं। पुराने विचार के लोगों को रीति-रिवाज़ तथा विवाहों के बोझ ने मार दिया है, और नए विचार के लोगों को जलसों और कानफूँसों ने नष्ट कर दिया है। बात जहाँ की तहाँ है; बना कुछ नहीं।

आर्य-समाज ने मथुरा में स्वामी दयानंदजी की जन्म-शताब्दी मनाई है। क्या यह भी हमारे देश में होनेवाले बहुत-से जलसों की भाँति एक तमाशा ही रहेगा! यदि नहीं, तो मैं आर्य-समाज के नेताओं के सम्मुख प्रार्थना करूँगा, वे एक बार सोचें कि कहीं उन्होंने उलटा मार्ग तो नहीं पकड़ा है। यदि हमने उत्तर को छोड़ दक्षिण का मार्ग पकड़ा है, तो हम जितना ही चलेंगे, उतना ही उत्तरीय ध्रुव से दूर होते जायँगे। बौद्ध लोग भी महात्मा बुद्ध की

शताब्दियाँ मनाते थे, परंतु उसमें वे भिक्षुक सम्मिलित होते थे, जो संसार को लात मार धर्म-प्रचार को ही अपने जीवन का मार्ग बना लेते थे। वे रेल के द्वारा सैर करनेवाले तमाशबीन नहीं थे। वे शताब्दी मनाते हुए अपने जीवन का आदर्श निश्चित करते थे। यदि हमने शताब्दी मनाकर अपने समाज और अपने जीवन में कोई परिवर्तन न किया, तो आप सोचिए, हमें क्या लाभ पहुँचेगा?

मुझे तो सचमुच जाति की नाव भँवर में पड़ी दीखती है। हमारे मकान को आग ने घेर लिया है, और हम अपने परिवार तथा संतान के लिये मनोरंजन की सामग्री की चिंता में मग्न हैं। आप उस मनुष्य को क्या कहेंगे, जिसकी नौका डूबने के लिये तैयार है, और वह भोजन तैयार करने में व्यस्त है? वह भोजन पकाकर क्या करेगा? क्या वह उस भोजन को खा सकेगा? मेरे विचार में तो इस समय वायु का प्रवाह बदलने की आवश्यकता है। मैं देखता हूँ, इस काम के योग्य शक्ति मुझमें नहीं है। यों तो आत्माओं में अनंत बल होता है, परंतु साहस नहीं होता। क्या कुछ ऐसे महापुरुष हैं, जो इस कठिन समय में मेरी सहायता करेंगे?

बगला-भगत संसार

संसार में भले-बुरे मनुष्य सभी जगह रहते हैं। यदि संसार में बुरे मनुष्य न रहते, तो भलों के गुण का आदर कैसे होता? परंतु हमारे देश में तो बुराई भी अंतिम सीमा तक पहुँच गई है। यहाँ तक कि लोग धर्म को त्याग ध्यान, योग इत्यादि को भी ठगी का साधन बना रहे हैं।

एक समय था, हमारे देश में 'साधु' शब्द आदर-सूचक था; परंतु उस आदर का परिणाम यह हुआ कि लाखों निकम्मे आदमियों ने साधुओं का वेश धारण कर लिया, और इस समय सच्चे साधु दुष्प्राप्य हो गए हैं। इस देश में एक समय आया था, जब गुरु का सम्मान पिता और ईश्वर से भी अधिक होने लगा था। धूर्त मनुष्यों ने गुरु बनने में ही अपना मतलब पूरा होता देखा। ऐसे गुरु तो असंख्य हैं, परंतु सत्‌गुरु मिलना असंभव है।

"बगला-भगत" ये दो संक्षिप्त-से शब्द हैं; परंतु ये दोनों शब्द एक प्रकार की मनुष्य-प्रकृति को ऐसी अच्छी तरह समझा देते हैं कि कोई व्याख्यान और निबंध भी नहीं समझा सकता। प्रायः सभी ने नाले या तालाब के किनारे लंबी गर्दनवाले एक जीव को नेत्र मूँदे, ध्यानावस्थित भाव से खड़े देखा होगा। कभी-कभी तो यह तपस्वी केवल एक पैर पर घंटों खड़ा रहता है। इसके नेत्र मुँदे रहते हैं, परंतु इतने ख़ूनी रहते हैं कि निकट आई मछली बचकर निकल न जाय। भोली-भाली मछली तपस्वी की तपस्या के रहस्य को नहीं समझती, वह निर्भय हो उसके समीप आ जाती है। भक्तजी तुरंत अपनी लंबी चोंच से उसे आशीर्वाद दे स्वर्ग का यात्री बना देते हैं।

यह जीव संसार की नीति को बिलकुल स्पष्ट कर देता है। अपने-अपने काम में लगे हुए सभी लोग इस प्रतीक्षा में रहते हैं कि कब कोई उनके निकट आकर उनके जाल में फँसे। दूकानदार तकिया लगाए दूकान में बैठा है। उसका ध्यान बाज़ार में गुज़रनेवाले प्रत्येक व्यक्ति की ओर है। वह सोचता है, क्या उसकी दूकान किसी व्यक्ति को अपनी ओर खींच सकेगी? सैर करनेवाला अपने मतलब से इधर-उधर ताकता फिरता है। इन दोनों की अवस्था ठीक इस प्रकार है, जैसे एक नवयुवक सुंदर कपड़े पहन, तेल-फुलेल लगाकर वेश्याओं का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने के लिये बाज़ार में फिरता है। दूसरी ओर वेश्या सिंगार कर, कपड़े पहन, मुख को पाउडर से रँग, चमक-दमक कर प्रकाश के सम्मुख बैठ नवयुवकों का ध्यान आकर्षित करने की चेष्टा करती है। दोनों ही शिकार की आहट ले रहे हैं। जब कोई साथी मिल जाते हैं, तो दोनों यही समझते हैं, उन्होंने शिकार फँसा लिया। इस संसार का व्यवहार ठीक वेश्या के पेशे की भाँति है। कचहरियों में भी यही अवस्था है। सब लोग अपना-अपना जाल बिछाए शिकार की प्रतीक्षा में बैठे हैं। वकीलों के दफ़्तरों में भी यही कुछ देख पड़ता है। वैद्य और डॉक्टर भी लंबे चौड़े विज्ञापन देकर मूर्खों को बहकाने की चेष्टा करते हैं। धर्मस्थान में जाओ, तो वहाँ भी बगलों की मूर्तियाँ ही दृष्टिगोचर होंगी। स्त्रियाँ और पुरुष अपना स्वार्थ पूरा करने के लिये देवतों को ठगने के प्रयत्न में हैं। देवतों के पुजारी उन्हें ठगने के लिये जाल बिछाए हुए हैं। हम समझते हैं, रेल हमारे आराम के लिये बनाई गई है; परंतु रेलवाले जानते हैं कि ये मूर्ख लोग रात-दिन सफ़र कर हमारे लिये पैसे इकट्ठे करते रहते हैं। घी का व्यापारी नक़ली घी सस्ता बेचकर ग्राहकों को ठगता है, और हलवाई तेल और विदेशी खांड बरतकर ग्राहकों से पैसे ऐंठने की चिंता में रहता है।

मुझे तो संसार में कोई काम विना ठगी के नहीं दीखता। आप कहेंगे, स्कूलों और कॉलेजों के अध्यापक ठग नहीं; परंतु मुझे तो वहाँ भी वही तमाशा देख पड़ता है। कोई समय रहा होगा, जब शिक्षा देना धर्म-कार्य समझा जाता होगा। इस समय तो अध्यापकों और प्रोफ़ेसरों का पेशा भी कमाई की दौड़ में किसी से कम नहीं है। युनिवर्सिटी विद्यार्थियों और उनके संरक्षकों को लूटने के लिये एक बहुत अच्छी फ़र्म का काम कर रही है। मासिक शिक्षा-शुल्क के अतिरिक्त परीक्षा-शुल्क से लाखों रुपए की आय है। अध्यापकों में इस आय को परस्पर बाँटने के लिये खींचातानी हो रही है। जो पुस्तकें नियुक्त करने के काम पर रहते हैं, वे उसी से रुपया ऐंठने की चेष्टा करते हैं। थोड़े-थोड़े परिवर्तन से प्रति वर्ष नई पुस्तकें स्कूलों में नियुक्त की जाती हैं, ताकि हर साल नई पुस्तकें ख़रीदी जायँ, और उससे अध्यापकों की जेब में रुपया पहुँचे।

पुराने समय में एक-एक पुस्तक वर्षों चलती थी। पिता और पुत्र एक ही पुस्तक से पढ़ लेते थे। अब पुस्तकें लिखनेवाले भी बहुत हो गए हैं। अध्यापकों का व्यय भी बढ़ गया है। उन्हें मोटरों की भी आवश्यकता रहती है। पुस्तकें बेचनेवाले भी बढ़ गए हैं, इनका भी ख़र्च बहुत है। फिर विद्यार्थियों को लूटने के ढंग किस तरह न निकाले जायँ। कई अध्यापकों को इस लूट में भाग नहीं मिलता। वे और उपाय ढूँढ़ते हैं। वे किसी अमीर के लड़के को ताड़कर उसे तंग करना आरंभ कर देते हैं। उसके पिता के पास शिकायत जाती है कि विद्यार्थी अमुक विषय में निर्बल है, और इसके लिये घर पर एक अध्यापक (tutor) की आवश्यकता है। वही अध्यापक उसे घर पर पढ़ाने के लिये भी नियुक्त हो जाता है, ताकि विद्यार्थी की कमी पूरी हो जाय। विद्यार्थी की कमी तो क्या पूरी होगी, हाँ, अध्यापक की आय की कमी पूरी हो जाती है। स्कूलों को छोड़िए, सभाओं और समाजों की अवस्था

पर ध्यान दीजिए। मुझे तो साधारण लोग कुछ धूर्त और चतुर व्यक्तियों के हाथों में कठपुतली बने दीखते हैं। इन लोगों को सम्मान का लोभ है, इनके दूसरे सहायकों को धन की आवश्यकता है। इनकी इच्छा तब तक पूर्ण नहीं हो सकती, जब तक हिंदू-जाति टुकड़े-टुकड़े ही कर परस्पर लड़ने-मरने के लिये तत्पर न हो जाय। इन लोगों ने हिंदुओं की नाड़ी को पहचान लिया है, अर्थात् हिंदू ज़िद में आकर अपने भाइयों के विरुद्ध रुपया ख़र्च करने के लिये तैयार हो जाते हैं। इनमें इस ज़िद और ईर्ष्या के भाव को बढ़ाए रहने से ही उन जाति-द्रोहियों के लिये, जो अपने को नेता कहकर ठगना चाहते हैं, आराम के सभी साधन प्रस्तुत रह सकते हैं। इन लोगों की नीति मेरी समझ में नहीं आती। ये लोग अपने को हिंदू-संगठन का पोषक और समर्थक कहते हैं, और जो सभा संगठन के कार्य को करती है, उसके ये विरुद्ध काम करते हैं। मैं देख रहा हूँ, हिंदू प्रतिदिन मृत्यु की ओर सरक रहे हैं। इनके निरुत्साही हृदयों में जातीयता और संगठन के नाम पर कोई उत्साह उत्पन्न नहीं होता। इन्हें ठगने का यही तरीक़ा है कि इन्हें अपने ही किसी संप्रदाय या शाखा के विरुद्ध भड़काया जाय। बस, फिर मौज है। जो चाहो, इनसे करा लो। जो चाहो, इनसे ले लो। हिंदुओं को अपने भाइयों के विरुद्ध बहुत क्रोध आता है। इनकी सबसे बड़ी व्याधि यही है कि ये अपने किसी भाई की बात नहीं सह सकते; परंतु शत्रु के जूतों को चूमकर सह जाते हैं। हिंदू-जाति इस समय भयंकर संकट में गुजर रही है। इस समय जो मनुष्य हिंदू-संगठन के मार्ग में शरारत करके रोड़े अटकाता है, वह जातीय द्रोह का अपराधी है।

कुछ लोग शंका कर सकते हैं कि मैं भी हिंदू-सभा बनाना चाहता हूँ, और उपर्युक्त लांछन मुझ पर भी लग सकते हैं। मुझे इस विषय में केवल इतना ही कहना है कि आख़िर संसार में कोई सिद्धांत भी

होना चाहिए, जो जाति और राष्ट्र के जीवन और मृत्यु की समस्या को सुलझा सके। क्या जाति में संगठन और एकता के लिये प्रयत्न करना वैसा ही है, जैसा जाति के टुकड़े-टुकड़े करने का प्रयत्न करना? मैंने तो संसार के इतिहास से यही सीखा है कि जब किसी जाति के लिये भीतर या बाहर से जीवन-नाश की आशंका हो, तो उसे सब पारस्परिक भेद-भाव को ताक़ में रख संगठित हो जाना चाहिए। उसके लिये संगठन और आत्मरक्षा का धर्म ही सब धर्मों से ऊँचा है। यदि मैं जाति में भेद-भाव और अनेकता फैलाता हूँ, तो अपराधी और पापी हूँ। यह सभी स्वीकार करते हैं कि हमारी अवस्था को सुधारने का एक-मात्र उपाय जातीय संगठन और एकता ही है। मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ, आप संसार को इसके वास्तविक रंग में देखें!

मैं कह कुछ और रहा था, कह गया कुछ और। मैंने विषय कुछ और आरंभ किया था, परंतु आ गया हिंदू-संगठन पर। मैं विवश हूँ, कुछ नहीं कर सकता। जो विचार मन में स्थान किए हुए हैं, वे अव-सर न देखकर भी बाहर निकल आते हैं।

मेरा नया मज़हब

मैं सारी आयु आर्य-समाजी रहा हूँ। अब भी मेरे हृदय में आर्य-समाज के लिये वही प्रेम तथा ऋषि दयानंद के लिये वही श्रद्धा है, परंतु काम मैं हिंदू-संगठन का कर रहा हूँ। एक दिन एक आर्य-समाजी महाशय आए। उन्होंने मुझसे पूछा—"क्यों जी, आपने आर्य-समाज छोड़ दिया है, और अब सब समय हिंदू-संगठन के काम में ही लगे रहते हैं?" मैंने उत्तर दिया—"हाँ, आपका कहना ठीक है। मैं आर्य-समाज के बाहरी रूप के लिये प्रयत्न नहीं करता; परंतु मैंने ऋषि दयानंद और आर्य-समाज के भाव को ख़ूब समझा है, और उसी के लिये प्रयत्न कर रहा हूँ।" महाशयजी ने पूछा—"इसका क्या अर्थ है?"

मैं चाहता हूँ, इस विषय को कुछ स्पष्ट करके कहूँ। प्रत्येक आंदोलन के दो अंग होते हैं। एक उसकी बाह्य आकृति और रूप, और दूसरा उसकी आत्मा तथा उसका भाव। गुरु गोविंदसिंह ने खालसा बनाया। खालसे का भाव या आत्मा एक वस्तु है, और उसका रूप या चिह्न दूसरी वस्तु। खालसे का संगठन करने के पूर्व गुरुजी ने पाँच प्यारे बनाए, जिनमें चार अछूत जातियों के थे। गुरु ने इनसे कहा, तुम्हें क्षत्रिय बना दिया गया है, और तुम्हारा कर्तव्य है कि धर्म की रक्षा करो। पुरानी प्रथा के अनुसार उन्हें यज्ञोपवीत देने का प्रश्न उपस्थित हुआ। गुरुजी ने सोचा, इन्हें यज्ञोपवीत देने से ब्राह्मणों और क्षत्रियों में असंतोष उत्पन्न होने की संभावना है। उन्होंने उनसे कहा, तुम्हारा यज्ञोपवीत तुम्हारी कृपाण का चमड़ा है। खालसा का उद्देश्य धर्म की रक्षा था। समय आने पर बाह्य चिह्नों का सम्मान बढ़ गया, और भाव उड़ने लगा।

संसार में हिंदू-जाति सबसे प्राचीन है। प्राचीन काल से ही इस जाति को एक रोग लग गया है। इसे उड़ाने और सुधारने के लिये कई आंदोलन किए गए। सभी आंदोलनों ने थोड़ा-बहुत काम किया; परंतु कालांतर में उनके अनुयायी उनके बाह्य चिह्नों में ही फँस गए, और अपने वास्तविक उद्देश को भुला बैठे। परिणाम यह हुआ कि वे आंदोलन जाति की उन्नति करने के स्थान में जाति के लिये एक बोझ बन गए। इसी प्रकार शनैः-शनैः इस जाति में अनेकों संप्रदाय और मठ बनाए गए हैं। इन मठों और संप्रदायों की शिक्षा जाति के टुकड़े-टुकड़े कर इसे विनाश की ओर ले जा रही है। प्रत्येक संप्रदाय इसे अपनी-अपनी ओर खींच रहा है, और जाति दिन-दिन निर्बल होकर अवनत हो रही है।

मैं मानता हूँ कि ऋषि दयानंद के आंदोलन का अभिप्राय जाति को संगठित कर एक ही धर्म में दीक्षित करना था, इसी उद्देश की पूर्ति के लिये स्वामीजी ने समाजों की स्थापना की, पुस्तकें लिखीं, शास्त्रार्थ और खंडन-मंडन किए। उनका उद्देश जाति की रक्षा करना था, ये सब काम उसके साधन थे। उद्देश स्थिर होता है, परंतु साधन समयानुकूल होते और बदले जा सकते हैं। आर्य-समाज का उद्देश वैदिक ज्ञान की रक्षा, वेदानुमोदित एक ब्रह्म की पूजा और वर्णाश्रम धर्म की स्थापना है। मेरा विश्वास है कि हिंदू-जाति का मस्तिष्क और शरीर इसी में आ जाता है, और इनकी रक्षा करना ही हिंदू-जाति की रक्षा करना है।

क्या आर्य-समाज ऐसा कर रहा है? इसमें संदेह नहीं कि जहाँ तक आर्य-समाज के सदस्यों की समझ में आता है, और उनमें शक्ति है, वे इस उद्देश की पूर्ति के लिये प्रयत्न कर रहे हैं। परंतु मेरे विचार में आर्य-समाज का मार्ग ठीक नहीं। मैं पूछता हूँ, समाज ने वर्णाश्रम-धर्म की स्थापना के लिये क्या किया है? गुरुकुल तो

हुआ, परंतु जो लोग वकालत या सरकारी नौकरी करते हैं, वे किस वर्ण में गिने जायँगे? यदि वे शूद्र समझे जायँ, तो वे वेद की रक्षा के अधिकारी किस मुँह से बन सकते हैं? माना, आर्य-समाज मूर्ति-पूजा का खंडन करता और इसे ब्रह्म की पूजा में बड़ी रुकावट समझता है। निस्संदेह मूर्ति-पूजा निंदनीय है यदि वह ब्रह्म की पूजा में बाधक हो। परंतु 'व्यक्ति-पूजा' एक ऐसी प्रबल वस्तु है, जिससे मनुष्य बच नहीं सकता। व्यक्ति-पूजा, जिसे 'वीर-पूजा' कहना चाहिए, जातीय जीवन का मुख्य सहारा है। मेरी सम्मति में आजकल की धन-पूजा ब्रह्म-पूजा में मूर्ति-पूजा से कहीं अधिक बाधक है। क्या इस समय आर्य-समाज की संपूर्ण शक्तियाँ धन-पूजा की ओर नहीं लगी हुई हैं? और, यह धन-पूजा भी ठीक ढंग से नहीं हो रही है, जिसके परिणाम-स्वरूप हिंदू-जाति की जड़ों पर कुल्हाड़ी चल रही है। इस धन-पूजा या संसार-पूजा के उद्देश से सरकारी शिक्षा का प्रचार करना वैदिक सिद्धांतों के प्रचार में सबसे बड़ी रुकावट है। मेरे विचार में इस समय समाज स्वयं एक नया संप्रदाय बनकर अपने उद्देश को भुला रहा है। मैं चाहता हूँ, मेरा विचार ठीक न हो। इस समय हिंदू-संगठन ही जाति की रक्षा और उन्नति का एक-मात्र उपाय है, इसलिये मुझे संगठन में ही आर्य-समाज का उद्देश देख पड़ता है, और यही हमारे जीवन और मृत्यु का निर्द्धारक प्रश्न है। मुझे संगठन में एक नया धर्म या मज़हब दीखता है। इस मज़हब का एक ही उसूल या सिद्धांत है। वह यही कि इस समय जाति में संगठन उत्पन्न करने के लिये सब भेदों और विरोधों को भुला दिया जाय। हिंदू-धर्म की यह बड़ी विशेषता है कि इसमें सब विचारों और विश्वासों के मनुष्य सम्मिलित हो सकते हैं। हिंदू-धर्म की सबसे बड़ी विशेषता विचार-स्वतंत्रता है। प्रत्येक हिंदू का कर्तव्य है कि मनुष्य-समाज की इस पवित्र संपत्ति की रक्षा

के लिये युद्ध करने को प्राण-पण से तैयार हो जाय। यही भाव हमें संगठित कर सकता है। क्या यह धर्म मुझे मुक्ति दिला सकेगा ?

बहुत-से मनुष्य दूसरे-दूसरे संप्रदायों और मठों में मुक्ति के इच्छुक बनकर फिरते हैं। हिंदुओं के इस रोग के कारण, जो हमारी निर्बलता का भी मुख्य कारण है, बहुत-से मठ उत्पन्न हो गए हैं, जिनके महंत मकड़ी की भाँति जाला ताने शिकार की घात में बैठे रहते हैं। एक कहते हैं—"आओ, कान बंद करना सीख लो। हम तुम्हें समाधि पर पहुँचा देंगे; आओ, यह शब्द सुनो।" दूसरे कहते हैं—"आओ, हमारे गुरु के चित्र के सम्मुख आरती उतारो, तुम्हारा जीवन इतना ऊँचा हो जायगा कि सीधे मुक्ति के द्वार पर पहुँच जाओगे।" इन मठाधीश ठगों ने हमारी जाति को क्षय-रोग की भाँति भीतर से खोखला कर दिया है। इन्होंने अज्ञानियों और मूर्खों को मुक्ति का प्रलोभन देकर उन्हें मानसिक दासता के पाश में फँसा रक्खा है। जहाँ हिंदुओं को अन्य भीतरी, बाहरी व्याधियों से छुटकारा पाना होगा, वहाँ उन्हें इस गुलामी के जाल को भी तोड़ फेंकने की चेष्टा करनी होगी। मैं इन भोले-भाले मुक्ति के अभिलाषियों को बता देना चाहता हूँ कि मुक्ति का मुख्य और सीधा मार्ग जाति का हित-चिंतन ही है। जो व्यक्ति जाति-हित के लिये अपने को बलिदान कर सकता है, वह सीधा मुक्ति की ओर जा रहा है। इस मार्ग में कोई धोका फ़रेब या ठगी नहीं है। संगठन एक सच्चा धर्म है, जो जाति की स्वतंत्रता के उद्देश पूरा कर देगा और प्रत्येक हिंदू के लिये मुक्ति का मार्ग खोल देगा। आओ हिंदू नवयुवको, वृद्धो, और बालको, स्त्रियो और पुरुषो, इस नवीन धर्म में दीक्षित हो जाओ। यह धर्म गंगा की धारा के समान पवित्र है, इसमें स्नान कर अपने को शुद्ध करो।

मेरा नया गुरु-मंत्र

हिंदुओं की गुरु-मंत्र पर अगाध श्रद्धा होती है। उनका विश्वास है कि एक विशेष मंत्र का जप उन्हें सब संकटों और भयों से सुरक्षित कर सकता है, और उनके लिये मुक्ति का मार्ग साफ़ कर देता है। गुरु वह सत्पथदर्शक है, जो उस मंत्र को उनके कान में फूँक देता है। मैं हिंदुओं को एक मंत्र बतलाना चाहता हूँ, जो उन्हें सब दुःखों से मुक्त कर देगा, उनके लिये मुक्ति के सुख को सुगम और सुलभ बना देगा। मैं यह भी प्रार्थना कर देना चाहता हूँ कि शेष सब मंत्र इस समय निष्फल और निरर्थक हैं, चाहे किसी समय वे कितने ही सुंदर और उत्तम रहे हों। प्रत्येक विश्वास के हिंदू-स्त्री और पुरुष का कर्तव्य है कि इस मंत्र को ग्रहण करे, दिन-रात इसका जप करे। वैदिक काल में वर्णाश्रम-धर्म द्वारा जाति की रक्षा होती थी। महाभारत के युद्ध के पश्चात् इस देश में अज्ञान और अंधकार छा गया। हमारे ऋषि-मुनियों ने धर्म-रक्षा का साधन तप को बतलाया। महात्मा बुद्ध ने त्याग-धर्म को सबसे ऊँची पदवी देकर अपने सिद्धांतों का प्रचार किया। बौद्धों की त्याग-शक्ति का मुक़ाबला करने के लिये शंकराचार्य ने संन्यासियों के बड़े-बड़े मठ स्थापित किए, जिन्होंने अपने त्याग और ज्ञान के बल से हिंदू-जाति के धर्म की रक्षा की। यद्यपि यह सच है कि इसलाम तलवार द्वारा फैला है, परंतु हम इस सत्य से भी इनकार नहीं कर सकते कि बाबा फ़रीद-जैसे भक्त ने भी लाखों भोले हिंदुओं को इसलाम में खींच लिया है। इस शक्ति का मुक़ाबला करने के लिये उस समय के सुधारकों ने हिंदू-धर्म में भक्ति-मार्ग का प्रचार किया। इसी

समय गुरु नानक ने सेवा-धर्म को महत्त्व देकर पंजाब में सिख-धर्म की स्थापना की।

सब उपाय करने पर भी रोग बढ़ता ही गया। भीतरी व्याधियों के अतिरिक्त इस जाति को बाहरी व्याधियाँ भी हड़प जाने के प्रयत्न में लगी हुई थीं। धर्म का आवरण-मात्र शेष रह गया है, सार निकल चुका है। हमने मरा हुआ पक्षी हाथ में पकड़ रक्खा है। हम बाह्य आडंबर और दिखावे को धर्म मानने लग गए हैं। सब प्रकार की पुरानी प्रथाएँ, जिनका अर्थ भी हम समझ नहीं सकते, हमारे गले का हार बनी हुई हैं। हमारे सब संस्कार केवल बच्चों का खेल-मात्र बन गए हैं। उपनयन संस्कार के समय बालक का पाँच मिनट के लिये दंड तथा मृगचर्म धारण कर लेना पर्याप्त समझा जाता है। एक मिनट में आचार्य के समीप जाकर, दूसरे मिनट में घर लौटकर, वह ब्रह्मचर्य समाप्त कर देता और दूसरे दिन अँगरेज़ी पढ़ने के लिये स्कूल चला जाता है। हमारे बच्चों का सरकारी स्कूलों में जाना अधिक आवश्यक और महत्त्व-पूर्ण समझा जाता है, तो ऐसा ही करो; पुराने संस्कारों की मिट्टी ख़राब करने से क्या लाभ?

स्वामी दयानंद ने मूर्ति-पूजा का खंडन किया है, और युक्ति दी है कि इससे आर्य-धर्म का नाश हुआ है। यदि वास्तव में मूर्ति-पूजा का ऐसा भयंकर परिणाम हो, तो इससे बुरी वस्तु दूसरी नहीं हो सकती। परंतु इस मूर्ति-पूजा से भयंकर यह संसार-पूजा है, जिसने हमारी स्त्रियों, पुरुषों, बच्चों तथा समाज का नाश कर हमें धर्म से विमुख कर दिया है।

स्वामी दयानंद ने इस पाखंड और दासता से बचने के लिये ही आर्य-समाज की नींव डाली थी। समाज तो एक संस्था है, परंतु इसका जो उद्देश है, उसकी पूर्ति के लिये हम इतिहास में अनेक बार प्रयत्न होते देखते हैं। वह उद्देश हमारी जातीयता की, हमारी सभ्यता

की रक्षा है। यह सभ्यता हमारी जाति की आत्मा थी। इस आत्मा को जाति के शरीर में प्रविष्ट करना ही समाज का कर्तव्य है।

इस जाति के दुर्भाग्य से आर्य-समाज के संचालक जाति के बाह्य चिह्नों के पीछे पड़े हुए हैं, और वास्तविक उद्देश से निश्चिन्त हैं। उन्होंने समाज को ही मुख्य कर्तव्य समझ परस्पर लड़-झगड़कर दो पार्टियाँ बना ली हैं। इस विवाद का कारण दयानंद कॉलेज की शिक्षा-प्रणाली बनी, और पीछे से मांस के प्रश्न ने सिद्धांत का रूप धारण कर लिया। मेरी सम्मति में आर्य-समाज को सरकारी शिक्षा के प्रचार में भाग लेना चाहिए या नहीं, इस विषय में पं० गुरुदत्तजी बिलकुल ठीक कह गए हैं। इसके पश्चात् मांस का प्रश्न उठाकर दो पार्टियाँ बना देना ठीक न हुआ। आर्य-समाज की दो पार्टियाँ हो जाने से दोनों भिन्न-भिन्न संप्रदाय बनकर अलग-अलग काम में लग गईं, और आर्य-समाज का उद्देश जहाँ का तहाँ रह गया। इसके अतिरिक्त, पंजाब में जाति का हित चाहनेवाले जितने मनुष्य थे, वे सभी किसी-न-किसी पार्टी में सम्मिलित होकर पार्टी के ऐसे कट्टर पक्षपाती बन गए कि जाति का हित उनके हृदयों से कोसों दूर चला गया। इस काम का दूसरा परिणाम यह हुआ कि बचे हुए भद्र पुरुष, जिन्हें पुराने पंडितों के सिद्धांत अधिक पसंद आए, सनातनधर्म-सभाएँ बनाकर उस ओर लग गए। पंजाब में हिंदू-जाति की चिंता करनेवाला कोई न रहा।

अपने-अपने विचार के अनुसार प्रत्येक मनुष्य को अपने समाज का काम ही उचित प्रतीत होता है। परंतु मैं यह निवेदन कर देना चाहता हूँ कि पिछले तीन वर्ष के इतिहास ने, जिसमें मालाबार और कोहाट की घटनाएँ मुख्य हैं, यह बात स्पष्ट कर दी है कि हिंदू-क़ौम के नष्ट हो जाने पर इन पृथक्-पृथक् संस्थाओं के लिये कोई स्थान न रह जायगा। यदि कोहाट में हिंदू ही न रहेंगे, तो समाज और सनातन-

धर्म कहाँ रहेंगे ? हिंदू-जाति का शरीर था, तभी इसमें शंकराचार्य, नानक और दयानंद उत्पन्न हो सके। इस देश में राम और कृष्ण का नाम लेनेवाले थे, तभी इस देश में प्रताप, शिवाजी और बंदाबहादुर उत्पन्न हुए। जाति तो एक ही हैं, आर्य और हिंदू एक ही जाति के बाह्य नाम-मात्र हैं। शब्दों के भेद से जाति के अस्तित्व में कोई अंतर नहीं पड़ सकता। इस जाति ने हमारे लिये बड़े-बड़े सुधारक और वीर उत्पन्न किए हैं। इस जाति की रक्षा ही हिंदू-मात्र का मुख्य धर्म है। इस प्रश्न के सम्मुख दूसरे सब प्रश्न गौण हो जाते हैं। इस जाति का शरीर अत्यंत वृद्ध हो जाने से इसमें अनेक दोष उत्पन्न हो गए हैं; परंतु इस जाति की सबसे बड़ी विशेषता, जैसा ऊपर कहा जा चुका है, विचारों की पूर्ण स्वतंत्रता और उच्च आध्यात्मिक जीवन है। संसार की किसी दूसरी जाति और धर्म का ऐसा उच्च आदर्श नहीं है। यह जाति संसार में जीवित रहेगी, तो यह आदर्श भी पूर्ण होगा। इस जाति की जीवन-रक्षा के लिये केवल हिंदू-संगठन की आवश्यकता है। इसलिये मेरा प्रत्येक हिंदू से अनुरोध है कि वह हिंदू-संगठन का ध्यान और हिंदू-संगठन का जप करे।

मेरा देश-प्रेम

जाति में जातीयता का भाव जागरित रहने से ही जीवन रहता है। इस भाव में कमी आ जाने से जाति में निर्बलता आ जाती है, और यह भाव मिट जाने से जाति नष्ट हो जाती है। यह भाव कृत्रिमता से नहीं उत्पन्न हो सकता। जातियों के निर्माण में बहुत समय लगता है, और यह काम प्रकृति के नियम के अधीन होता है। प्रथम अवस्था में मनुष्य केवल अपने व्यक्तित्व की ही चिंता करता है। यह समय पशुत्व का है। इसके पश्चात् पारिवारिक जीवन का काल आता है, और मनुष्य अपने जीवन को परिवार के लिये अर्पण कर देता है। पारिवारिक जीवन बढ़कर वंश का रूप ले लेता है, और मनुष्य अपने वंश के लिये अपने जीवन को अर्पण कर देता है। बहुत-से वंश बढ़कर एक जाति का रूप धारण कर लेते हैं। मनुष्य के व्यक्तित्व का कुछ अस्तित्व नहीं। शनैः-शनैः जाति में अनेक भाव उत्पन्न हो जाते हैं, और रुधिर के एक होने से एक भाषा, एक शासन और वीर-पूजा के भाव का प्रचार हो जाता है। यही भिन्न-भिन्न श्रृंखलाएँ जाति को एकता के बंधन में बाँधे रखती हैं। इन संबंधों के अभाव में भी मनुष्य एकत्र रहकर एक शासन से शासित हो सकते हैं; परंतु इनमें जातीयता की श्रृंखला नहीं रह सकती। आस्ट्रिया के शासन के नीचे अनेक जातियाँ कई शताब्दियों तक इकट्ठी रहीं, परंतु पिछले महायुद्ध के समय जब दबाव पड़ा, वे सब छिन्न-भिन्न हो गईं; क्योंकि इन्हें मिलानेवाली शक्ति वर्तमान नहीं थी।

राष्ट्रीय अथवा जातीय भाव की दृढ़ता होने पर दो अन्य दृश्य हमारे सम्मुख उपस्थित होते हैं। पहला यह कि जब किसी जीवित

राष्ट्र या जाति में अन्य जाति के बहुत-से मनुष्य आकर प्रविष्ट हो जाते हैं, तो वे उस जाति के रीति-रवाज और वेश-भूषा-भाषा को अपनाकर उस जाति का अंग बन जाते हैं। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है। दूसरा यह कि जब किसी जाति के मनुष्यों की एक संख्या दूसरी जाति की सभ्यता और संस्कृति को अपना लेती है, तो वह उस देश में रहती हुई भी दूसरी जाति का अंग बन जाती है। उदाहरण के लिये भारत में रहनेवाले बहुत-से मनुष्यों ने भारत में रहते हुए भी अपने को अरबी बना लिया है। इन लोगों के रीति-रवाज, नाम तथा जीवन-निर्वाह का सब ढंग अरबी हो गया है। यद्यपि जातीयता का भाव स्वयं ही उन्नति और अवनति ही करता रहता है, परंतु विदेशी शक्तियों से मुक़ाबला होने पर जातीयता के भाव का अभाव जाति के लिये घातक प्रमाणित हो जाता है। मिसर की राष्ट्रीयता और सभ्यता संसार में बहुत पुरानी गिनी जाती थी। इसलाम के आक्रमणों के प्रभाव से वह सब कुछ नष्ट हो गया, और मिसर के निवासी अरबी-भाषा और संस्कृति को अपनाकर अरबी बन गए। फ़ारस की अवस्था इसकी अपेक्षा अच्छी रही। यद्यपि उन्हें अपना मज़हब छोड़ना पड़ा; परंतु उन्होंने अपनी भाषा और प्रथाओं को नहीं छोड़ा, और अरबी विजेताओं को अपनी सभ्यता तथा भाषा देकर अपनी जाति में सम्मिलित कर लिया। यहाँ तक कि जब इसलाम फैलता हुआ भारत तक पहुँचा, तो यहाँ मुसलमानों ने भी फ़ारसी-भाषा और शाहनामे को इसलाम का अंग मानकर अंगीकार कर लिया। यदि भारत के मुसलमान ईरानियों से शिक्षा लेते, तो उनके लिये उचित था कि भारतीय भाषा और सभ्यता से प्रेम रखते हुए भी वे इसलाम को ग्रहण करते, और नवीन मत ग्रहण करने पर भी राष्ट्र और जाति का अंग बने रहते। परंतु खेद है कि भारतीय मुसलमानों ने ईरानी शासकों के प्रभाव में

आकर अपनी सभ्यता, भाषा तथा जातीयता को भी छोड़ दिया।

इस संबंध में इँगलैंड का दृष्टांत हमारे और मुसलमान भाइयों के लिये उपयोगी होगा। ईसा की छठी शताब्दी में इँगलैंड में ईसाई-धर्म का प्रचार हुआ। राजा, प्रजा, सभी ईसाई हो गए, और उन्होंने रोम में रहनेवाले पोप को अपना धार्मिक नेता मान लिया। थोड़े समय पश्चात् इँगलैंड में राष्ट्रीयता के भावों का प्राबल्य हुआ। उन्होंने ईसाई होते हुए भी पोप की अधीनता स्वीकार करने से इनकार कर दिया। यही अवस्था जर्मनी की भी हुई। योरप के शासकों और पोप में परस्पर उतरा-चढ़ी का इतिहास विशेष मनोरंजक है। इँगलैंड में समय-समय पर इस प्रकार के नियम पास किए गए, जिनसे इँगलैंड ने ईसाई होते हुए भी दूसरी जाति का धार्मिक शासन स्वीकार न करने में सफलता प्राप्त की। इँगलैंड में धार्मिक सुधार का आंदोलन निरा धार्मिक ही न था। इसकी तह में राष्ट्रीयता का भाव काम कर रहा था। इसी कारण से इँगलैंड की पार्लियामेंट ने अपने राजा को पोप के चंगुल से निकलने में बहुत सहायता दी। यहाँ तक ही नहीं, बल्कि जब स्पेन के रोमन कैथलिक राजा ने इँगलैंड को पोप के अधीन करने के लिये उस पर भयंकर समुद्री आक्रमण किया, तो इँगलैंड के रोमन कैथलिक संप्रदाय के लोग भी उसके विरुद्ध लड़ने के लिये तैयार हो गए। इसका कारण स्पष्ट है। इँगलैंड के रोमन कैथलिक रोमन कैथलिक होने पर भी राष्ट्रीयता के विचार से शून्य नहीं थे। उन्होंने हमारे मुसलमान भाइयों की भाँति राष्ट्रीयता को तिलांजलि नहीं दे दी थी। हमारे राजनीतिक नेताओं ने हिंदू-मुसलिम प्रश्न पर गंभीरता से विचार नहीं किया। वे समझते हैं कि हिंदू-संगठन को बुरा कह देने से, हिंदुओं और मुसलमानों को ज्यों-त्यों एक स्थान पर मिला देने से ही एकता हो जायगी। एकता एक भाव के होने से ही हो सकती है; ईंट और रोड़े इकट्ठे कर देने

से एकता नहीं हो सकती। सच्ची एकता उसी समय होगी, जब मुसलमान अपने को भारतीय राष्ट्र—हिंदोस्तानी क़ौमियत—में सम्मिलित कर लेंगे। इस काम में सफलता न होने का कारण यह है कि इस समय भारत पराधीनता की अवस्था में है। इस समय भारत के हित का कोई काम करने के लिये साहस और बलिदान की आवश्यकता है। मुसलमानों को अन्य मुसलमान देश स्वतंत्र दीखते हैं, और वे उनसे संबंध जोड़ना चाहते हैं। हमारे देश में वास्तविक एकता तभी होगी, जब मुसलमान भाई इस देश और इसके निवासियों से प्रेम करना सीखेंगे।

यदि मुसलमान इस देश के निवासियों से प्रेम करना नहीं सीखते, तो एकता का एक दूसरा ढंग भी है। एकता-एकता की रट लगाने से कुछ लाभ नहीं। इसका उपाय यह है कि हमारे देश के मुसलमान अपने को एक दूसरी जाति मानकर भी यह अनुभव करने लगें कि उनका दिल हिंदुओं के साथ मिलकर उन्नति करने में ही लगा हो। परंतु यह तभी हो सकता है, जब हिंदुओं में पूर्ण संगठन और शक्ति होगी। इसलिये यह प्रकट है कि संगठन में ही जाति और देश का सच्चा हित है।

हमारा नया आदर्श

एक नौजवान मेरे पास आया। उसने मुझसे पूछा—बताइए मैं क्या करूँ ?

मैंने कहा—इस प्रश्न का उत्तर देना मेरे लिये असंभव है, जब तक मैं यह न जान लूँ कि तुम्हारा आदर्श क्या है। यदि तुम्हारे सम्मुख अपने जीवन को सुखमय बनाने का आदर्श है, और उसके लिये तुम अपने देश को बेचने की परवा नहीं करते, तो तुम्हारे लिये अनेक दरवाज़े खुले हैं। सारी दुनिया उस ओर दौड़ी जा रही है, तुम भी उसके पीछे हो लो, दौड़ते जाओ, या लँगड़ाते जाओ, कहीं-न-कहीं आराम की जगह पहुँच ही जाओगे।

नवयुवक ने कहा—मुझे आराम की आवश्यकता नहीं, परंतु मेरे सिर पर बहुत-से उत्तरदायित्व भी हैं; मुझे उनका भी प्रबंध करना है।

मैंने कहा—तुम्हारा कहना ठीक है; परंतु हमारे देश की अवस्था ऐसी पेचीदा है कि किसी भी उत्तरदायित्व का पूरा करना कठिन है। हमारे नवयुवकों के सम्मुख जीवन-संग्राम का क्षेत्र बहुत विकट है। हम देश-भक्ति का भी दम भरते हैं, और उत्तरदायित्व का भी विचार करते हैं। हमें चाहिए, हम देश के प्रति उत्तरदायित्व अथवा संबंधियों के प्रति उत्तरदायित्व में से एक मार्ग चुन लें। हम दोनों मार्गों पर एकसाथ नहीं चल सकते।

मेरी बात सुन उसने एक और प्रश्न पूछा। उसने कहा—क्या हम देश की उन्नति तथा सांसारिक उन्नति एकसाथ नहीं कर सकते ?

मैंने कहा—जिन देशों में अवस्था अनुकूल हो, वहाँ वैयक्तिक उन्नति तथा देश की उन्नति एकसाथ हो सकती है; परंतु देश के पराधीन

होने पर ये दोनों भी परस्पर विरुद्ध हो जाती हैं, और कोई व्यक्ति अपने लाभ की चिंता न करके ही देश-हित कर सकता है। उदाहरण के लिये महायुद्ध के समय मिस्टर लायड जॉर्ज इँगलैंड के मंत्री थे। उन्होंने युद्ध में काम करके देश का भी हित किया, और स्वयं भी उच्च पद और सम्मान प्राप्त किया। परंतु जिस भारतवासी ने युद्ध में सरकार की सहायता की, उसने देश के लिये कुछ नहीं किया।

इस समय हमारे देश में वही मनुष्य धन कमा सकता है, जो अपने हित के लिये देश का बलिदान कर दे। मुझे तो सब ओर ठगी का बाज़ार गरम दीखता है, और ईमानदारी से रुपया कमाने का कोई ढंग दिखाई नहीं देता। प्रत्येक धन कमानेवाला मकड़ी की भाँति जाला तानकर शिकार की प्रतीक्षा में बैठा रहता है। कोई बगलाभगत बन, आँखें मूँद जनता को फँसाता है; कोई वेश्या की भाँति सजधज और आडंबर कर लोगों को ठगता है। शराब के व्यापारी भड़कीले विज्ञापन लगाकर नौजवानों को प्रलोभन में फसाते हैं। सिगरेटों के एजेंट मुफ़्त सिगरेटें बाँटकर बच्चों की आदतें बिगाड़ते हैं। विदेशी कपड़े के व्यापारी अपने देश के व्यापार का नाश कर मालामाल बनते हैं। खाँड़ के व्यापारी विदेशी खाँड़ में गुड़ मिलाकर देसी खाँड़ बनाते हैं। और तो और, अब घी के एजेंट भी बन गए हैं, जो योरप के घी को बाज़ार में भेजकर उसे वार का घी कहकर बाज़ार में बेचेंगे। कोई उनसे पूछे कि तुम ऐसा क्यों करते हो, तो उनका उत्तर होगा—'आप ही बताइए, ईमानदारी से कौन रुपया कमाता है?' क्या वकील लोग?, जो निर्द्धन भाइयों को मुक़दमेबाज़ी में फसाकर स्वयं मोटरें ख़रीदते और कोठियाँ बनाकर रहते हैं। क्या कौंसिलों के मेंबर?, जो अपने वैयक्तिक लाभ के लिये जनता में विरोध फैलाते हैं। क्या ज़मींदार और रईस?, जो अपने भोग-विलास में प्रजा के लाखों रुपए उड़ा रहे हैं। परि-

णाम यह निकला कि जो व्यक्ति देश में धन कमाने की चेष्टा करता है, वह देश-भक्ति के मार्ग से उलटे मार्ग पर चलता है। यदि हम देश-हित करना चाहते हैं, तो हमें दुनिया के मार्ग को छोड़ देना पड़ेगा।

देश का हित क्या है और किस बात में है, इस प्रश्न का उत्तर दिया जा चुका है, और हिंदू-मुसलमान, शासित और शासक सब इसे स्वीकार कर चुके हैं कि वह स्वराज्य है, और उसी से हमारे देश की अवस्था सुधर सकती है। कुछ लोग पूछेंगे कि स्वराज्य से क्या लाभ है? हम अपने-अपने संप्रदाय की उन्नति करेंगे, जब हमारा संप्रदाय फैल जायगा, तब हमें स्वयं स्वराज्य मिल जायगा। इसके विना तो स्वराज्य मिल ही नहीं सकता। भारत में अनेक संप्रदाय हैं। यदि सभी संप्रदाय फैलने की चेष्टा करें, तो ऐसा कोई दिन नहीं आ सकता, जिस दिन संपूर्ण भारत में एक ही धर्म हो जाय। परंतु यदि सब संप्रदायों के मनुष्य मिलकर प्रयत्न करें, तो स्वराज्य मिल सकता है। स्वराज्य के विना कोई संप्रदाय पूर्ण उन्नति नहीं कर सकता। स्वराज्य की प्रबल इच्छा ही देश में राष्ट्रीयता का भाव उत्पन्न कर सकती है। इस इच्छा के बहुत प्रबल हो जाने पर हमारे अन्य सभी भेद-भाव स्वयं मिट जायँगे, और हम-में सच्ची राष्ट्रीय एकता उत्पन्न हो जायगी।

क्या स्वराज्य के लिये हम अपना मज़हब छोड़ दें? नहीं, कभी नहीं। स्वराज्य का तो प्रयोजन ही हमारे कष्टों का निवारण है। स्वराज्य मिलने पर ही हम अपने धर्म के विस्तार और उसकी रक्षा का पूरा प्रबंध कर सकेंगे। एक मनुष्य ज़ंजीरों से जकड़ा हुआ है। वह वेद का स्वाध्याय या अपने धर्म का प्रचार करना चाहता है। उसका पहला कर्तव्य यह है कि वह पहले ज़ंजीरों से मुक्ति प्राप्त करे। स्वतंत्रता प्राप्त करने पर वह चाहे जिस काम में अपना

जीवन लगा सकता है; परंतु जब तक वह अपने जीवन का मालिक नहीं, वह कुछ भी नहीं कर सकता। इस समय हमें स्वराज्य के अति-रिक्त अन्य किसी बात का ध्यान न करना चाहिए।

परंतु सबसे बड़ा प्रश्न यह है कि स्वराज्य मिल कैसे सकता है? स्वराज्य हिंदू-मुसलिम एकता के विना मिलना असंभव है, परंतु दुःख यह है कि हमारे मुसलमान भाई स्वराज्य की इच्छा नहीं करते। उन्होंने स्वराज्य के महत्त्व को समझा ही नहीं। उनकी दृष्टि इसलाम तक ही परिमित रहती है। मुसलमान-नेता हिंदुओं को धमकाते हैं—देखो, तुम हमारी सहायता विना स्वराज्य प्राप्त नहीं कर सकते। तुम संगठन का प्रयत्न छोड़ दो, और हमारा आश्रय माँगो। हमसे समझौता करो, नहीं तो स्थान-स्थान पर हिंदू-मुसलिम झगड़े का दृश्य देखोगे। इस प्रकार की एकता करना हिंदुओं के लिये मृत्यु को बुलाना है, और ऐसी एकता से स्वराज्य मिलना भी असंभव है। यह मार्ग हिंदुओं के लिये आपत्तिजनक है। किसी भी प्रकार के भय से डरना मृत्यु का चिह्न है। यदि कोई मनुष्य मुझे डराकर मित्रता करना चाहता है, तो वह मुझे अपना दास बनाता है। वास्तविक मित्रता तभी होगी, जब मैं उसके बराबर मैदान में उतरूँगा। स्वराज्य के मार्ग पर हमारे लिये तभी चलना संभव होगा, जब हम मुसल-मानों के दिल में स्वराज्य की आवश्यकता का अनुभव करा देंगे। परंतु यह तभी हो सकेगा, जब हिंदुओं में जातीय संगठन दृढ़ हो जायगा। शायद यह बात कठिन प्रतीत हो। कठिन हो या सरल, मार्ग एक ही है। जब तक हम दृढ़ निश्चय करके प्रयत्न न करेंगे सफलता मिलने की कोई संभावना नहीं हो सकती।

अभिप्राय यह है कि देश-हित और वैयक्तिक हित के मार्ग भिन्न-भिन्न हैं। देश-हित का उपाय, स्वराज्य का मार्ग, हिंदू-संगठन के अतिरिक्त दूसरा नहीं।

सामयिक धर्म

भीष्म पितामह से पूछा गया, 'धर्म क्या है ?' यों तो धर्म के विषय में प्रत्येक मनुष्य अपने को पंडित मानता है, परंतु पितामह को इसका कोई उत्तर न सूझा। उन्होंने केवल इतना ही कहा—धर्म का तत्त्व गुप्त है। सभी ऋषि-मुनियों ने धर्म के विषय में अपना मत प्रकट किया है, और सबका मत भिन्न-भिन्न है।

जब भीष्म पितामह-जैसे त्यागी इस प्रश्न का उत्तर न दे सके, तो किसी दूसरे मनुष्य के लिये इस प्रश्न का उत्तर देने की चेष्टा करना वृथा प्रयास ही है। परंतु हमारे लिये पितामह की अपेक्षा इस प्रश्न का उत्तर देना अधिक सरल है। हमारे सम्मुख उस समय से लेकर आज दिन तक का इतिहास प्रस्तुत है, और हम उसकी सहायता से धर्म के निरूपण के लिये चेष्टा कर सकते हैं।

बहुत लोग कहते हैं कि धर्म अपरिवर्तनीय सदा तथा एकरस रहने-वाली वस्तु है। मैं इस कथन से सहमत नहीं। बालक का धर्म कुछ और है, ब्रह्मचारी का कुछ और। गृहस्थ का और, और संन्यासी का उससे भी भिन्न। शांति के समय धर्म का रूप कुछ और होता है, युद्ध के समय कुछ और। ब्राह्मण का धर्म और है और क्षत्रिय का और। अभिप्राय यह कि धर्म सदा देश-काल के अनुसार बदलता रहता है।

धर्म की परिवर्तनशील अवस्थाओं का अनुशीलन हम अपनी जाति के इतिहास में बहुत अच्छी तरह कर सकते हैं। जिस समय महात्मा बुद्ध ने अपने महान् धर्म का प्रचार आरंभ किया, उस समय हमारे देश का धर्म यज्ञ-धर्म का रूप ग्रहण कर चुका था। सारी

जाति ब्राह्मणों के अनुचित दबाव के नीचे आ चुकी थी। ब्राह्मणों का काम जनता को भिन्न-भिन्न प्रकार के यज्ञों में लगाना था। इन यज्ञों और संस्कारों को कर्मकांड का नाम दिया गया। कोई दिन वर्ष में ऐसा न था, जिस दिन के लिये कोई विशेष यज्ञ न हो। शनैः-शनैः इस कर्मकांड ने भयंकर रूप धारण कर लिया। बड़े-बड़े यज्ञों में बहुत-से पशुओं का बलिदान किया जाता था। ऐसा प्रतीत होता है कि एक समय शत्रुओं के विरुद्ध युद्ध ही सबसे बड़ा धर्म रहा होगा। देश में शांति-स्थापन न हो जाने पर ब्राह्मणों को चिंता हुई, कहीं क्षत्रिय लोग करुण-हृदय होकर निष्क्रिय न हो जायँ। इसलिये उन्होंने यज्ञों में पशु-बलिदान की प्रथा आवश्यक ठहरा दी। यज्ञ में बलि दिए गए पशुओं के मांस-भक्षण का निषेध नहीं था, इसलिये यह प्रथा बहुत फैल गई। उस समय इसी कर्मकांड का प्रचार था। बुद्ध के हृदय में कर्मकांड से घृणा उत्पन्न हुई। इस कर्मकांड का आधार वेद थे। इसलिये बुद्ध भगवान् ने कर्मकांड के साथ ही वेदों को भी जवाब दे दिया। बौद्ध-धर्म में धर्म का आधार कर्मों की पवित्रता थी। बुद्ध के मत में धर्म के लिये ईश्वर तथा वेद की कोई आवश्यकता नहीं मानी गई। शुभ कर्म ही सब कुछ हैं। कर्मों का सिद्धांत ही संसार का नियंत्रण करता है। मनुष्य के कर्म ही उसे ऊपर या नीचे ले जाते हैं। बुद्ध का धर्म आचार (Morality) था।

ब्राह्मण लोग बुद्ध के आचार-धर्म के विरुद्ध कुछ न कह सकते थे। उन्होंने इसकी न्यूनता को पहचान लिया, और वाद-विवाद तथा शास्त्रार्थों द्वारा इस धर्म के सिद्धांतों पर आक्रमण करने लगे। यह अवस्था देख बौद्ध-धर्म भी सिद्धांतों पर ध्यान देने लगा। कुमारिल भट्ट और शंकर के समय में बौद्ध-धर्म एक धार्मिक दर्शन (Phylosophy) का रूप धारण कर चुका था। शंकर ने अपनी बुद्धि के प्रभाव से इस धार्मिक दर्शन (Phylosophy of Religion) को परास्त

कर एक नवीन धार्मिक दर्शन का आविष्कार किया। इस काल में न कर्मकांड का प्राबल्य रहा, न आचार का। यह समय केवल दार्शनिक चिंतन का था।

इसलामी आक्रमणों से हिंदू-धर्म में एक नवीन परिवर्तन हुआ। यह लहर राम तथा कृष्ण की भक्ति की थी। सूर, तुकाराम और तुलसी का धर्म राम और कृष्ण के प्रति अगाध श्रद्धा और भक्ति थी। इन्हें कोई दूसरी बात समझ में नहीं आती थी। वे अपने इष्ट-देव की भक्ति में लवलीन थे। उन्हें इनकी मूर्तियों के दर्शन में ही जीवन की सफलता दीखती थी। हम प्रबल युक्तियों से मूर्ति-पूजा का खंडन कर सकते हैं; परंतु यह नहीं कह सकते कि जो मनुष्य अपने इष्ट-देव के प्रेम में मस्त होकर उसकी मूर्ति के सामने नाचता और उसके गुण गाता है, वह ग़लती कर रहा है। उसके आभ्यंतरिक भाव प्रकट हो रहे हैं। मूर्ति में कुछ शक्ति हो या न हो उसकी श्रद्धा उसे नचा रही है और वह संतुष्ट है। संसार में सहस्रों मनुष्य भक्ति में ही सच्चा धर्म समझते हैं।

वीर-पूजा मनुष्य का स्वाभाविक गुण है। सारा पश्चिम प्रभु मसीह के चरणों में लोट रहा है। इसलाम मुहम्मद से बढ़कर किसी को नहीं समझता। वीर-पूजा मनुष्य का वह गुण है, जो उसकी सामाजिक संस्कृति और शिक्षा का फल है। बहुत-से मनुष्यों की तुलना करने से जान पड़ेगा कि किसी मनुष्य का स्वभाव अधिक करुण होता है, उसे दया-धर्म सबसे अच्छा प्रतीत होता है। किसी मनुष्य में उत्साह अधिक होता है, उसे वीरता की बातें ही भाती हैं। कोई युक्ति-वादी होता है, उसे दर्शन-शास्त्र से प्रेम होता है। कोई भक्ति-मार्ग का उपासक होता है। कोई ज्ञान-ध्यान का भक्त होता है। इन भिन्न-भिन्न रुचियों के मनुष्यों के लिये भिन्न-भिन्न धर्मों की आवश्यकता होना स्वाभाविक है। मनुष्य-समाज रुचि तथा प्रकृति के भेद से भिन्न-

भिन्न समाजों में विभक्त है, और उन्हें अपने स्वभाव के अनुकूल धर्म ही भाता है।

वैदिककाल में समाज वर्णाश्रम-धर्म में बँधा था। उस समय धर्म का अर्थ कर्तव्य (Duty) समझा जाता था। वर्ण के अनुसार सब लोग अपने-अपने धर्म का पालन करते थे। भिन्न-भिन्न आश्रमों में जाकर लोग अपने कर्तव्य का पालन करते थे। वर्णाश्रम-धर्म की नींव में यह सिद्धांत काम करता था कि समाज का प्रत्येक मनुष्य समाज के हित के लिये जीवन व्यतीत करे। इस सिद्धांत को यज्ञ के नाम से पुकारा गया है। यज्ञों का क्रम यहाँ से आरंभ होकर इतना फैला कि सारा समाज भिन्न-भिन्न प्रकार के यज्ञों के जाल में फस गया, जिसका वर्णन हम कर्मकांड के प्रकरण में कर आए हैं।

धर्म के इन परिवर्तनों को देखकर यह स्पष्ट हो जाता है कि यह समय जाति के लिये एक नवीन धर्म का समय है, और वह नया धर्म 'संगठन' है। हिंदू-जाति के सारे इतिहास को पढ़कर मैं इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि इस जाति ने संगठन-धर्म पर बहुत कम ध्यान दिया है। जब मनुष्य प्राकृतिक अवस्था में रहता है, तो उसे केवल अपनी भीतरी कमज़ोरी का ध्यान करना पड़ता है। परंतु यह संसार युद्ध-क्षेत्र है; यहाँ कोई जाति अपनी प्राकृतिक अवस्था में नहीं रह सकती। युद्ध प्राकृतिक अवस्था नहीं है। पराधीनता प्राकृतिक अवस्था नहीं है। हिंदुओं को कई शताब्दियों तक विदेशी आक्रमणों के विरुद्ध लड़ना पड़ा है। इस अवस्था में प्राकृतिक धर्म काम नहीं दे सकता था। बाहर के आक्रमणों का परिणाम यह हुआ कि एक विदेशी धर्म और विदेशी सभ्यता स्थायी रूप से इस देश में जम गई। इसके साथ ही पश्चिम की शक्तिशाली सभ्यता अपने पूर्ण वैभव के साथ इस देश में अवतरित हुई है। इस अवस्था में अपनी ज़ाति की सभ्यता की रक्षा के लिये हिंदुओं को प्रयत्न करना पड़ेगा। इन महान्

शक्तियों के साथ कई छोटी-छोटी हिंदुओं की राष्ट्रीयता की घातक शक्तियाँ भी सम्मिलित हैं। इस समय यदि किसी जाति को जीवन-रक्षा के लिये संग्राम की आवश्यकता है, तो वह हिंदू-जाति है। इस समय एक ही धर्म हिंदुओं को बचा सकता है, और वह धर्म संगठन है।

मैं हिंदू-मात्र से प्रार्थना करता हूँ कि वे अपने इस सामयिक धर्म को पहचानें तथा इसके लिये बलिदान करने के लिये प्रस्तुत हो जायँ।

हमारा रोग

कई मनुष्यों को इस बात का निश्चय नहीं होता कि जाति को भी व्यक्ति की भाँति व्याधि और रोग लग सकते हैं, और उन रोगों की भी चिकित्सा करनी पड़ती है। मनुष्य की बीमारी को पहचानना अधिक कठिन नहीं होता। वह स्वयं अपनी पीड़ा को प्रकट करने की चेष्टा करता है; परंतु रोग के कठिन और गहरे हो जाने पर बड़े-बड़े डॉक्टर और वैद्य भी उलझन में पड़ जाते हैं। जाति के रोग का निदान इससे भी कठिन है। जाति स्वयं अपनी पीड़ा को प्रकट नहीं कर सकती। जब कभी उसका दुःख प्रकट भी हो जाता है, तो भी उसे रोग नहीं समझा जाता, और उसकी चिकित्सा का कोई उपाय नहीं किया जाता। मैं स्वयं उलझन में हूँ, मुझसे प्रश्न किया जाता है कि बताओ, जाति के शरीर में रोग कहाँ है? हमें कोई रोग नहीं दीखता। मैं कहता हूँ, हम सब पराधीन हैं; क्या पराधीनता रोग नहीं है? जाति भूखी है; क्या भूख और निर्द्धनता रोग नहीं है? इस देश में प्रति वर्ष लाखों मनुष्य अकाल-मृत्यु से मरते हैं; क्या यह रोग भयंकर नहीं है? जब एक हिंदू अपनी जाति से दूसरी जातियों की तुलना करता है, तो स्पष्ट स्वीकार कर लेता है कि हिंदू-जाति में जीवन का अभाव है। क्या यह इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं कि हमारी जाति रोगग्रस्त है।

हम सब अनुभव भी करते हैं कि हम रोगी हैं; परंतु जाति के रोग को पहचाननेवाले डॉक्टर नहीं हैं! जब कोई डॉक्टर हमें नुसख़ा भी लिख देता है, तो न हम औषध-सेवन करते हैं और न उसकी सलाह पर चलते हैं। हो तो क्या हो! अपनी व्याधि जानकर, उसकी

औषध जानकर भी हम इतने विवश हैं कि कुछ नहीं कर सकते। पिछले दो-तीन वर्षों की घटनाओं को देखकर जाति ने अपने कष्ट का अनुभव किया है, और यह पुकार सुन पड़ती है कि 'संगठन' की आवश्यकता है। संगठन किसी व्यक्ति-विशेष का काम नहीं है। इसमें सांप्रदायिकता की गंध नहीं है। रुग्ण जाति की आत्मा ने स्वयं ही अपने लिये 'संगठन' की ओषधि तज़वीज़ की है। प्रत्येक हिंदू यह कहता सुनाई देता है कि हम संगठन के बिना बच नहीं सकते। परंतु एक क़दम आगे चलकर आप उससे पूछिए, तुमने संगठन के लिये क्या किया है? क्या तुम संगठन के सभासद हो? क्या तुमने अपने भाइयों को संगठन का मेंबर बनाने का यत्न किया है? क्या तुमने संगठन के काम के लिये अपना कुछ समय अर्पण किया है? वह बेचारा चुप हो जायगा, या आपको टालने के लिये कहेगा, अजी क्या करें, कोई कुछ करने का साहस नहीं करता; हमारे नेता कुछ नहीं करते, इत्यादि-इत्यादि। मान लिया, आपका कहना ठीक है। कोई कुछ नहीं करता। नेता केवल नाम के भूखे हैं, वे कुछ नहीं करते। परंतु इससे क्या आपका कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व यहीं समाप्त हो जाता है। आप इतना ही कीजिए, जहाँ हिंदू-सभा हो उसके सभासद बन जाइए। कम-से-कम सप्ताह में एक दिन मिल-बैठकर विचार ही कीजिए। कानों में शब्द जाता है, परंतु हृदय पत्थर हो चुका है। वह अनुभव ही नहीं करता। सोते हुए को जगाया जा सकता है; परंतु जागते को कौन जगा सकता है? क्या आप अपने रोग का इससे भी बड़ा प्रमाण चाहते हैं? मैं न आर्य-समाज के विरुद्ध हूँ, न कांग्रेस के। जो कुछ कहता हूँ, वह इस उद्देश से कि जो कोई ग़लती पर हो, वह यदि अपनी ग़लती समझ जाय, तो उसे ठीक कर ले। मुझे इन दोनों संस्थाओं के काम करने के ढंग पर आपत्ति है। इन दोनों में दिखावा बहुत अधिक आ गया है। रुग्ण जाति अपनी निर्बलता को दिखावे से छिपाना

चाहती है, और बलवान् होने का ढोंग कर रही है। यह बड़ी आपत्ति-जनक अवस्था है। ईश्वर का भरोसा छोड़कर हम उसकी पूजा का ढोंग कर रहे हैं। रोगी जाति में पवित्रता और धर्म नहीं हो सकता। हम पवित्रता और धर्म का आडंबर कर रहे हैं, और बाह्य चिह्नों पर मर मिटने के लिये तैयार हैं। हम दिखावे में फसकर नीरोग होने की चिंता भी नहीं करते, यही बड़े दुःख का विषय है।

दिखावे से थोड़ा-बहुत लाभ भी होता है। जब कोई संस्था ख़ूब काम करती है, और जनता की सहानुभूति प्राप्त करने के लिये थोड़ा दिखावा भी करती है, तो वह लाभदायक होता है; परंतु जब वास्तव में काम कुछ भी नहीं, तो दिखावा ही वास्तविक काम का स्थान ले लेता है, और जलसे करना ही उद्देश बन जाता है। यद्यपि ऐसी जाति उन्नति करती प्रतीत होती है, परंतु वास्तव में वह अवनति के गढ़े में गिर रही होती है। दिखावा करना गिरी हुई जातियों का लक्षण है, और इसी पर उनके जीवन का भरोसा होता है। वे समझती हैं कि दिखावा जोश उत्पन्न करने का तरीक़ा है; परंतु फल यह होता है कि वास्तविकता निकलकर केवल दिखावा-ही-दिखावा रह जाता है। हमारे रोग की चिकित्सा का एक ही उपाय है, और वह बलिदान का भाव है।

जिस समय रूस और जापान में युद्ध हो रहा था, जापानी सेना ने एक रूसी क़िले पर आक्रमण किया। क़िले तक पहुँचने के लिये क़िले की खाई को भरना आवश्यक था। जापानी सैनिकों ने अपने साथियों के मृतक शरीर खाई में डाल दिए; परंतु इससे वह भर न सकी। इस पर उन घायल सिपाहियों को, जिनके जीवन की कोई आशा न थी, लाकर उस जगह डाल दिया गया। इससे भी काम न बना। यह देख सैकड़ों मन-चले नवयुवक जापानी सैनिक आगे बढ़कर खाई में कूद पड़े। खाई भर गई। उन वीरों के मृतक शरीरों पर से

जाकर जापानी सेना ने क़िला फ़तह कर लिया। यद्यपि उन वीरों के नाम हम नहीं जानते, परंतु जापान की शक्ति और कीर्ति की नींव उन्हीं के बलिदान पर स्थिर है।

जिस समय आप थोड़ा-बहुत काम करके अपनी तारीफ़ और बड़ाई अख़बारों और जलसों में सुन लेते हैं, तो वह बलिदान नहीं रहता, वह तो एक दूकानदारी बन जाता है। वास्तव में दिखावा और बलिदान परस्पर विरोधी शब्द हैं। दिखावे का रोग चुपचाप और गुप्त बलिदान से दूर हो सकता है।

कुछ लोग पूछते हैं, क्या हिंदू-जाति का रोग किसी प्रकार दूर हो सकता है? मैं कहता हूँ, हाँ, हो सकता है, यदि कुछ नवयुवक प्राणों की बाज़ी लगाकर जाति-हित के लिये कर्म-क्षेत्र में कूद पड़ें।

मेरा नया कार्यक्रम

सन् १८५७ के विप्लव के बाद से भारत में उतरा-चढ़ी और जीवन-संघर्ष समाप्त होकर शांति छा जाती है। इससे पूर्व जो जीवन के चिह्न जहाँ-तहाँ किसी-न-किसी रूप में प्रकट होते ही रहते थे, वे अब एकदम लुप्त हो जाते हैं, मानो दीपक अपना अंतिम प्रयत्न समाप्त करके बुझ जाता और संघर्ष समाप्त हो जाता है। एक छोर से लेकर दूसरे छोर तक अँगरेज़ी शासन स्थापित हो जाता है। लड़ते-भिड़ते, शोक और दुःख से तड़पते हुए देश में एक निस्तब्धता छा जाती है। हिंदुओं में जातीयता के भाव की कमी थी, इसीलिये ये अन्य जातियों के आक्रमण का शिकार हुए और पराधीनता के पाप में फसे। यदि जातीयता का भाव होता, तो समय पाकर ये संगठित रूप में उठ खड़े होते। इस अभाव के कारण ये विदेशी जातियों के आक्रमण को सहते रहे और इनकी मुक़ाबला करने की शक्ति बिलकुल नष्ट हो गई। इस शक्ति के नष्ट होने से ये निर्जीव-से हो गए, और इन्हें सबल मुसलमान शनैः-शनैः हड़पने लगे।

इस निर्जीवता और निष्क्रियता के समय में ब्रह्म-समाज और आर्य-समाज ने धार्मिक सुधार का कार्य आरंभ किया। इससे थोड़ी-बहुत सचेष्टता तो हुई, परंतु वह बहुत थोड़ी और सूक्ष्म थी। इसके पश्चात् कांग्रेस ने नए सिरसे देश में जागृति उत्पन्न करने की चेष्टा की। कांग्रेस के संचालकों का अभिप्राय चाहे जो रहा हो, हिंदुओं ने कांग्रेस के काम को अपना लिया। कांग्रेस का कार्य-क्रम क्या था? क्रम-क्रम से प्रत्येक प्रांत में देश-भर के उच्च शिक्षित व्यक्ति वर्ष-भर में एक दिन एकत्र होकर अपने हृदयों के उद्गार निकाल लेते थे। एक विशद

और सुंदर पंडाल में एकत्र हो अनेक प्रस्तावों पर विचार कर वे अपने-अपने घर जा बैठते थे। इन प्रस्तावों में कुछ तो सरकार से अधिकारों की प्रार्थना और कुछ शिकायतें होती थीं।

स० १८९३ में, लाहौर में, पहली कांग्रेस हुई थी। उसे देखकर आर्यसमाज की यही धारणा हुई थी कि यद्यपि कांग्रेस से देश में थोड़ी-बहुत जागृति उत्पन्न हुई है, परंतु यह स्वयं एक ढोंग के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

पंजाबियों का स्वभाव अन्य प्रांतों से कुछ निराला है। आर्य-समाज के प्रभाव के कारण इन लोगों में बलिदान का भाव और उसके लिये सम्मान थोड़ी-बहुत मात्रा में पाया जाता है। पंजाब की श्रद्धा ठोस काम में अधिक है। ये केवल बातों में ही नहीं भूले रहते, और इनमें प्रांतिक संकीर्णता भी नहीं है। जिस समय देश की अवस्था निश्चेष्ट और निराशाजनक थी, स्वामी दयानंद गुजरात से चलकर पंजाब में आए। पंजाबियों ने स्वामीजी के काम को अपना लिया, और काम में लग गए। आर्य-समाज के काम का यह प्रभाव हुआ कि मुसलमानों, सिखों तथा अन्य संप्रदायों में भी जागृति उत्पन्न हो गई। ये लोग चाहे आर्य-समाज को बुरा कहें, और उसे अपना शत्रु समझें, परंतु इन्हें आर्य-समाज का धन्यवाद करना चाहिए कि उसने इन्हें सावधान कर दिया है। जो हो, आर्य-समाज की शिक्षा से हमने यह सीखा कि इस विस्तृत देश तथा इसके अनेकों संप्रदायों में जीवन डालने के लिये बड़े साहस की आवश्यकता है। केवल व्याख्यानों से कुछ नहीं बन सकेगा। व्याख्यानों से उत्पन्न हुआ आंदोलन गहरा नहीं जा सकता। जाति और देश में गहरा आंदोलन उत्पन्न करने के लिये बड़े साहस, परिश्रम और अध्यवसाय की आवश्यकता है। बड़े परिमाण में काम करने के लिये त्याग की आवश्यकता है, और कांग्रेस इस प्रकार का काम नहीं कर सकती।

आर्य-समाज यद्यपि एक संप्रदाय के ढंग से काम कर रहा था, परंतु इसमें जीवन और त्याग के लक्षण थे, इसमें देश-भक्ति का भाव भी पाया जाता था, इसलिये आर्य-समाज देशोद्धार में सफलता प्राप्त कर सकता था।

हमारा यह विचार बहुत ठीक था कि कांग्रेस का कार्यक्रम ठीक नहीं है। कुछ वर्षों में स्वयं कांग्रेस में ही अपने कार्य-क्रम के विरुद्ध असंतोष फैलने लगा। कांग्रेस में एक देश-भक्त दल उत्पन्न हो गया। यदि कांग्रेस में यह दल उत्पन्न न हो जाता, तो कांग्रेस इस समय तक अपनी स्वाभाविक मृत्यु मर चुकी होती। नेताओं में प्रायः यह रोग पाया जाता है कि जब वे किसी काम को करने का साहस नहीं कर सकते, तो अपने चेले-चाटियों को भी यही उपदेश देते हैं कि 'शनैः-शनैः चलो, एक दिन हम स्वयं अपने उद्देश्य में सफलता प्राप्त कर लेंगे'। वे यह बात भूल जाते हैं कि शनैः-शनैः चलने से मार्ग कभी पूरा नहीं होता।

देश-भक्त दल ने स्वदेशी तथा असहयोग को अपने काम का पूरा करने का साधन बनाया; परंतु उनमें उतावली बढ़ गई। वे कहने लगे, हमें एक-दो वर्ष में ही अपने काम में सफलता क्यों न मिले। देश-भर में बहुत-से नवयुवक बहुत जोशीले थे। उन्होंने देश में गुप्त समितियाँ बनाकर अराजकता फैलाने की चेष्टा करनी चाही। दोनों दलों के एक ही समय में उत्पन्न होने से दोनों दलों को एक ही मान लिया गया। सरकार ने अराजक दल को कुचलने की चेष्टा की, इसके साथ ही देश-भक्त दल भी दब गया। अराजक गुप्त समितियों से हमें एक शिक्षा मिलती है। नवयुवक जोश में आकर एक काम करने लगते हैं; परंतु पकड़े जाने पर उनका उत्साह टूट जाता है, वे भेद खोलकर अपने प्राण बचाने की चेष्टा करने लगते और अपने साथियों को फँसा देते हैं।

आचरण का बल न रहने से न प्रकट आंदोलन और न गुप्त समिति का काम हो सकता है।

लोकमान्य तिलक के कारागार से मुक्त हो जाने और महात्मा गांधी के भारत लौट आने पर देश-भक्त दल ने फिर ज़ोर पकड़ना शुरू किया। महात्मा गांधी के कार्यक्रम में असहयोग अवश्य एक वस्तु थी, जिससे जाति में आचरण का बल आ सकता है। योरप के युद्ध के समय कष्ट में फँस जाने के कारण अँगरेज़ों में थोड़ी उदारता आ गई, और उन्होंने भारत में राजनीतिक सुधार करने का प्रण किया। युद्ध के पश्चात् सुधार तो हुए, परंतु साथ ही सुधार का दम घोटने के लिये रौलेट क़ानून (Rollet Act) भी पास कर दिया गया। इससे देश में वह भारी आंदोलन आरंभ हुआ। इस आंदोलन में महात्मा गांधी ने भाग लेकर जहाँ अपने सत्याग्रह के सिद्धांत को सर्व-प्रिय बनाया, वहाँ उन्होंने असहयोग भी किया। असहयोग का इतिहास किसी से छिपा नहीं। असहयोग की असफलता का कारण मेरे विचार में हमारे चरित्र की न्यूनता ही है।

पंजाब में अकालियों ने अपने प्राचीन इतिहास से उत्साहित होकर और सत्याग्रह के महत्त्व को समझकर इसे अपना लिया। अकालियों ने कितने ही समय तक सरकार के साथ सफलतापूर्वक युद्ध किया है। यह सब देखकर इसमें किसे शंका हो सकती है कि यदि देश के सभी भागों में अकालियों के समान चरित्र-बल होता, और देश के सब भागों में सत्याग्रह का युद्ध जारी किया जाता, तो सरकार को न दब जाना पड़ता? संसार में जब किन्हीं दो शक्तियों में युद्ध होता है, तो विजय-लक्ष्मी उसी शक्ति को जयमाल पहनाती है, जो अधिक देर तक संग्राम में डट सकती है। पिछले योरप के महायुद्ध में जर्मनी बड़ी वीरता से लड़ा; उसने विज्ञान के अद्भुत चमत्कार दिखलाए और पहले चार वर्षों में अनेक बार विजय प्राप्त की; परंतु अंतिम विजय

इँगलैंड की ही हुई। कारण, इँगलैंड अधिक देर तक धैर्य धारण कर सका। राजनीति के क्षेत्र में काम करनेवालों को सदा इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि सफलता प्राप्त करने के लिये चरित्र में धैर्य का होना नितांत आवश्यक है। केवल वही आंदोलन सफल हो सकता है, जो धैर्य से विरोधी शक्तियों का मुक़ाबला कर सके।

यह चरित्र-बल कैसे उत्पन्न हो सकता है? ढोंग और चरित्र का परस्पर विरोध है। जलसों और जलूसों से चरित्र नहीं उत्पन्न हो सकता। आर्य-समाज को रुपए के लोभ ने और उसके एकत्र करने के लिये जलसों ने खा लिया। सत्याग्रह का आंदोलन भी जलसों पर बलिदान हो गया। आप इतिहास को देख जाइए, हालैंड, इँगलैंड, इटली इत्यादि सभी देशों ने स्वतंत्रता बलिदान से ही प्राप्त की है। बलिदान का भाव बलिदान के उदाहरण से ही उत्पन्न होता है। सिखों में चरित्र-बल क्यों है? इसलिये कि उनके बलिदान के इतिहास की स्मृति अभी नई है। उन्हें प्रति दिन उसका स्मरण कराया जाता है। ये कथाएँ उनके जीवन का अंग बन गई हैं। हमारा इतिहास बहुत पुराना हो गया है। उससे हमारे हृदय में कोई उत्साह नहीं उत्पन्न होता। हम लोगों में चरित्र-बल उत्पन्न करने के लिये 'बलिदान' की आवश्यकता है। जब हम थोड़ा-सा काम करते हैं, और उसकी डौंडी समाचारपत्रों तथा सभाओं में पीट दी जाती है, तो उसका प्रभाव मिट जाता है, वह भाप बनकर आकाश में उड़ जाता है। इस प्रकार चरित्र-बल नहीं उत्पन्न हो सकता। चरित्र-बल उत्पन्न करने के लिये आवश्यकता है कि हम चुपचाप हिंदू-संगठन के काम के लिये बलिदान करें। यदि किसी नवयुवक में उत्साह है, तो वह मेरे पास आवे, मैं उसे काम करने का ढंग बताऊँगा।

वैयक्तिक और सामाजिक जीवन

स्वार्थ ही मनुष्य-जीवन का आधार है। मनुष्य का स्वार्थ यहाँ तक बढ़ा हुआ है कि यदि उससे कहा जाय कि वह संसार को दो समान भागों में विभक्त करे, तो वह एक ओर स्वयं अपने व्यक्तित्व को रक्खेगा, और तुला के दूसरे पलड़े में शेष सारे संसार को।

आचार्य और उपदेशक जनता को निस्स्वार्थ होने का उपदेश देते रहते हैं; परंतु उसका प्रभाव बहुत कम होता है। जनता बलिदान करनेवालों की कथाएँ सुनती है, उनकी प्रशंसा करती है, चकित होती है; परंतु अपने स्वार्थ को नहीं छोड़ सकती। इसे छोड़ दे, तो जाय कहाँ? नवयुवक स्वार्थ के विचार से ही निरंतर परिश्रम करता है। वह पढ़ता जाता है। उसे आशा है, वह कोई ऊँचा पद प्राप्त करेगा। वह मकान बनावेगा, उसका विवाह होगा, संतान होगी, उनकी शिक्षा और आराम का प्रबंध होगा। एक आशा उसे गधे के समान हाँके लिए जा रही है। यदि यह स्वार्थ का भाव उसके मन से निकल जाय, तो फिर वह नहीं जानता कि वह क्या करे?

उपनिषदों ने इस सत्य की बहुत सुंदर विवेचना की है। उपनिषद्-कार कहते हैं कि संसार में सब कुछ 'आत्मा' के लिये है। मैं अपने पुत्र से इसलिये प्रेम नहीं करता कि वह 'पुत्र' है, परंतु इसलिये कि वह 'मेरा' पुत्र है। मैं स्त्री को इसीलिये प्यार करता हूँ कि वह 'मेरी' है। एक मकान में आग लग जाती है। मुझे कुछ चिंता नहीं। परंतु 'मेरे' मकान में आग लग जाती है, तो मेरा हृदय तड़पने लगता है। यह संपूर्ण संसार 'मेरे' के चारों ओर ही घूमता है। वेदांती इस 'मैं' को मिटा देना चाहते हैं; परंतु यह 'मैं' नहीं मिटती, बढ़ती ही

जाती है। कवि और दार्शनिक भी कहते हैं—यह 'स्वार्थ' बुरी वस्तु है, इसे त्याग दो। लोग सुनकर दूसरे कान से निकाल देते और अपने काम में लग जाते हैं।

आप कहेंगे, फ़रहाद के समान प्रेमी लोग भी इसी संसार में हुए हैं, जिन्होंने अपने प्रियतम के लिये संसार के सब दुःख और कष्ट सिर पर उठाए, और जब इस जीवन में उसे न पा सके, तो उन्होंने यह कहकर अपने सिर पर कुल्हाड़ा मारकर प्राण दे दिए कि अगले जन्म में जा मिलेंगे। ऐसे उदाहरणों को देखकर तो एक बार हृदय स्तब्ध हो जाता है।

इससे बढ़कर निस्स्वार्थ और क्या होगा। प्रेम में मतवाला अपने प्रियतम के लिये क्या नहीं कर देता? परंतु उपनिषद् का एक वाक्य याद आता है, तो सारा विस्मय दूर हो जाता है। उपनिषद् कहता है, प्रेमी अपने प्रियतम को इसलिये प्यार करता है कि वह उसके शरीर में अपनी आत्मा को देख पाता और उससे मिलकर अपने हृदय को संतुष्ट करता है। तुलसीदासजी का उदाहरण हमारे सम्मुख है। उनकी प्रियतमा ने कहा था, कैसा अच्छा होता, यदि तुम इतना प्रेम भगवान् से कर सकते! भगवान् से प्रेम करना तो 'मैं' को मिटाना है। प्रेम मिलन और वस्तु है, और भगवत्-प्रेम और चीज़ है। कवि ने दोनों में भेद बताया है। कवि कहता है, न ख़ुदा ही मिला न विसाले सनम।

मज़हब के दो अंग हैं, एक तो मनुष्य को ऊँचे और सूक्ष्म स्वार्थ की ओर ले जाता है, और दूसरा उपदेश करता है, चोरी मत करो, सच बोलो, किसी को दुःख न दो, जीवन को पवित्र बनाओ, मित्र और शत्रु से एक व्यवहार करो, प्रलोभनों से बचो, मुक्ति प्राप्त करने का उपाय करो।

हमारे सामाजिक जीवन पर इन उपदेशों का थोड़ा-बहुत प्रभाव

भी पड़ता है। यहाँ तक कि इनके नितांत अभाव में हमारा सामाजिक जीवन रह ही नहीं सकता। इन उपदेशों के अनुसार आचरण करने से हमारा व्यक्तित्व ऊँचा उठ सकता है, और इसके अभाव में हमारा जीवन नीचे गिरता जाता है।

धर्म के दूसरे अंग पर हमारा सामाजिक संगठन निर्भर है। यह कहना कठिन है कि इन सिद्धांतों में सचाई का कितना अंश है। परंतु यों कहा जा सकता है कि इनकी सत्यता और असत्यता से हमारा कोई संबंध नहीं। इस अंग पर ही सामाजिक संगठन में दृढ़ता का होना निर्भर रहता है। इस सिद्धांत को एक उदाहरण से स्पष्ट किया जा सकता है। कल्पना कीजिए, दो निकटस्थ देशों में से एक में भिन्न-भिन्न वंशों का पृथक्-पृथक् शासन है, और दूसरे देश में सब वंश एक व्यक्ति के अधीन होकर एकतंत्र राज्य स्थापित किए हैं। इस देश में अनेकता दूर होकर सब लोग एकता के सूत्र में बँध उस व्यक्ति के आदेशानुसार मरने-मारने के लिये तत्पर रहते हैं। इस देश में राजभक्ति की सुदृढ़ श्रृंखला के कारण सामाजिक बंधन दृढ़ है। जब इन दोनों जातियों या देशों में परस्पर युद्ध होता है, तो दूसरा देश अधिक सुसंगति होने से पहले पर विजय प्राप्त कर लेगा। पहला देश दूसरे देश के अधीन हो जायगा, उसका जीवन संकट में पड़ जायगा। दूसरा देश और भी अधिक बलवान् बन जायगा।

सिद्धांत की दृष्टि से यह कहना कठिन है कि एक शासक के प्रति स्वामिभक्ति और उसकी आज्ञा का पालन अच्छा या बुरा है। परंतु हमारे दृष्टांत से यह स्पष्ट हो गया कि यह गुण एक राष्ट्र या देश को दूसरे देश से अधिक बलवान् बना दे सकता है। ठीक यही अवस्था धर्म के दूसरे अंग की है। हम देखते हैं, भिन्न-भिन्न मतों में व्यक्ति-विशेष या पुस्तक-विशेष पर दृढ़ अंधविश्वास होता है।

इस विश्वास के युक्ति-युक्त अथवा अयुक्त होने से धर्म पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। यह धार्मिक विश्वास जितना ही अधिक दृढ़ होगा, उस समाज का सामाजिक बंधन भी उतना ही दृढ़ होगा। इसलाम की दृढ़ता उसके धार्मिक विश्वास में है। सिखों में विश्वास की दृढ़ता मुसलमानों से भी बढ़कर है, इसलिये उनका सामाजिक बंधन और भी सुसंगठित है। यद्यपि यह श्रद्धा और भक्ति धर्म का केवल एक गुण है, परंतु इसमें समाज को नियंत्रित करने का गुण मज़हब या धर्म के शेष सब गुणों से अधिक है। हिंदुओं में इस गुण का अभाव ही निर्बलता का कारण है। हम सब इसका अनुभव करते हैं, और प्रायः कहा करते हैं कि हिंदुओं की कोई सांझी धर्म-पुस्तक या आराध्य देव न होने से उनमें संगठन नहीं हो सकता। यद्यपि इस बात की सत्यता में संदेह नहीं, परंतु हमें इस व्याधि का मूल ढूँढ निकालना चाहिए। मुझे इसके दो कारण दीखते हैं। प्रमथ तो यह कि प्राचीन काल में हिंदू-दर्शन-शास्त्र के बहुत अधिक उन्नति कर जाने से हिंदुओं के मस्तिष्क उन्नत और स्वतंत्र हो गए हैं। इनको किसी एक की मज़हब की शृंखला में बाँध लेना कठिन है। इन्हें एक धार्मिक शृंखला में बाँधने का यत्न करने का परिणाम यह होगा कि इनमें एक और संप्रदाय उठ खड़ा होगा। उदाहरण के लिये गुरुओं का आंदोलन हमारे सम्मुख है। दूसरा उदाहरण आर्य-समाज उपस्थित कर रहा है। मैं यह मानता हूँ कि समाज का उद्देश्य एक नवीन पंथ या संप्रदाय खड़ा कर देना नहीं था, उलटे इसके समाज का अभिप्राय हिंदू-जाति की निर्बलताओं को दूर कर उसे एक शृंखला में बाँधना था। लेकिन यह उद्देश पूरा न हो सका। इसका उत्तरदायित्व कुछ आर्य-समाज के संचालकों के सिर पर है, और कुछ हिंदू-जाति के ऊपर। आज एक नया खेल बन रहा है। हम यह नहीं देखना चाहते कि संसार किधर जा रहा है, और हम किन बातों में फसे हुए हैं। हमारी सना-

तनधर्म-सभाएँ समझती हैं कि आर्य-समाज ही हिंदू-जाति का सबसे प्रबल शत्रु है, और सबसे पहले इसी का नाश करना आवश्यक है। कौन कह सकता है, हिंदू लोग अपने शत्रुओं और मित्रों को पहचानना कब सीखेंगे। मैं भली भाँति समझता हूँ कि यह सब कुछ लिखकर मैं दोनों दलों को नाराज़ कर रहा हूँ। कोई अच्छा कहे या बुरा, अपने हृदय की व्यथा मैं ही जानता हूँ।

दूसरा कारण यह है कि इस देश ने सामाजिक जीवन की आवश्यकता का कभी अनुभव ही नहीं किया। वैयक्तिक गुणों पर हम लोग इतने रीझ गए हैं कि सामाजिक जीवन का हमें ध्यान ही नहीं आता। हिंदू अपनी-अपनी वैयक्तिक उन्नति में ही इतने व्यस्त हैं कि इन्हें कभी इसका ध्यान भी नहीं आता कि सामाजिक जीवन की भी कोई आवश्यकता है या नहीं। इन्हें यह भूल जाता है कि सामाजिक जीवन के अभाव में उनके वैयक्तिक गुण उन्हें बचा नहीं सकेंगे। भिन्नता इनकी प्रकृति में ही समा गई है। भिन्न-भिन्न दल बाँधकर ख़ूब उत्साह से काम करेंगे। अपने भाइयों से झगड़ना हो, तो सब कुछ करने के लिये तैयार हैं; केवल परस्पर मिलकर ही ये कुछ नहीं कर सकते। यह निर्बलता का मूल-कारण दूर होता दिखाई नहीं देता।

इसका यही एक उपाय है कि हम हिंदुओं के हृदयों में संगठन का भाव दृढ़ करें। जितना ही यह भाव दृढ़ होगा, भिन्नता का भाव उतना ही दूर होगा। संगठन का भाव हममें सामाजिक जीवन डाल सकता है।

हिंदुओं को सावधान हो जाना चाहिए। उन्हें ऐसे किसी आंदोलन में भाग न लेना चाहिए, जो हिंदू संगठन के विरुद्ध हो। उनकी जाति और प्राचीन सभ्यता की रक्षा का केवल एक ही मार्ग है, और वह यही कि जाति को संगठित करने के लिये अपने व्यक्तित्व को निछावर कर दें।

सोचिए

लिखूँ तो क्या लिखूँ ? मनुष्य वही लिखता है, जो कुछ उसके हृदय में भरा रहता है। अपने हृदय की अवस्था क्या बताऊँ ? मेरे हृदय में दुःख और निराशा भरी हुई है। कभी विचार उठता है, निराश होना पाप है। हृदय को समझाता हूँ; परंतु जब संसार की अवस्था देखता हूँ, तो दिल टूट जाता है, और आशा कोसों दूर चली जाती है। यह निराशा क्यों ? इसलिये नहीं कि हमारे यहाँ कुछ बच नहीं रहा। अभी तो बहुत कुछ बचा हुआ है, और वह हमको भी बचा सकता है। यद्यपि हमारी जाति और धर्म भयंकर भँवर में फँसे हुए हैं, परंतु इसमें अभी बचने की पर्याप्त शक्ति है। दुःख है तो यह कि हम अभी तक अपने संकट को समझ नहीं सके। जो कोई उठता है, मनमाना उपाय तजवीज़ कर देता है, और अपनी प्रशंसा का राग अलापता हुआ सबको अपने पीछे चलाने की चेष्टा करता है। उसे समझाओ, वह सुनेगा ही नहीं। उसके दिमाग़ में तो अपने विचारों का और अपनी पार्टी का ख़ब्त समाया हुआ है। सारी दुनिया मान जाय, परंतु वह नहीं मानेगा। उसे अपने विचार इतने महत्त्वपूर्ण प्रतीत होते हैं कि उनके आगे सारी जाति के कष्ट कोई अस्तित्व नहीं रखते। हम संसार को दिखलाना चाहते हैं कि हम बड़ा काम कर रहे हैं, और हमारे काम में ही संसार की मुक्ति है। हम इसी चिंता में हैं कि संसार को अपनी बात की सचाई पर विश्वास दिला दें। इसी उद्देश से हम सब कुछ करते हैं। हमारा विश्वास है कि हमारे विचारों से ही संसार का कल्याण हो सकेगा। मुझे अपने सब कामों में एक कमी दिखाई देता

है, जब तक हमारी जाति और देश के लोग इस छल को समझ न लेंगे, हमारा उद्धार नहीं हो सकेगा।

आओ, हम देखें यह छल किस प्रकार हमारी जड़ों को खोखला कर रहा है। हम प्रायः ब्राह्मणों को पोप कहते हैं, और उन पर यह दोषारोपण करते हैं कि उन्होंने पहले जाति को ठगना आरंभ किया, और फिर सभी लोग गिर गए। ब्राह्मण सर्वोच्च होते हुए भी ठग बन गए, इसका कारण यह था कि ब्राह्मणों ने धर्म के कठिन नियमों का पालन छोड़कर अपने नाम के सम्मान से लाभ उठाना चाहा। परंतु यह ठगी केवल ब्राह्मणों तक ही परिमित न रही।

घटनाओं को देखने से पता चलता है, यह ठगी सारी जाति में ही घर कर गई थी। सभी वर्ण अपने कर्तव्य को छोड़ केवल दिखावे में ही फस गए थे। क्या हमारे क्षत्रिय, क्या संन्यासी और वैरागी, सब नाममात्र को ही रह गए थे। कर्तव्यच्युत होकर भी वे लोग अपने को बड़ा बताने की चेष्टा करते थे। मंदिरों के पुजारियों और मठों के महंतों ने जनता को ठगना ही कर्तव्य बना लिया था। अपने पुराने दोषों का वर्णन करते समय हम यह भूल जाते हैं कि अब भी हम में वे दोष विद्यमान हैं। शोक यह है कि हमारे रोग अभी तक हमारा गला उसी प्रकार दबाए बैठे हैं। भेद केवल इतना है कि अब ठगी का ढंग बदल गया है। उदाहरण के लिये गो-रक्षा का प्रश्न ले लीजिए। हिंदुओं के हृदय में अभी तक गउओं के लिये श्रद्धा बनी है। आज गो-रक्षा के नाम पर जनता को ठगने के अनेक ढंग निकाले जाते हैं। क्या इन सब उपायों से गो-रक्षा हो सकती है? मुझे तो इसमें बड़ा संदेह है। हिंदुओं के हृदयों में अनाथों और विधवाओं के लिये करुणा है। अनेक धूर्त मनुष्य अनाथों और विधवाओं के नाम पर जाति को ठगने के उपाय सोच निकालते हैं। लोग विद्या-प्रचार को धर्म का काम समझते हैं। इसलिये विना इस विचार के कि वर्तमान

शिक्षा देश को उन्नति की ओर ले जा रही है या अवनति की ओर, जाति के लाखों रुपए विद्या-प्रचार के नाम पर उड़ा दिए जाते हैं। हमसे कहा जाता है, नित्य सैकड़ों हिंदू-स्त्री-पुरुष विधर्मी हो रहे हैं। ईसाइयों ने करोड़ों रुपए ख़र्च करके अपना जाल बिछाया है। मुसलमानों में प्रत्येक व्यक्ति अवैतनिक प्रचारक है। जाति की इस डूबती नैया को बचाने के लिये शिक्षा की आवश्यकता है। हम पूछते हैं, क्या आपके यह स्कूल और कॉलेज हिंदू-धर्म की रक्षा कर लेंगे? क्या कन्याएँ स्कूलों में पढ़कर जाति को बचा लेंगी? मुझे तो नेताओं की अवस्था देखकर शोक होता है, जो जाति के दुःख को देखकर उस ओर से आँखें बंद कर लेते हैं, और अपने वहमों को पूरा करने के लिये जाति की गाढ़ी कमाई को नष्ट कर रहे हैं। भूल कहाँ है? इस भूल की जड़ हमारे उत्सवों और तमाशों में है। आज एक समाज का जलसा है, कल एक सभा का उत्सव है, परसों एक स्कूल का है, चौथे दिन एक पाठशाला का है, अगले दिन एक आश्रम का है। बहुत-से व्याख्यान हुए, भजन हुए; बहुत-से आदमी आए, ख़ूब समारोह हुआ, और सफलता भी हो गई। काम पूरा हो गया। मेरी जिह्वा में शक्ति नहीं कि अधिक ज़ोर से कह सकूँ। ये सब जलसे तमाशे हैं। इनसे कुछ नहीं बनता; बल्कि ये वास्तविक काम को भी कुचल देते हैं। जब तक हम इसे काम समझते रहेंगे, सीधे मार्ग पर न आ सकेंगे। इस बड़े भारी अपराध का उत्तरदायित्व आर्य-समाज पर ही है। शेष सब सभा-सोसाइटियों ने इस विषय में समाज की ही नक़ल की है। अब हिंदू-संगठन की बारी आई है। लोग इसके लिये क्या करना चाहते हैं? क्या वही जलसे और सम्मेलन, जिनसे बहुत-सा कोलाहल मच जाय और लोग कहें, हाँ, बहुत काम हो गया?

सम्मेलन या Conference की आवश्यकता को मैं स्वीकार

करता हूँ; परंतु यह सम्मेलन गंभीर विचार के मनुष्यों का सामयिक प्रश्नों पर गंभीरतापूर्वक विचार करने के लिये होना चाहिए। यदि कानफ्रेंस को भी तमाशा बना दिया जायगा, तो उससे कोई निश्चित कार्य-क्रम न बनकर केवल कुछ व्यक्तियों में पारस्परिक उतरा-चढ़ी और वैमनस्य हो जायगा। सम्मेलन और उत्सव को तो ऐसे स्थान पर भी सफल बनाया जा सकता है, जहाँ एक भी व्यक्ति काम करने-वाला नहीं। हम कब समझेंगे कि हमारा उद्धार काम करने से ही होगा, तमाशों से नहीं।

कुछ लोग कहते हैं, यदि हम जलसा करना बंद कर दें, तो हमारी समाज की समाप्ति ही हो जायगी। मैं कहता हूँ, यदि यही ठीक है, तो जितनी जल्दी ऐसा समाज समाप्त हो जाय, उतना ही अच्छा। जिस समाज का जीवन जलसों पर ही आश्रित है, वह बहुत देर तक जीवित नहीं रह सकता। आप पूछेंगे, यदि हम जलसे बंद कर दें, तो फिर करें क्या? मैं कहता हूँ, ऐसा करके फिर सोचिए, आप-में काम करने योग्य शक्ति है या नहीं।

जलसे करने के साथ ही बड़ा काम रुपए एकत्र करना है। हम अपनी सफलता का अनुमान रुपयों की संख्या से करते हैं। धन का अत्यधिक मोह हमारा पुराना रोग है। उसी ने अब यह नया रूप धारण कर लिया है। हमने रुपए एकत्र करना ही एक-मात्र काम समझ लिया है। जो उठता है, वही एक डेपुटेशन बनाकर रुपए माँगने चल देता है। निर्लज्ज बनकर वह लोगों के दरवाज़े पर डट जाता है। इससे दान की श्रद्धा ही जाती रही है। अब दान तो कोई देता नहीं। माँगनेवाले अपनी चतुरता से रुपए ऐंठते हैं, और देनेवाले अपना लाभ देखकर देते हैं।

इस ढंग से माँग-माँगकर हम चाहे करोड़ों रुपए इकट्ठे कर लें हमारा मठ कितना ही बड़ा होकर सफल दिखलाई दे, परंतु हमारा

सारा प्रयत्न भी मिलकर जाति के हृयय से दान की श्रद्धा मिटा देने के अपराध का प्रायश्चित्त नहीं कर सकता। डेपुटेशन बनाकर माँगनेवाले और उन्हें सहायता देनेवाले पापी हैं। ये सब मिलकर धर्म का मार्ग बंद कर रहे हैं।

'माया को माया मिले कर-कर लंबे हाथ।' जिन मठों के पास रुपए हैं, उनका लिहाज़ भी है, उन्हें और रुपए भी मिल जाते हैं; परंतु जिस काम की देश को अत्यंत आवश्यकता है, उसकी कुछ चिंता नहीं।

रुपए एकत्र करने के लिये इस देश में व्याख्यानों की प्रथा चल गई है। व्याख्यान क्या हुआ, एक मख़ौल हो गया है। व्याख्यान देनेवाले को कुछ कहना हो या न कहना हो, लोग व्याख्यान सुनने पर ज़ोर देते हैं। हमारे देश में बहुत पुराने समय से कथा कहने की प्रथा है। यह भी सब जानते हैं कि लोग कथा किस तरह सुनते हैं। श्रोता कथा को वहीं झाड़कर घर लौटते हैं। स्त्रियाँ तो कथा सुनते समय अपना काम भी करती रहती हैं। अब लोग स्कूलों में पढ़ गए हैं, इसलिये बैठकर कथा सुनना तो अच्छा नहीं लगता। इनके कन-रस को पूरा करने के लिये लेक्चरार आवें और लेक्चर दें। एक-एक लेक्चर के लिये कितने ही रुपए रेल के किराए में व्यय हो जाते हैं, और फिर प्रभाव भी तो कुछ नहीं होता। मेरी सम्मति में लेक्चर जितने थोड़े हों, उतना अच्छा; और बंद हो जायँ, तो उससे भी अच्छा। मेरा विचार है, कुछ समय के लिये हमें अपने पुराने ढंग को बिलकुल बदल देना चाहिए। हमें शांत होकर सोचना चाहिए, क्या हम अपनी उन्नति का कोई दूसरा उपाय कर सकते हैं या नहीं? दिखावा छोड़कर शांति से काम करना उन्नति के मार्ग में हमारा पहला क़दम होगा। कम-से-कम मुझे तो आप ऐसा करने की आज्ञा दे दीजिए।

प्रभु, हमें सत्य-मार्ग दिखाओ

हिंदुओं के लिये वेद ब्रह्म है। यही उनकी सबसे पूज्य पुस्तक और ईश्वरीय ज्ञान है। वेद का एक मंत्र गुरु-मंत्र कहलाता है, और वह गायत्री-मंत्र है। यह मंत्र गुरु-मंत्र इसलिये कहाता है कि वह मनुष्य-मात्र को सत्य-मार्ग दिखाता है। इस मंत्र का जप करना प्रत्येक हिंदू का प्रति दिन का एक आवश्यक और पवित्र कर्म समझा जाता है। बचपन में ही यह मंत्र हमारे कान में फूँका जाता है, और हमें विश्वास दिलाया जाता है कि किसी भी कष्ट और आपत्ति के समय इस मंत्र का जप करने से हम दुःख से उद्धार पा जायँगे। इस मंत्र का अभिप्राय है—"हे प्रभु, हमारी बुद्धि को सन्मार्ग पर लाओ।"

यह क्या ? हमारी बुद्धि का हमारे दुःखों से क्या संबंध ? परंतु यही हमारे दुःखों का एक रहस्य है। मनुष्य के सब दुःख उसकी बुद्धि के कुमार्ग पर चलने से ही उत्पन्न होते हैं। कल्पना कीजिए, एक मनुष्य को उत्तर की ओर एक स्थान पर जाना है, वह भूल से दक्षिण की ओर चल पड़ता है। वह जितना ही दूर जाता है, उतना ही अपने दुःख को बढ़ाता है। जितने वेग से वह दौड़ता है, वह अपने इष्ट स्थान से उतना ही दूर होता जाता है। इसी प्रकार मनुष्य अपने जीवन में एक क़दम भूलकर उलटे मार्ग पर रख देता है, और उसका सारा जन्म दुःख में डूब जाता है।

इसी प्रकार सभा-समाज भी भूलकर उलटे मार्ग पर पड़ भूल-भुलैयाँ में फसते चले जाते हैं। जब आगे से मार्ग बंद हो जाता है, तब इधर-उधर देखकर चकराते और धक्के खाते हैं। सोचते हैं, क्या करें।

मार्ग दिखलानेवाला गुरु, नेता या पथ-दर्शक होता है। प्रायः ऐसा होता है कि नेता इष्ट स्थान का उचित मार्ग दिखा देता है, परंतु परिस्थिति इतनी विकट होती है कि जनता अपनी बुद्धि को काम में लाकर फिर पथ-भ्रष्ट हो जाती, और अपने नेता के काम को बिगाड़ देती है।

दुर्भाग्य से हमारा देश ऐसी अवस्था में फस गया है कि इसकी समस्या का हल बहुत कठिन हो गया है। इस समस्या को सुलझाने के प्रयत्न में अनेक भूलें होने की संभावना है। बहुत सीधे होने के कारण हमारा भूल जाना और भी सरल है। अच्छा नेता मिलने पर भी हम ठीक मार्ग पर नहीं चल सकते, और दुःखों का ग्रास बनते हैं। हमारी समस्या की उलझन का कारण यह है कि हमारे देश के आरंभिक निवासी हिंदू हैं। हिंदू-सभ्यता और संस्कृति की रक्षा करना हिंदू-नेताओं का मुख्य कर्तव्य है। हमारे पुराने नेता ब्राह्मण थे। महात्मा बुद्ध ने इस जाति के सामने नया आदर्श उपस्थित कर इसकी संस्कृति को ही बदल दिया। एक तरह से उन्होंने इस जाति को नया ही जन्म दे दिया। बौद्ध संस्कृति अच्छी थी या बुरी, यह दूसरा प्रश्न है; परंतु हम इतना तो निस्संदेह कह सकते हैं कि बौद्ध-धर्म ने हमारी जाति को जीवन-संग्राम के अयोग्य बना दिया। समर-क्षेत्र में लाखों का मुख मोड़ देनेवाले क्षत्रिय बौद्ध-धर्म के प्रभाव से तिनका तक तोड़ने में असमर्थ हो गए। यद्यपि ब्राह्मणों ने प्रयत्न करके इस देश में प्राचीन सभ्यता का नए सिरे से प्रचार किया, परंतु वे बौद्ध-धर्म और जैन-धर्म के प्रभाव को सर्वथा दूर न कर सके।

हिंदुओं को मुसलमानों से भिड़ना पड़ा। इसलाम में इसके संचालक ने वे सब विशेषताएँ भर दी थीं, जो जीवन-संग्राम के लिये अत्यंत उपयोगी हैं। इसलाम अरबी सभ्यता के अच्छे-बुरे गुण साथ लेता

आया है। इसलाम के अन्य प्रभावों को छोड़कर भी इतना तो स्पष्ट है कि हमारी जाति का एक बड़ा भाग इसके प्रभाव से अपनी सभ्यता का शत्रु बनकर इसके विरुद्ध खड़ा हो गया है। एक विरोधी शक्ति के निरंतर साथ रहने से हिंदुओं की अवस्था शोचनीय हो गई है। इतना ही होता, तो भी अधिक चिंता न थी। जातियों में सदा परस्पर संग्राम होते ही आए हैं, और उनसे मुक्ति प्राप्त करने के भी कई ढंग हैं। परंतु इस समय एक अत्यंत उन्नत और समृद्ध जाति पश्चिम से आकर इस देश में बस गई है। इस जाति ने सभ्यता के सभी उन्नत उपायों से संपन्न होकर हमारी जाति की संस्कृति को दबाकर अप्रतिभ कर दिया है।

इस विकट समस्या का सुलझाना कठिन काम है। बंगाल के प्रसिद्ध नेता राजा राममोहन राय और बाबू केशवचंद्र सेन ने अपना मार्ग बता दिया। यह दूसरा प्रश्न है कि वह मार्ग ठीक है या नहीं।

स्वामी दयानंद ने भी एक मार्ग दिखाया, और कांग्रेस ने एक राजनीतिक आंदोलन आरंभ किया। नहीं कह सकते, ये सब मार्ग हमें निर्दिष्ट स्थान पर ले जायँगे या नहीं। परंतु यदि हमारा मार्ग ग़लत हो, तो इसमें संदेह नहीं कि हमारा संपूर्ण परिश्रम और प्रयत्न व्यर्थ जायगा, और हम उलटे दुःख-सागर में जा पड़ेंगे। हमारे सब कष्टों और दुखों के लिये हमारे नेता ही उत्तर-दाता होंगे; क्योंकि हम उन्हीं के निर्दिष्ट मार्ग पर चल रहे हैं। हमने कुछ चुने हुए व्यक्तियों को नेतृत्व सौंप दिया है, और आशा करते हैं कि वे हमें ठीक स्थान पर पहुँचा देंगे। परंतु यदि हमारे नेता स्वयं ही उलटे मार्ग पर चलने लगें, तो वही बात होगी कि "बाम्हन आप भी मरे और जजमान भी डुबाए।"

यदि हम ठीक मार्ग पर चलें, तो हमें सफलता का मुख देखने की आशा भी हो सकती है, और हम सफलता की ओर एक-दो क़दम

आगे भी बढ़ सकते हैं। बहुत-से ऐसे भी काम होते हैं, जो प्रकट में उन्नति और सफलता की ओर जाते देख पड़ने पर भी वास्तव में सैनिक क़वायद (Military drill) के 'मार्क-टाइम (March-time) की भाँति होते हैं। मार्क-टाइम करने से सेना आगे नहीं बढ़ सकती, केवल उसके पैर ही मिल सकते हैं। इस समय हमारे नेता कोई सीधा मार्ग नहीं देख पाते या देखना नहीं चाहते ; क्योंकि ऐसा करने से उनकी अन्य इच्छाएँ पूर्ण नहीं होतीं। इसलिये वे निरर्थक कामों में ही अपना समय नष्ट कर रहे हैं।

हमारे देश के प्रमुख नेता महात्मा गांधी हैं। उनका त्याग अद्वितीय है, उनकी विद्वत्ता में संदेह नहीं, उनकी वाणी में जादू है। परंतु जब वह अपनी हिंदू-मुसलिम एकता के लिये पंजाब का बलिदान करने को कहते हैं, तो मुझे उनकी राजनीतिक दूरदर्शिता में संदेह हो जाता है। महात्माजी यह भूल जाते हैं कि पंजाब भारत का मुख्य द्वार है। समय-समय पर सभी राजसत्ताएँ पंजाब से ही भारत के मैदानों में आईं। भारत की राजधानी दिल्ली सदा ही पंजाब के शासन के हाथ रही है।

पंजाब का इतिहास विशेष महत्त्व की वस्तु है। जब पंजाब एक बार ग़ज़नी के अधीन हो गया, तो भारत के किसी प्रांत के लिये भी विदेशी शत्रु का सामना करना असंभव हो गया। सभी आक्रमणकारी सदा पंजाब को ही हथियाने के प्रयत्न में रहते आए हैं। मरहठों ने देहली में राज्य स्थापित किया, परंतु पंजाब को न अपना सके। उनका शासन स्थिर न रह सका। दिल्ली में अँगरेज़ी-राज्य की सफलता का भी कारण यही था कि महाराजा रणजीतसिंह ने अँगरेज़ों को पंजाब की ओर से निश्चिंत कर दिया था। पिछले महायुद्ध का ही उदाहरण देख लीजिए। लॉर्ड चेम्सफ़ोर्ड के शासन को किस ओर से भय की आशंका हुई थी। यदि यह भय वास्तविक रूप धारण कर लेता और पंजाब में मुसलमानों की प्रबलता होती जैसे कि मियाँ

फ़ज़लहुसैन करना चाहते हैं—तो क्या अवस्था होती? पंजाब में मुसलमानों की प्रबलता सदा ही पश्चिमोत्तर से होनेवाले आक्रमणों से सहानुभूति रक्खेगी। भारत के शासन की भलाई इसी में है कि पंजाब में मुसलमानों की प्रबलता न हो सके। हमारे मियाँ साहब इस रहस्य को ख़ूब समझते हैं; परंतु महात्माजी का ध्यान इस ओर नहीं जाता। हमारी जाति के दूसरे नेता मालवीयजी हैं। यह सत्य है कि मालवीयजी ने हिंदू-संगठन में जीवन डाल दिया है; परंतु अब वह इसके लिये क्या कर रहे हैं? मुझे तो यह स्पष्ट दीखता है कि मुसलमानों ने हमारे अछूतों और विधवाओं को संगठित ढंग से हड़प जाने का प्रयत्न आरंभ किया है। प्रत्येक मुसलमान अपने मज़हब का प्रचारक है। अभी कुछ ही दिन हुए कि हमें समाचार मिला है, एक प्रतिष्ठित मुसलमान के घर दो हिंदू-विधवाएँ अपने बच्चों समेत आई हुई थीं। दूसरे दिन प्रातः-काल ही पता लगा कि उन्हें दूसरे घर में भेज दिया गया है, और ऐसी स्त्रियों को एक घर में चौबीस घंटे से अधिक नहीं रक्खा जाता। न-जाने लाहौर में ऐसी कितनी घटनाएँ प्रतिदिन होती हैं, जिनका हमें भेद भी नहीं मिलता। दो ही अवस्थाएँ हो सकती हैं। या तो आजकल ये घटनाएँ बहुत अधिक होने लग गई हैं, या हमारे चैतन्य हो जाने से हमें इनका पता लग जाता है, जो पहले नहीं लगता था। यह तो हुआ। हम मालवीयजी से पूछते हैं कि वह हिंदुओं में जीवन उत्पन्न करने के लिये क्या कर रहे हैं? वह कर ही क्या सकते हैं। उन्हें समय ही कहाँ है? उन्हें बड़ी व्यवस्थापक-सभा के लिये व्याख्यान तैयार करने के लिये समय चाहिए। इन्हीं व्याख्यानों पर हमारी जाति का भविष्य निर्भर है न? सारी आयु कौंसिलों में रहकर भी पंडितजी को इतना पता नहीं लगा कि वास्तविक काम कौंसिलों के बाहर है। कौंसिलों में बैठकर काम करनेवाले सज्जन पर्याप्त हैं।

पंजाब की अवस्था अन्य प्रांतों से भिन्न है। यहाँ काम करने की

शक्ति अन्य प्रांतों से अधिक है। पंजाब के अतिरिक्त अन्य किसी प्रांत में जनता द्वारा स्थापित स्कूल-कॉलेज आपको नहीं मिलेंगे। पंजाबियों ने समझा कि देश का उद्धार इस शिक्षा से ही होगा। न-जाने किस अभागी घड़ी में आर्य-समाज के किस नेता के हृदय में यह विचार उठा कि आर्य और हिंदू-समाज का उद्धार इस शिक्षा द्वारा हो जायगा। यह विचार पंजाब में बहुत गहरा चला गया है। यहाँ की शिक्षित जनता की आँखों पर एक पर्दा-सा पड़ गया है। न केवल आर्य और हिंदू, बल्कि सिख, मुसलमान तथा अन्य सभी संप्रदाय इस प्रयत्न में हैं कि उनके अपने संप्रदाय के कॉलेज और स्कूल स्थान-स्थान पर बन जायँ। पंजाब की सारी शक्ति और धन को धर्म के नाम पर अपील करके इस अविद्या के प्रचार के लिये व्यय किया जा रहा है। हमने कॉलेज बनाना ही जातीय उन्नति का एक-मात्र साधन समझ लिया है। हम इस काम के लिये सब कुछ न्योछावर करने को तैयार रहते हैं। जहाँ भी पंजाबी असर है, यह बीमारी भी साथ है। मैं स्वयं बहुत समय तक इस बीमारी का शिकार बना रहा हूँ, और उसका प्रायश्चित्त करने के लिये राष्ट्रीय विद्यालय में समय देना अपना कर्तव्य समझता हूँ। मुझे तो विस्मय होता है कि कोई यह सोचता ही नहीं कि इस शिक्षा से लाभ क्या हो रहा है? अन्य देशों में बच्चों को हाथ से काम करके अपने जीवन-निर्वाह के योग्य बनाया जाता है; परंतु हम चौदह-पंद्रह वर्ष तक बच्चों को शिक्षा देकर केवल अर्ज़ी लिखना सिखाते हैं। कोई कुछ नहीं सोचता; प्रति वर्ष हज़ारों बालक स्कूलों में पहले वर्षों की अपेक्षा अधिक संख्या में दाख़िल होते हैं। वे समझते हैं शायद स्कूल में न पढ़ने से वे स्वर्ग में प्रविष्ट न हो सकेंगे। ईश्वर जाने, पंजाबियों को किस दिन बुद्धि आवेगी। वही इनकी बुद्धियों को सन्मार्ग पर ला सकता है।

हमारी अवस्था विचित्र है। हम प्रति दिन विनाश की ओर जा रहे हैं। हमारे बालक न कोई हुनर सीखते हैं, न मज़दूरी कर सकते हैं, न उनसे खेती हो सकती है, हम प्रति दिन चंदा दे-देकर उनके लिये स्कूल खोलते जाते हैं।

हमारा कर्तव्य हिंदू-आदर्श और सभ्यता की रक्षा होना चाहिए। स्वराज्य ही इसका एक-मात्र साधन है। हिंदू-मुसलिम एकता की भी इसके लिये आवश्यकता होगी। हमें पश्चिम से कला-कौशल भी सीखना होगा। परंतु हम इनमें से किसी वस्तु के लिये चिंता नहीं करते। हमारा यह काम बहुत लंबा है, दो-चार दिनों या वर्षों में यह नहीं हो सकेगा। मुझे तो इसका अंत ही दिखाई नहीं देता। इसलिये हमारा कर्तव्य है कि अपनी जाति को जीवित रखने की चेष्टा करें और इसे बलवान् बनावें। चरित्र, बल और सच्ची शिक्षा ही हमें इस आपत्ति से बचा सकती है। सफलता प्राप्त करने के लिये बलिदान की आवश्यकता होगी। हमें अपने को एक लंबे युद्ध के लिये तैयार करना होगा।

मुसलमानों के दिल में इसलामी हुकूमत क़ायम करने की उमंग है। उन्हें पंजाब की सीमा पर अफ़ग़ानी हुकूमत पैर फैलाए दीख रही है। वे उसके लिये मैदान साफ़ करना चाहते हैं। हिंदुओं के लिये इस देश की सीमा के परे कुछ नहीं; उनकी आशा भारत पर ही है। हिंदू रियासतें हैं; परंतु उनमें जागृति का कोई चिह्न नहीं। इस जागृति के बिना धर्म की रक्षा नहीं हो सकती।

संख्या का प्रश्न

महात्मा गांधी तथा अन्य राजनीतिक नेताओं के हृदय में एक भ्रम समा गया है। वे समझते हैं कि हिंदू-मुसलिम झगड़े का कारण अधिकारों का बटवारा है। वे प्रयत्न करते हैं कि एक बार मिलकर इन अधिकारों को बाँट दिया जाय और समझौता हो जाय। महात्माजी हिंदुओं को उपदेश देते हैं कि हमें अधिकारों की चिंता न कर अपनी सारी शक्ति स्वराज्य की ओर लगाकर बलिदान करने के लिये उद्यत हो जाना चाहिए; क्योंकि देश में हिंदुओं की संख्या अधिक होने से देश की ओर हिंदुओं का ही कर्तव्य अधिक है। महात्मा जी एकता के लिये हिंदुओं को झुक जाने का उपदेश देते हैं। परंतु दूसरे नेता यह बात मानना नहीं चाहते। उनका विचार है कि इससे हिंदुओं को भयंकर हानि पहुँचेगी, और मुसलमान भी प्रसन्न नहीं होंगे। इसीलिये लाला लाजपतरायजी ने समझौते के लिये प्रयत्न करके भी पीछे इस विचार को छोड़ देना ही उचित समझा, और अब हिंदुओं को अपने राजनीतिक अधिकारों की रक्षा का उपदेश दे रहे हैं।

मैं कहना चाहता हूँ कि हमारा झगड़ा मुसलमानों से अधिकारों के लिये नहीं है। उसका कारण कुछ और ही है। अधिकार देना मुसलमानों के हाथ में नहीं, प्रत्युत गवर्नमेंट के हाथ में है। अधिकारों के लिये हमारा झगड़ा गवर्नमेंट से होना चाहिए, मुसलमानों से नहीं।

उदाहरण के लिये हमारी शिकायत मियाँ फ़ज़्लहुसैन के विरुद्ध है। यहाँ हमें उनके मुसलमान होने से कोई शिकायत नहीं हो सकती। हमें उनके मुसलमान मंत्री होने से ही शिकायत है; क्योंकि वह जो

कुछ कर रहे हैं, वह इस गवर्नमेंट का अंग बनकर कर रहे हैं, और इस गवर्नमेंट के बल पर कर रहे हैं। इस प्रकार की आपत्ति हिंदुओं को कई मुसलमान सिविल और पुलीस अफ़सरों के विरुद्ध हो सकती है, जो अपने कर्तव्य को पूरा करते समय भी अपनी धार्मिक असहिष्णुता को दूर नहीं कर सकते। यदि किसी ऐसे व्यक्ति के अन्याय के विरुद्ध हिंदू आपत्ति करते हैं, तो वह शिकायत मुसलमानों के विरुद्ध न होकर सामयिक शासन के विरुद्ध है। हमारी व्यवस्थापक सभाएँ भी अन्य सरकारी महकमों की भाँति इस गवर्नमेंट का एक भाग हैं। यह गवर्नमेंट अच्छी है या बुरी, यह दूसरा प्रश्न है। यदि हम इसे बुरा समझते हैं, तो हमें अधिकार है कि इसे ठीक करने या बदलने का प्रयत्न करें; परंतु इस सत्य से कोई इनकार नहीं कर सकता कि यह गवर्नमेंट हमारे देश का शासन कर रही है, और हमें इसके साथ संबंध रखना ही होगा। हमरा न्याय इसी के हाथ में है। उदाहरणतः लाहौर म्युनिसिपिल कमेटी का निर्णय पूर्णतया गवर्नमेंट के हाथ में है, इसका मुसलमानों से कोई संबंध नहीं। प्रश्न उठता है, झगड़ा राजनीतिक अधिकारों का, नहीं, तो फिर झगड़े का वास्तविक कारण क्या है? इस कारण को मुसलमान भली प्रकार समझते हैं। जिस दिन से इसलाम इस देश में आया है, उसी दिन से जो कोई व्यक्ति मुसलमान हो जाता है, वह इस कारण का समझने लगता है। हिंदू इसे न समझते हैं, न समझने की चेष्टा करते हैं। जब तक हम अनैक्य के मूल-कारण को नहीं समझेंगे, एकता होना असंभव है।

वास्तव में झगड़े का कारण संख्या का प्रश्न है। इसलाम की शिक्षा है अपने मज़हब को खूब फैलाओ। यदि एक मुसलमान किसी अन्य संप्रदाय के मनुष्य को मुसलमान बना लेता है, तो उसके लिये मुक्ति का द्वार खुल जाता है। इस काम से अधिक पवित्र और पुण्यदायक काम मुसलमानों की दृष्टि में दूसरा नहीं। इसलिये प्रत्येक

मुसलमान स्वभावतः अपने धर्म का प्रचारक होता है। प्रेम से, लोभ से, डर से, बल-प्रयोग से, यहाँ तक कि अपनी कन्या देकर भी दूसरे संप्रदाय के मनुष्य को मुसलमान बनाने का प्रयत्न करना मुसलमानों की प्रकृति बन गई है। मुझे सक्खर (सिंध) के एक मुसलमान रईस के विषय में बतलाया गया है, जो वर्ष में प्रति दिन एक के हिसाब से ३६५ हिंदू स्त्री-पुरुषों या बालकों को मुसलमान बनाए बिना भोजन करना हराम समझता है।

इन कारणों से देश में हिंदुओं और मुसलमानों की संख्या निश्चित नहीं रह सकती। हिंदू घटते और मुसलमान बढ़ते जाते हैं। संख्या के आधार पर अधिकार बाँटने पर मुसलमान इसीलिये ज़ोर देते हैं; क्योंकि उनकी संख्या प्रत्येक प्रांत में बढ़ रही है। कुछ वर्ष हुए, बंगाल में हिंदुओं की संख्या अधिक थी; परंतु अब मुसलमानों की संख्या अधिक है। कुछ समय में यह और भी बढ़ जायगी। इसी सिद्धांत को फैलाकर देखने से स्पष्ट विदित हो जायगा कि मुसलमानों की संख्या बढ़ने और हिंदुओं की घटती जाने से मुसलमानों के अधिकार शनैः-शनै बढ़ते और हिंदुओं के घटते जायँगे। और, एक दिन आवेगा कि इस देश में इसलाम का प्रभुत्व स्थापित होकर एशिया में एक प्रबल इसलामी शक्ति स्थापित हो जायगी।

मुझे इसमें क्या आपत्ति है? मुझे इससे भविष्य में मज़हबी अत्याचार और असहिष्णुता के फैल जाने की संभावना दीखती है, विचारों की स्वतंत्रता और सभ्यता की उन्नति में एक भयंकर रुकावट खड़ी दीखती है। संसार में आत्मिक उन्नति, विचार-स्वतंत्रता और सभ्यता के विकास के लिये हिंदू-संस्कृति की रक्षा परमावश्यक है। इसलिये मैं चाहता हूँ कि कम-से-कम इस देश में यदि हिंदू-जाति की संख्या बढ़ नहीं सकती, तो घटे भी नहीं। हिंदू-संगठन से मेरा यही अभिप्राय है। यदि हिंदू इतनी बात समझ लें, और इसके

लिये प्रयत्न करना आरंभ कर दें, तो उनकी रक्षा हो सकती है, वर्ना उनकी वही दुर्गति होगी, जो पहले होती रही है।

मैं माल्थस का भक्त नहीं, फिर भी मनुष्य-समाज की संख्या बढ़ाने के पक्ष में नहीं हूँ। मेरे विचार में मनुष्य को उतनी ही संतान उत्पन्न करनी चाहिए, जिसका वह सुगमता से और अच्छी तरह से पालन कर सके। व्यर्थ निकम्मी संतान उत्पन्न करके समाज के भार को बढ़ाना महा पाप है। परंतु ये सब सिद्धांत उसी समाज के लिये ठीक हैं, जो प्राकृतिक अवस्था में हो। हमारे समाज की अवस्था इतनी बिगड़ चुकी है कि कोई भी साधारण सामाजिक नियम हमारी अवस्था के सर्वथा अनुकूल नहीं हो सकता। इस देश के दो अंगों में से एक का प्रयत्न यह है कि अपनी संख्या बढ़ाकर वह दूसरे अंग को देश से निकालकर बाहर कर दे। इसलिये यहाँ पर काम करने-वाले सभी सिद्धांत विचित्र होने चाहिए। इस देश का सिद्धांत यह बन रहा है कि संपूर्ण राजनीतिक अधिकार और उनका प्रयोग अधिकसंख्यक अंग (Mjority) के हाथों में दे दिया जाय, और वह दूसरे अंग पर मनमाना अन्याय और अत्याचार करे।

राजनीतिक नेता कहते हैं, तुम संगठन को बंद कर दो, इससे राष्ट्र के दो अंगों में विरोध बढ़ता है, और देश की स्वतंत्रता के मार्ग में रोड़ा अटकता है। हम एक क्षण के लिये माने लेते हैं कि संगठन से मुसलमानों को आपत्ति है। परंतु प्रश्न उठता है, उन्हें क्यों आपत्ति है? यदि मुसलमान कहें कि इससे देश के काम में विघ्न पड़ता है, तो मैं संगठन के काम को छोड़ दूँगा; परंतु मैं उनसे यह पूछूँगा कि वे देश के लिये क्या कर रहे हैं? और, यदि मुसलमान कहें कि संगठन से हिंदुओं का अस्तित्व बच जायगा, और मुसलमानों का उद्देश्य पूरा न होगा, तो मैं अपने राजनीतिक कार्यकर्ताओं से इस विषय पर एक बार गंभीरता से विचार करने के लिये कहूँगा। यह

निश्चित है कि हिंदू-संगठन के अभाव में हिंदुओं और मुसलमानों में दृढ़ संगठन नहीं हो सकता, और न स्वराज्य ही मिल सकता है।

संगठन का उद्देश्य हिंदुओं की संख्या को कम होने से रोकना और उनके अस्तित्व की रक्षा करना है। जो हिंदू-संगठन के काम से सहानुभूति नहीं रखता, वह देश-हित के किसी भी कार्य में योग देने की योग्यता नहीं रखता। हिंदुओं को अपनी रक्षा के लिये अपने धर्म की कसौटी की परख नई बनानी पड़ेगी। जो काम हमारी संख्या को बढ़ावे, वही हमारे लिये पुण्य है, और जो हमारी संख्या को घटावे, वही हमारे लिये सब से बड़ा पाप है। हिंदू-जाति में स्त्री का विवाह दूसरी बार नहीं हो सकता। हमारी विधवाएँ हमारी जाति की संख्या घटाकर दूसरी जाति की संख्या को बढ़ा रही हैं। हमारी जाति में एक स्त्री को एक कलंक लग जाता है, तो वह जातिच्युत हो जाती और दूसरी जाति की संख्या बढ़ाती है। मालाबार में अभी तक यदि किसी ब्राह्मण-स्त्री को कोई मुसलमान स्पर्श कर दे, तो वह जातिच्युत हो जाती है, और उसका पति उसे त्याग देता है। दूसरी ओर एक वेश्या भी एक सम्मानित मुसलमान से विवाह करके उनके समाज में आदर-पूर्वक रह सकती है। हम इतने गिर गए हैं कि अपनी स्त्रियों को स्वयं धक्का देकर विजातियों के पास भेजते हैं। यह एक सत्य सिद्धांत है कि जिस समाज में स्त्रियों का अनादर होता है, वह नष्ट हो जाता है। वैयक्तिक उन्नति सामाजिक उन्नति के बिना नहीं हो सकती। उदाहरणतः कुश्ती लड़ने से एक मनुष्य पुष्ट होता है; परंतु जाति में कुश्ती लड़ने की प्रथा होने से ही वह यह लाभ उठा सकता है। मुसलमानों में बहु-विवाह की प्रथा है। मनुष्य की पाशविक वृत्ति इस ओर है, और इससे उनकी संख्या-वृद्धि भी होती है। हिंदुओं में दूसरा विवाह करना बुरा समझा जाने लगा है, और अनेक स्त्री-पुरुष निःसंतान मर जाते हैं। हिंदुओं का विश्वास है

कि यदि हमें कोई स्पर्श कर लेगा, तो हम गिर जायँगे, हमारा धर्म भ्रष्ट हो जायगा। इसके विपरीत मुसलमानों और ईसाइयों को सिखलाया जाता है कि घृणित-से-घृणित व्यक्ति को गले लगा लेने से तुम्हारी पवित्रता बढ़ जाती है। हम समझते हैं, जाति की चिंता किए बिना हम उन्नति कर सकते हैं। परंतु इसलाम और ईसाइयत का उपदेश इसके विरुद्ध है। यदि हमें अपना अस्तित्व बचाना है, तो हमें अपने पुराने विचारों को बदलना पड़ेगा।

अछूतोद्धार, स्त्रियों की रक्षा और शुद्धि, ये तीन उपाय हमारी रक्षा के हैं। संगठन के यही तीन अंग हैं। जब तक इसलाम अपनी प्रकृति को नहीं बदलता, हमारी रक्षा का उपाय संगठन के अतिरिक्त दूसरा नहीं है।

हिंदुओं के जीवन का प्रश्न उनकी संख्या के साथ संबद्ध है

पैंतीस वर्ष हुए, जब मैं पहले-पहल लाहौर में आया था। उस समय लाहौर में परिस्थिति बड़ी हृदयाकर्षक थी। लाहौर पंजाब के प्रांतीय जीवन का केंद्र था। उस समय लाहौर में एक नवीन जागृति उत्पन्न हुई थी, जिसका प्रभाव सभी संप्रदायों पर पड़ा, और कई सांप्रदायिक संस्थाओं में एक विचित्र आंदोलन आरंभ हो गया। उस समय जीवन के जितने चिह्न लाहौर में पाए जाते थे, उतने भारत के अन्य किसी नगर में नहीं पाए जाते थे। सभी मतों और संप्रदायों में एक उत्साह दिखलाई देता था। प्रति दिन नगर की गलियों और दरवाज़ों पर किसी-न-किसी सभा, समाज या संस्था के जलसे की सूचना चिपकी हुई मिलती थी। अन्य प्रांतों से आनेवाले भी इस जागृति और उत्साह को देखकर विस्मित हो जाते थे; क्योंकि किसी और स्थान पर यह उत्साह न देख पड़ता था।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि इस जागृति का कारण आर्य-समाज का आंदोलन था। स्वामी दयानंद ने अपने एक मामूली दौरे से पंजाब को जगा दिया था। यह कह देने की कोई आवश्यकता नहीं, जैसा कि स्वामी दयानंद स्वयं स्पष्ट कहते हैं, कि समाज कोई नया धर्म अथवा संप्रदाय नहीं है; यह केवल वैदिक धर्म के पुनरुद्धार और हिंदू-जाति में जीवन पैदा करने के लिये एक संस्था है। स्वामीजी का उद्देश समाज की स्थापना से वही था, जो इसके आंदोलन से उत्पन्न हुआ। इसका प्रभाव मुसलमानों और सिखों पर भी हुआ। मैं लाहौर में एक विद्यार्थी बनकर आया था; परंतु इस व्यापक आंदो-

लन की नींव में जो विचार काम कर रहा था, उसे मैं उस समय भी समझ सकता था। यदि मुझसे आप पूछें कि उस समय मैंने यहाँ क्या देखा, तो मैं संक्षिप्त शब्दों में इतना ही कह देना पर्याप्त समझूँगा कि उस समय सभी संस्थाएँ जाति और देश की उन्नति के लिये प्रयत्न कर रही थीं, और उनका यह दावा था कि उनके मार्ग पर चलने से ही इस उद्देश में सफलता प्राप्त हो सकेगी। उस समय आर्य-समाज ने स्वामी दयानंद के उद्देश की पूर्ति के लिये काम करना आरंभ किया। आर्य-समाज का काम उस समय गिनती के चुने हुए अँगरेज़ी-शिक्षा-प्राप्त व्यक्तियों के हाथ में था। स्वभावतः उन्होंने सोचा, यदि देश में उनकी-जैसी शिक्षा और संस्कृति का प्रचार कर दिया जाय, तो देश का उद्धार हो जायगा। उन लोगों ने निश्चय किया कि आर्य-समाज को वर्तमान शिक्षा-पद्धति के अनुसार स्कूल और कॉलेज खोलकर आर्य-समाज के सिद्धांतों के साथ-साथ शिक्षा का प्रचार करना चाहिए। उसी समय आर्य-समाज में इस विचार के विरुद्ध एक प्रबल लहर उठ खड़ी हुई। इन लोगों का विचार था कि समाज का वर्तमान शिक्षा-पद्धति से कोई संबंध नहीं, और न इस शिक्षा से समाज के सिद्धांतों का प्रचार ही ठीक तरह हो सकता है। बहुत समय तक यह विवाद समाज में शनैः-शनैः चलता रहा। अंत में समाज दो दलों में विभक्त हो गया।

इसके साथ-साथ समाचारपत्रों में एक विचार का प्रचार किया जा रहा था। इसका आरंभ करनेवाले जालंधर के प्रसिद्ध रईस लाला देवराजजी थे। इनका विचार था कि देशोन्नति के लिये शिक्षा-प्रचार आवश्यक है। इसमें संदेह नहीं; परंतु स्त्रियों में भी शिक्षा-प्रचार की बड़ी आवश्यकता है। देशोन्नति की गाड़ी के स्त्री और पुरुष दो पहिए हैं। गाड़ी एक पहिए से नहीं चल सकती। लड़कों के लिये स्कूल और कॉलेज हों; परंतु लड़कियों के लिये भी उनका होना आवश्यक है।

आज हम शांति से इन विचारों को सुन लेते हैं; परंतु मैं आपको बतलाना चाहता हूँ कि उस समय के उत्साही सुधारक इन विचारों को इतने जोश से कहते थे कि वे अपने को भी भूल जाते थे। प्रत्येक विचार-शील मनुष्य दूसरों को अपना अनुयायी बनाने की धुन में रहता और इसी में देश-हित का तत्त्व समझता था। उस समय के उत्साही पुरुषों ने न केवल शिक्षा के प्रश्न पर ही ज़ोर दिया, अपितु वे और भी कई प्रकार के आंदोलनों को उत्साहपूर्वक चला रहे थे। उदाहरण के लिये एक निरामिषभोजी दल (Vegetarian Society) बना था, जो यह प्रचार करता था कि जब तक हमारा आहार बिलकुल निरामिष न हो जायगा, किसी प्रकार की भी आत्मिक उन्नति होना संभव नहीं, और न देश की उन्नति ही हो सकेगी। अब भी मेरी आँखों के सामने निरामिषभोजी दल के उत्सवों का दृश्य फिर रहा है—किस प्रकार वे लोग भजनीक और व्याख्यान दाताओं को एकत्र कर इस बात का प्रचार करते थे कि निरामिष-भोजन ही देशोन्नति तथा आत्मिक उन्नति का एक-मात्र साधन है।

मैं देखता हूँ, वे सब लोग अपने आंदोलनों को बिलकुल नेक-नीयती और सफ़ाई से चला रहे थे। उन पर किसी प्रकार की बेई-मानी का दोष नहीं लगाया जा सकता। परंतु इतना स्पष्ट है कि उस समय के कार्यकर्ताओं के प्रयत्न, चाहे वे आर्य-समाजी रहे हों या कोई अन्य, उन सभी निर्बलताओं से पूर्ण थे, जो स्वभावतः उनके जीवन में थीं। उनके लिये अपने हृदय में श्रद्धा और सम्मान अनु-भव करता हुआ भी मैं देखता हूँ, उन्होंने पंजाब को उलटे मार्ग पर चलाकर बड़ा अपराध किया है। मेरी यह समझ में नहीं आता कि किस प्रकार हमारे नेता शिक्षा—वर्तमान शिक्षा—को ही उन्नति का एक-मात्र साधन मान बैठते हैं। मेरा तो दृढ़ निश्चय

है कि इस शिक्षा की अधिकता ने ही हमारा नाश किया है, और इससे बढ़कर यह कि हमने अपना सारा धार्मिक उत्साह और धन भी इस शिक्षा के प्रचार में ही लगा दिया है। उन बेचारों का क्या दोष था? उनका यह स्वभाव ही था कि जो विचार उनके ध्यान में आ जाता, उसे ही वे देशोन्नति का एक-मात्र उपाय समझ लेते थे। मैंने निरामिषभोजी दल के विषय में कहा है। उस समय ऐसा एक और समाज था, जिसका विचार था कि जब हमारे लड़के कोट, पतलून और हैट पहनना सीख जायँगे, और हमारी लड़कियाँ मेज़ पर बैठकर अँगरेज़ी बोलने लगेंगी, तो हमारा देश स्वयं ही उन्नति कर लेगा। उस समय के कांग्रेस के नेताओं का विचार था कि वर्ष-भर में एक बार कोट, पैंट, बूट और हैट पहनकर एक जगह बैठ ख़ूब धड़ल्ले की अँगरेज़ी बोलने और सिगार पी लेने से देश के प्रति उनका कर्तव्य पूरा हो जाता है।

मुझे शोक इस बात का है कि आर्य-समाज एक धार्मिक संस्था थी; परंतु उसने अपनी सारी शक्ति विदेशी शिक्षा के प्रचार में लगा दी। मैं इस विषय में बहुत कुछ कह चुका हूँ। अब केवल इतना ही कहना चाहता हूँ कि हमें एक बार यह सोचने का प्रयत्न करना चाहिए कि हमारी अवस्था क्या है, हम अब तक किधर जाते रहे हैं, और अब भी किधर जा रहे हैं? हमें अपना यह भ्रम थोड़ी देर तक छोड़कर कि हमारा उद्धार स्कूलों और कॉलेजों से ही हो सकता है, यह सोचना चाहिए कि हम किस आपत्ति में फसे हुए हैं। एक बहुत स्थूल उदाहरण है। इस मर्दुमशुमारी के समय हमारी संख्या चालीस प्रति शत रह गई है, यदि अगली मर्दुमशुमारी के समय हमारी संख्या पैंतीस रह जाती है, और उससे अगली पर तीस, तो ऐसी पाँच-चार मर्दुमशुमारियों के पश्चात् यहाँ हमारी संख्या उतनी ही रह जायगी, जितनी कि सिंध या पश्चिमोत्तर-प्रांत में है। बताइए, उस समय

हमारे स्कूल, कॉलेज, मंदिर और बड़ी-बड़ी दूसरी संस्थाएँ किस काम आवेंगी ?

मुझे तो और सब कुछ व्यर्थ दीखता है। मैं तो हिंदुओं के सम्मुख एक ही प्रश्न देखता हूँ। वह उनकी संख्या का प्रश्न है। इस प्रश्न में और सभी प्रश्नों का समावेश हो जाता है। यही प्रश्न उनके जीवन और मृत्यु का प्रश्न है। जिस स्थान में जिस समाज की जन-संख्या अधिक होती है, वहाँ न्याय और शासन उसी समाज के हाथों रहता है। कोहाट में जो हुआ, सो सब जानते हैं। अब सिंध से समाचार आ रहे हैं कि निर्बोध लड़कियों पर अत्याचार की हद हो रही है। हिंदू स्वाभाविक ही गवर्नमेंट की ओर देखते हैं; परंतु गवर्नमेंट के पुरज़े तो उन्हीं मनुष्यों के बने हुए हैं, जिनकी आबादी अधिक है।

यदि पुलीस की सहानुभूति आतताइयों के साथ हो, तो गवर्नमेंट क्या कर सकती है ? हिंदुओं की सबसे बड़ी निर्बलता यही है कि वे अपनी संख्या घटती हुई देखकर भी चुप हो रहते हैं। पंजाब में हमारी संख्या प्रति दिन घट रही है। इस शिक्षा का केवल इतना ही लाभ हुआ है कि हमें अपनी दीनावस्था का ज्ञान हो गया है। यदि हिंदू इस समय न चेतेंगे, तो फिर किसी और का दोष न होगा। हमारी संख्या के घटानेवाले कारणों को यहाँ दोहराने की आवश्यकता नहीं। वे किसी से छिपे हुए नहीं हैं। हमारी विधवाओं की संख्या और जाति-पाँति के बंधन के कारण अनेक पुरुष अविवाहित रहकर संख्या में कमी कर रहे हैं। हमारा परिश्रम के कामों से परहेज़ करना हमें निर्बल और निर्धन बना रहा है। हमारा धन का अत्यधिक प्रेम, यहाँ तक कि भोजन भी अच्छा न करना, हमारे स्वास्थ्य के बिगड़ने का मुख्य कारण है। ऐसे ही अन्य कई कारण हैं, जिनसे हम प्रति दिन निर्बल होते जाते हैं। नहीं कह सकते, हम अपने इन रोगों का इलाज कब करेंगे। यदि हम इन रोगों का कोई इलाज नहीं

करते, तो यही अच्छा होगा कि अपने सब समाजों और संस्थाओं को बंद करके बैठ जायँ। स्वयं उलटे मार्ग पर जाने से तथा औरों को भुलाने से क्या लाभ?

मैं अकसर सोचता हूँ कि हमारे मुसलमान भाइयों में वह कौन-सी शक्ति है, जिससे वे प्रति दिन फैलते जाते हैं। संभव है, इसके कई कारण हों; परंतु मुझे तो एक ही कारण दीखता है, और वह यह कि वे अपने सहधर्मी भाइयों से प्रेम तथा अन्य धर्म के मनुष्य से घृणा का भाव रखते हैं। इसे चाहे आप असहिष्णुता कहिए या धार्मिक उत्साह, परंतु बात यही है, जो मुसलमानों में जीवन बनाए रखती है। मैं हिंदुओं से कहूँगा कि इस समय केवल जातीयता का भाव ही उन्हें बचा सकता है। हिंदू लोग पक्षपात के नाम से ही घबराते हैं; परंतु इतना समझ लेना चाहिए कि देश-प्रेम का अर्थ ही अपनी जाति से प्रेम करना तथा अन्य जातियों से घृणा करना है। ईश्वर ने मनुष्य में राग-द्वेष स्वाभाविक ही उत्पन्न किए हैं। द्वेष को मारकर मनुष्य देवता बन जाता है; परंतु वह मनुष्य नहीं रहता। मनुष्य के लिये राग और द्वेष, दोनों ही आवश्यक हैं। हिंदुओं की आध्यात्मिकता ऐसे उलटे मार्ग पर चली गई है कि वे अपनी धार्मिक शिक्षा को भी ठीक-ठीक समझने के अयोग्य हो गए हैं। हिंदू कई रियासतों में राजा हैं। अपने धर्म को फैलाना तो दूर रहा, वे उसके बचाने की भी चेष्टा नहीं करते। बेगम भोपाल के क़ानून किसी से छिपे नहीं। कुछ ही दिन हुए, मुझे एक पत्र मिला है, जिससे मालूम हुआ कि हैदराबाद-जैसी बड़ी रियासत का उत्तरदायी नवाब भी मौलाना हसन निज़ामी की स्कीम पर चलकर प्रति वर्ष हिंदुओं को मुसलमान बनाने के लिये छः लाख रुपए वार्षिक व्यय कर रहा है। हैदराबाद रियासत की प्रजा अधिकांश हिंदू है, और यह रुपया भी उसी की जेब से आता है। हिंदू-रियासतों में संकीर्णता छोड़कर

मुसलमानों को उत्तरदायित्व के पदों पर प्रतिष्ठित किया जाता है; परंतु मुसलमान रियासतों में हिंदुओं को कोई पद नहीं मिलता। संभव है, भविष्य में कोई हमारी भी ऐसी ही समालोचना करे, जैसी मैं अपने पूर्वजों की कर रहा हूँ। परंतु आनेवाली पीढ़ियाँ इतना तो मानेंगी कि हम मूर्खों की भाँति लकीर के फ़क़ीर नहीं थे। हमने परिस्थिति के अनुसार जो कुछ उचित समझा, वही किया।

हिंदू-जाति के लिये संगठन एक आशीर्वाद है

लाला रामप्रसादजी आर्य-समाज के पुराने सेवक हैं। आपने अपने लेखों और व्याख्यानों से समाज की जो सेवा की है, और जैसा त्याग किया है, उनके थोड़े ही उदाहरण मिलते हैं। राजनीतिक जागृति के समय भी आप पीछे नहीं रहे। 'वंदे मातरम्' पत्र का संपादन करते हुए आप डेढ़ बरस का कारावास भी भोग आए हैं। जिस समय लाला लाजपतरायजी स्विटज़रलैंड गए थे, तो अछूतोद्धार-कमेटी का काम लाला रामप्रसादजी को सौंप गए थे। उस समय मैंने उन्हें लिखा कि इस समय हिंदू-संगठन के काम की बड़ी आवश्यकता है, और आप-जैसे महानुभावों को इसमें योग देना चाहिए। उन्होंने मुझे उत्तर दिया कि वह काम करने के लिये तो तैयार हैं; परंतु अछूतोद्धार का काम करते हुए उन्हें अनुभव हुआ है कि हिंदुओं में जीवन का सर्वथा अभाव हो गया है। केवल आर्य-समाजियों में ही कुछ जीवन है; वे ही देश की व्यथा का अनुभव करते हैं, और उसके लिये कुछ करने को तैयार भी हैं। मैं इस बात को मानता हूँ; परंतु साथ ही यह भी कह देना चाहता हूँ कि हिंदुओं की इस निर्जीवता का उत्तरदायित्व भी आर्य-समाज पर ही है। आप कहेंगे—"यह कैसे हो सकता है? समाज ने तो सदा ही आपत्ति में हिंदुओं की सेवा की है।" मैं आपकी इस दूसरी बात को भी मानता हूँ। परंतु फिर भी कहूँगा कि मैं जो कुछ कहता हूँ, वह ठीक है। जिस समय स्वामी दयानंद पंजाब में आए, पंजाब के हिंदुओं ने उससे पूर्व ही उनके लिये मैदान तैयार कर रक्खा था। स्वामी दयानंद का उद्देश, जैसा कि उन्होंने स्वयं भी कहा है, कोई

नया संप्रदाय खड़ा करना नहीं था, अपितु हिंदू-जाति को ही एक करना था। हिंदू-जाति को एक करने का साधन उन्होंने वैदिक धर्म के प्रचार को ही समझा। पंजाब में इस काम के लिये लोग पहले से ही इच्छुक थे। वे उनके पीछे हो लिए। उस समय समाज में शायद ही कोई व्यक्ति इसे नया पंथ समझकर प्रविष्ट हुआ होगा। स्वामीजी स्वयं सोच-विचार और विचार-परिवर्तन के पश्चात् इस परिणाम पर पहुँचे थे। जिस समय वह स्वामी विरजानंदजी से दीक्षा लेकर प्रचार के लिये चले थे, स्वयं शिव के पुजारी थे। उस समय उनका विचार सब हिंदुओं को शैव-मत में दीक्षित करने का था। जयपुराधीश रामसिंह उनके शिष्य बन गए थे। वह स्वयं लिखते हैं—"मैंने अपने हाथों से सहस्रों को रुद्राक्ष की माला पहनाई, यहाँ तक कि हाथियों और घोड़ों को भी रुद्राक्ष की मालाएँ पहना दी गईं।" कुछ मास पश्चात् स्वामीजी का विचार बदल गया। राजा रामसिंह आगरे जाने लगे, तो उन्हें भय हुआ कि कहीं आगरे के वैष्णव स्वामी रंगाचार्य से शास्त्रार्थ न हो जाय। उन्होंने स्वामीजी को बुला भेजा। परंतु स्वामीजी ने कहला भेजा—"मेरा मत अब बदल चुका है, मेरा विश्वास शैव मत में नहीं रहा।" राजा साहब उनसे क्रुद्ध हो गए, और उनका संबंध दरबार से टूट गया। इसके पश्चात् स्वामीजी अपने गुरु विरजानंदजी के पास शंका-समाधान करने के लिये मथुरा गए। वहाँ उन्होंने सब संप्रदायों से ऊपर हो जाने का निश्चय कर लिया।

आर्य-समाज कोई संप्रदाय न होकर केवल हिंदुओं की उन्नति के लिये आंदोलन था, इसलिये इस समय के प्रायः सभी उत्साही सज्जन इसमें सम्मिलित हो गए। यदि आर्य-समाज अपने पुराने उद्देश पर स्थिर रहता, तो आज यह कोई न कह सकता कि हिंदू मुर्दा हो गए हैं। हिंदुओं में भिन्नता का रोग बहुत गहरा चला गया है। वे स्वयं ही अलग होकर एक पृथक् संप्रदाय बना लेते हैं। जात बिरादरी की

नींव पर ढले हुए इनके समाज में भिन्नता बहुत गहरा घर कर गई है। आर्य-समाज हिंदुओं के उद्धार के लिये उत्पन्न होकर भी एक पृथक् संस्था बन गई। संभव है, यदि आर्य-समाज के मुक़ाबले में सनातन धर्म-सभाएँ न बनतीं, तो वह हिंदुओं से पृथक् न समझा जाता। आज समाजियों में देशोपकार की लगन प्रबल है। वे चाहते हैं, देश का काम हो और उसका सेहरा समाज के सिर बँधे, जिससे जनता आकर्षित होकर समाज में सम्मिलित हो जाय। आर्य-समाज की संख्या बढ़ाना एक साधन न रहकर स्वयं उद्देश बन गया। जब कभी दुर्भिक्ष पड़ा, भूचाल आया, या अन्य कोई विपत्ति आई, आर्य-समाज ने लोगों से चंदा एकत्र कर उस जगह ख़ूब काम किया। इस काम की आवश्यकता में और नेकनीयती में किसी को संदेह नहीं हो सकता। मैं केवल इतना ही कहना चाहता हूँ कि इसका परिणाम यह हुआ कि सर्वसाधारण का यह विचार हो गया कि यदि किसी को हिंदुओं की चिंता है, तो वह आर्य-समाज को। हिंदुओं के शेष सब अंग निर्जीव हैं। इन सबका कारण काम का आर्य-समाज के नाम पर होना था। यदि ये काम आर्य-समाजी आर्य-समाज के नाम पर न करके हिंदुओं के नाम पर करते, जैसा कि इस समय हिंदू-संगठन के आरंभ होने पर कोहाट में हुआ, हिंदू-जाति मुर्दा न कहलाती, और उसमें जातीयता का भाव जाग्रत् हो जाता। हिंदू-सभा के नाम पर कोहाट-सहायता फ़ंड में रुपया जमा हो जाने से मुझे कोई मतलब नहीं। मैं यह बताना चाहता हूँ कि हिंदू-सभा के नाम पर काम करने से हमने हिंदुओं में वह जागृति उत्पन्न कर दी है, जिसे हमने पहले स्वयं ही मार दिया था।

अब मैं लाला रामप्रसादजी की बात पर आता हूँ। यह ठीक है कि अछूतोद्धार का काम हिंदुओं के जीवन और मृत्यु का प्रश्न है। लालाजी कहते हैं कि हिंदू सम्मिलित होकर अछूतोद्धार के काम में

भाग नहीं लेते, इसीलिये वे निर्जीव हैं। मैं कहता हूँ हिंदुओं में जो लोग अनुभव कर सकते थे, वे तो पहले ही आर्य-समाज तथा दूसरी संस्थाओं में चले जा चुके हैं। यदि आर्य-समाजी इस काम को करते हैं, तो क्या यह हिंदुओं का काम नहीं है? और, क्या आर्य-समाजी हिंदू नहीं?

शेष अंगों के अभी तक सोए रहने का एक कारण यह भी है कि आर्य-समाज अछूतोद्धार के काम को भी आर्य-समाज के प्रचार का साधन बना रहा है। शेष हिंदू न तो अभी तक कुछ अनुभव ही करते हैं, और न उनमें कुछ करने की इच्छा ही उत्पन्न होती है। वे अभी तक यह नहीं समझे कि जाति की रक्षा करना ही उनका मुख्य धर्म है। वे यह भी नहीं समझते कि हिंदुओं को साथ न मिलाने से उनका अस्तित्व शंका में है। सार यह कि उनमें अभी तक जातीयता का भाव उत्पन्न नहीं हुआ। जिस दिन हिंदुओं में जातीयता का भाव उत्पन्न हो जायगा, उस दिन अछूतोद्धार एक दिन में ही हो जायगा। समाज का कर्तव्य था कि वह हिंदुओं में इस भाव का प्रचार करता; क्योंकि वह सबसे पहले जाग उठा था।

आर्य-समाज में ऐसे सज्जन भी हैं, जिनका यह विचार है कि हिंदू-शुद्धि तथा हिंदू-अछूतोद्धार से उन्हें कोई प्रयोजन नहीं। उनका काम आर्य-समाज का प्रचार करना है। वे लोग हिंदू-धर्म में रहें या आर्य-समाज के बाहर, किसी अन्य धर्म में, उनके लिये समान है। मुझे क्षमा किया जाय, मैं ऐसे विचारों को जाति-द्रोह समझता हूँ। इससे स्पष्ट प्रकट होता है कि आर्य-समाज कोई नया पंथ है, आर्य-समाजियों का उद्देश्य केवल आर्य-समाज का प्रचार करना है। आर्य-समाज का प्रचार हो जायगा, तो देशोन्नति स्वयं ही हो जायगी। मैं आर्य-समाज को अंतिम ध्येय नहीं समझता। मैं आर्य-समाज को हिंदू-जाति की उन्नति के लिये एक संगठन समझता हूँ। आर्य-समाज का प्रचार हो जाय, तो देश की अवस्था सुधर जायगी,

इस बात को मैं वैसा ही समझता हूँ, जैसे जब तक ईरान से तरयाक बूटी लाई जायगी, तब तक साँप का काटा हुआ मर जायगा। हिंदू-जाति की रोग के दूर करने के लिये संगठन की बूटी की व्यवस्था हुई है। हमें और सब कुछ छोड़कर इसी की साधना में लग जाना चाहिए।

मेरे कई पुराने मित्र कहेंगे कि मेरा इस प्रकार समाज की कड़ी समालोचना करना अनुचित है। मैं उनकी सेवा में निवेदन कर देना चाहता हूँ कि मेरी यह समालोचना विशेषतः समाज के ऊपर नहीं है। मुझे तो हिंदुओं के सारे इतिहास में यही न्यूनता दिखाई देती है। क्षत्रियों का काम देश की रक्षा करना था। शनैः-शनैः वर्ण पर जन्म की क़ैद लग गई, और देश के शासन का काम क्षत्रियों को सौंप दिया गया। जिस समय देश पर विदेशी आक्रमण हुए, क्षत्रियों की संख्या बहुत थोड़ी रह गई थी। अन्य सब वर्ण देश की डूबती नौका की चिंता न कर अपने काम-काज में लगे रहे। क्षत्रियों ने भी अभिमानवश किसी को साथ न लिया।

गुरु गोविंदसिंह ने क्षत्रियों की आवश्यकता का अनुभव करके नए क्षत्रियों—अर्थात् खालसा—को जन्म दिया। कुछ समय पश्चात् अपने को विशेष-शक्ति-संपन्न समझ उन्होंने शेष हिंदुओं से पृथक्ता ग्रहण कर ली। मुझे यह आशंका है कि कहीं आर्य-समाज भी इस मिथ्याभिमान के शिकार न हो जाय। इस समय आर्य-समाज के सम्मुख दो ही मार्ग हैं। या तो वह अपने को शेष हिंदुओं से पृथक् करके अपना अलग एक संप्रदाय बना ले, अथवा हिंदू-जाति का आत्मा बनकर उनमें मिलकर एक हो जाय। दूसरी अवस्था में समाज को अपना हृदय उदार बनाना पड़ेगा, हिंदुओं को जगाने के लिये हिंदू बनकर मैदान में आना होगा, और परिस्थिति तथा अवस्था को देखते हुए इसे ही अपना मुख्य धर्म मान लेना होगा।

कांग्रेस और हिंदू-संगठन

मेरी समालोचना से किसी के हृदय में कोई संदेह न हो जाय, इसलिये मैं यह पहले ही कह देना चाहता हूँ कि स्वराज्य को मैं मुख्य और सबसे ऊँचा आदर्श समझता हूँ। इस आदर्श की प्राप्ति के लिये मैं सब कुछ बलिदान कर देना अपना कर्तव्य समझता हूँ। यही दूसरे प्रत्येक भारतवासी का भी कर्तव्य समझता हूँ। परंतु कांग्रेस स्वराज्य नहीं है। कांग्रेस एक संगठन है, जिसे हम स्वराज्य की प्राप्ति का मुख्य साधन समझते हैं। आजकल सर्वसाधारण दोनों में कोई भेद नहीं समझते।

इस विश्वास से लाभ उठाकर कांग्रेस के कार्य-कर्ता समय-समय पर दूसरे आंदोलनों का विरोध करते रहे हैं। यदि कांग्रेस और स्वराज्य एक वस्तु होते, और स्वराज्य-प्राप्ति का साधन केवल कांग्रेस के जलसे ही होते, तो निस्संदेह कांग्रेस के अतिरिक्त किसी दूसरे आंदोलन की कोई आवश्यकता न होती। परंतु स्वराज्य-प्राप्ति का प्रश्न बड़ा टेढ़ा है। कांग्रेस को अपने उद्देश की पूर्ति के लिये कोई नया मार्ग ग्रहण करना पड़ेगा। कांग्रेस का मार्ग कभी सीधा होता रहा है और कभी उलटा। जब कांग्रेस सीधे मार्ग पर चली है, स्वराज्य निकट आया है, और जब उलटे मार्ग पर चली है, तब वह दूर चला गया है। इन कारणों से मैं कांग्रेस और उसके काम की समालोचना करना बुरा नहीं समझता और इसी विचार से हिंदू-संगठन को कांग्रेस के मुक़ाबले में रख अपने विचार प्रकट करना चाहता हूँ।

इन दोनों आंदोलनों के आरंभ को देखने से स्पष्ट हो जाता है कि

कांग्रेस का आरंभ करनेवाले वे लोग थे, जो इस देश में अँगरेज़ी शासन को ही अधिक दिनों तक स्थिर रखना चाहते थे। इसके विपरीत हिंदू-संगठन किसी ऐसे अभिप्राय से चलाया गया आंदोलन नहीं है। यह देश की परिस्थिति के अनुसार जाति के हृदय से निकली हुई पुकार है। हिंदू-संगठन के विरुद्ध कुछ कहना हिंदू-जाति की पुकार को कुचलना और उसका विरोध करना है। सन् १८५७ में देश में एक विप्लव हुआ, जिसे हम इस देश के निवासियों की स्वतंत्रता प्राप्त करने की अंतिम चेष्टा कह सकते हैं। इसके पश्चात् सन् १८७१ में पंजाब में कूके सिक्खों ने सरकार के विरुद्ध सिर उठाया, और पंजाब में एक गुप्त षड्यंत्र का भेद खुला। इसके थोड़े समय पश्चात् ही पंजाब में आर्य-समाज प्रकट हुआ। इस कारण से आर्य-समाज पर गवर्नमेंट की संदेह की दृष्टि थी। इसी समय युक्त-प्रांत में स्थान-स्थान पर गोरक्षिणी सभाएँ स्थापित हो गईं। सरकार इन्हें भी शंका के योग्य समझती थी। इसी समय महाराष्ट्र में भी कुछ लोगों ने सरकार के विरुद्ध गुप्त अभिसंधि की। इन सब कारणों से सरकारी अफ़सरों के मन में संदेह हो जाना स्वाभाविक ही था। असुविधा यह थी कि अँगरेज़ अफ़सरों की, जो देश की प्रजा में आटे में नमक के बराबर थे, यह समझ में न आ सकता था कि प्रजा के भिन्न-भिन्न समाजों में कैसे भाव फैल रहे हैं। प्रत्येक जाति और प्रत्येक समय में कुछ-न-कुछ ऐसे मनुष्य पाए जाते हैं, जो देश के सम्मान और हित तथा मनुष्य-समाज की स्वतंत्रता और उन्नति के लिये अपने वैयक्तिक लाभ का तो कहना ही क्या, अपने प्राण तक न्योछावर करने को तैयार हो जाते हैं। ये ही लोग बलिदान का भाव उत्पन्न करनेवाले होते हैं। ऐसे लोगों के कारण सर्वसाधारण में जो भाव फैल जाते हैं, उनका जानना और जानकर उनका उपाय करना ही सरकारी अफ़सरों की चिंता का मुख्य कारण था।

इस समय तक भारतवासी क़ानूनी आंदोलन के ढंग से परिचित न थे। उस समय उन्हें इसका परिचय मिलने से स्वाभाविक था कि वे इस ओर प्रवृत्त हो जाते, और उनके हृदय में छिपे हुए भाव प्रकट हो जाते। उस समय के वायसराय लार्ड डफ़रिन ने इस काम के लिये मिस्टर ह्यूम को बुलाया। मिस्टर ह्यूम विप्लव के समय इटावे के कलक्टर थे, और इन्हें अपनी प्राण-रक्षा के लिये एक मुल्ला का वेप बनाकर भागना पड़ा था। वायसराय महोदय ने मिस्टर ह्यूम को कांग्रेस स्थापित करने की अनुमति दी। मिस्टर ह्यूम ने बंगाल और बंबई के चुने हुए आदमियों को लेकर कांग्रेस की स्थापना कर दी। पहले दो-तीन वर्ष तक कांग्रेस को गवर्नमेंट की ओर से शाबाशी मिलती रही। कुछ बरसों में कांग्रेस ने अधिक साहस दिखाना आरंभ किया, इससे गवर्नमेंट ने अपना ढंग बदल दिया। गवर्नमेंट के नौकरों को कांग्रेस में भाग लेने से मनाही कर दी गई। यद्यपि गवर्नमेंट के ढंग के बदल देने से यह शंका होती है कि गवर्नमेंट कांग्रेस के विरुद्ध हो गई थी, परंतु इस कूट-नीति में एक रहस्य छिपा हुआ था। वह यह कि गवर्नमेंट के कांग्रेस से विरुद्ध होने से ही कांग्रेस उन देश-प्रेमियों को आकर्षित कर सकती थी, जिनके हृदय में देश की लगन थी, और जिनके भावों को जानना ही गवर्नमेंट का उद्देश्य था।

प्रायः बीस बरस तक कांग्रेस इसी तरह काम करती रही। सन् १६०५ से कांग्रेस में कुछ परिवर्तन होने लगा। इस समय से देशभक्त लोगों ने कांग्रेस को हथियाने के प्रयत्न आरंभ कर दिए थे। इस समय कांग्रेस में दो दल गरम-दल तथा नरम-दल बन गए। प्रायः तीन वर्ष तक कांग्रेस गरम-दल अर्थात् देश-भक्त लोगों के हाथों में रही। सन् १६०८ में गवर्नमेंट की सहायता से देश-भक्त दल को कुचल दिया गया, और कांग्रेस फिर अपने पुराने ढंग पर चलने लगी। इसके दस बरस बाद फिर देश-भक्त दल ने कांग्रेस में प्रबलता पाने का प्रयत्न आरंभ

किया और उसका परिणाम यह हुआ कि लखनऊ में कांग्रेस का काया-पलट हो गया। अभिप्राय यह कि कांग्रेस का जन्म कुछ ऐसा नहीं है, जिस पर हम गौरव कर सकें, और न कांग्रेस का पिछला इतिहास ही ऐसा है, जिससे राष्ट्रीयता के भाव के उत्पन्न होने की आशा की जा सके। विरुद्ध इसके स्वयं कांग्रेस को ही सीधे मार्ग पर लाने के लिये देश-भक्तों को अनेक कष्ट सहने तथा बलिदान करने पड़े हैं। कांग्रेस का सुधार करना भी देश-भक्तों के मार्ग में एक महत्त्व-पूर्ण काम था।

दूसरी ओर हिंदू-संगठन के आंदोलन को देखिए। जो लोग हिंदू-संगठन को हिंदू-मुसलिम एकता में बाधक तथा स्वराज्य के मार्ग में रुकावट समझते हैं, वे हिंदू-जाति के मनोभाव को समझने में असमर्थ हैं, और इस जाति की दशा को आँखों से ओझल रखना चाहते हैं। हिंदू-जाति कुछ शताब्दियों से उत्पन्न हुई एक जाति नहीं है। इसका अतीत इतिहास केवल उज्ज्वल ही नहीं, परंतु इतना प्राचीन है कि संसार की शायद ही किसी दूसरी जाति का इतिहास वहाँ तक पहुँच सकेगा। अपने पुराने इतिहास में हिंदू सदा से अपनी वीरता और विनम्र स्वभाव के लिये प्रसिद्ध चले आए हैं। हिंदू-सभ्यता में विचार-स्वतंत्रता इस सीमा तक पाई जाती है कि इसका उदाहरण संसार में और कहीं नहीं मिलता। हिंदुओं में ऐसे सैकड़ों संप्रदाय हैं, जिनके विचारों और विश्वासों में आकाश-पाताल का अंतर है। इनका आपस में झगड़ा होना तो दूर रहा, कभी परस्पर मनोमालिन्य भी नहीं हुआ। हिंदू-धर्म की आत्मा को भगवान् कृष्ण ने कितने स्पष्ट शब्दों में व्यक्त कर दिया है। वह कहते हैं—"जो जिस मार्ग से चलकर मुझे मिलना चाहता है, मैं उसे उसी मार्ग पर आगे से चलकर मिलता हूँ; क्योंकि अंत में सब मार्ग मेरी ही ओर आते हैं।"

हिंदू-सभ्यता अत्यंत प्राचीन है, वह केवल इतना ही नहीं कहती कि सभी मार्गों पर तुम साहस और वीरतापूर्वक चले जाओ; परंतु

इससे भी ऊँचे एक सत्य का उपदेश करती है, जिस विचार तक पहुँचना किसी दूसरी सभ्यता के मस्तिष्क के लिये असंभव है। वह यह कि सभी मार्ग ठीक हैं, और अंत में ईश्वर तक उसी तरह पहुँच जाते हैं, जिस तरह सारे नदी-नाले अंत में समुद्र में जा पहुँचते हैं। हिंदू-जीवन का संसार में यही सबसे बड़ा उद्देश्य है, और हिंदू जीवित रहकर संसार में इस विचार को कार्य रूप में परिणत कर देना चाहते हैं।

इस उदारता और वीरता का यह परिणाम हुआ कि हिंदुओं ने कभी किसी शक्ति से भय नहीं किया और न किसी से घृणा की। इसलिये उनमें दूसरों का मुक़ाबला करने के लिये सामाजिक संगठन हढ़ नहीं हुआ। हाँ, आप कहेंगे—"क्या दूसरों को म्लेच्छ कहने में और छुआछूत की प्रथा में घृणा का भाव नहीं झलकता?"

मैं मानता हूँ कि इसमें निस्संदेह ऐसा भाव है; परंतु यह भाव कैसे उत्पन्न हुआ, यह जानने के लिये हमें मुसलमान ऐतिहासिक अलबूनी की बात सुननी होगी। अलबूनी भारत में महमूद ग़ज़नवी के साथ मुसलमानों के आक्रमणों के आरंभ में ही आया था। वह लिखता है—"इस घृणा का कारण महमूद ग़ज़नवी की लूट-मार तथा क्रूरता थी। हिंदू उन आक्रमणों के कारण और भेद को समझ ही न सकते थे। इस देश में युद्ध होते अवश्य थे; परंतु धर्म के निर्धारित नियमों के अनुसार।" जो लोग इन आक्रमण करनेवाले मुसलमानों के साथ मिल गए, हिंदुओं ने उनसे कोई संबंध न रक्खा। यह छुआछूत एक प्रकार का पूर्ण असहयोग था। अपनी रक्षा के लिये हिंदुओं का ऐसा करना आवश्यक भी था। इसी के सहारे उन्होंने अपनी जाति की रक्षा इसलाम की उस शक्ति से की, जो अनेक सभ्यताओं को निगलकर इस देश में पहुँची थी।

उस समय के हिंदुओं में देश-भक्ति का भाव भरपूर था। मुसल-

मान स्वभावतः ही उनके शत्रु थे। वही प्रभाव अभी तक थोड़ा-बहुत हमें दीखता है। मुसलमानों के हृदयों में हिंदुओं की अपेक्षा इस देश के लिये कम प्रेम है।

महात्मा गांधी ने वास्तव में कांग्रेस को ही एक राष्ट्रीय संस्था बना दिया है। जो लोग शराब, कचेहरियों, विदेशी कपड़े और विदेशी शिक्षा की हानियों को समझ सकते थे, वे सब उनके साथ हो लिए। मुसलमानों के लिये असहयोग का कार्य-क्रम पर्याप्त न था, इसलिये महात्माजी ने कांग्रेस के साथ ख़िलाफ़त को भी मिलाकर उन्हें अपने साथ कर लिया। यह कहना कठिन है, यदि ख़िलाफ़त का प्रश्न न होता, तो मुसलमान महात्माजी के साथ मिलते या न मिलते। मुसलमानों की इस जागृति का प्रभाव यद्यपि मेसोपोटामिया, टर्की और मिसर की शासन-व्यवस्था पर बहुत गहरा पड़ा, और इन देशों की अँगरेज़ों की अधीनता में चले जाने से रक्षा हो गई, परंतु इसका प्रभाव कांग्रेस पर बहुत बुरा पड़ा। यह निश्चित है कि हिंदोस्तान के मुसलमानों की सहानुभूति भारत की अपेक्षा बाहर के मुसलिम देशों से अधिक रहती है।

मैं इसे कांग्रेस की बड़ी भारी निर्बलता समझता हूँ कि कांग्रेस के अधिवेशन के साथ-साथ ख़िलाफ़त का अधिवेशन हो और उसका प्रभाव कांग्रेस के प्रस्तावों पर पड़े। इससे न केवल मुसलमानों का एक पृथक् संगठन दृढ़ होता है, प्रत्युत वे भारत की राष्ट्रीयता पर अनुचित दबाव डालने की चेष्टा करते हैं। मुसलमानों का यह ढंग कांग्रेस के उद्देश्य की प्रगति में बाधक है। शोक है कि कांग्रेस अपने अनुभव से लाभ न उठाकर अब भी इन श्रृंखलाओं से मुक्त नहीं होना चाहती। जब तक कांग्रेस अपने को मुसलमानों के पृथक् संगठन से, चाहे वह मुसलिम लीग हो या ख़िलाफ़त, अपने को स्वतंत्र नहीं कर लेती, मुसलमानों में राष्ट्रीयता का भाव उत्पन्न न होगा। न

वे देश के भक्त बनकर कांग्रेस के साथ काम करने के लिये तैयार हों, न उनमें हिंदुओं के साथ एकता करने के लिये कोई दल उत्प[न्न] होगा। आज ख़िलाफ़त को बंद कर दो, फिर देखो, कितने मुसलमा[न] कांग्रेस में शामिल होते हैं। उनके नाम लिख लीजिए। यही उस द[ल] के आदमी होंगे, जो एकता और स्वराज्य के इच्छुक हैं। कांग्रेस [की] कमज़ोरी को दूर करने का यही उपाय है।

हिंदू-मुसलिम अनैक्य की जड़ भी इसी निर्बलता में है। हिं[दू] कांग्रेस के पीछे सच्चे हृदय से लगे हुए हैं। कांग्रेस वास्तव में हिंदु[ओं] और मुसलमानों की सम्मिलित संस्था है, जैसा कि उसके संचालक [भी] कहते हैं। मुसलमान कांग्रेस के साथ केवल मौखिक सहानुभूति [ही] दिखाकर, अपने हृदय में अपने मज़हब का ध्यान रख उसी के हि[त] साधन में लगे रहे। कांग्रेस के साथ-साथ मुसलमानों [का] संगठन भी दृढ़ होता गया। जब मुसलमानों को टर्की का निर्[बल] होते दीख पड़ा, और यह मालूम हुआ कि उन्हें कांग्रेस [की] अपेक्षा सरकार से मिलने में अधिक लाभ है, तो उन्होंने तुरं[त] काफ़िर की पदवी अँगरेज़ों के सिर से हटा हिंदोस्तानियों के सि[र] पर रख दी, और स्थान-स्थान पर झगड़े-फ़साद के लिये तैयार हो गए। पिछले दो-तीन वर्षों की घटनाओं ने इस बात का पर्याप्त प्रमाण [दे] दिया है कि हिंदुओं के साथ उनकी एकता केवल दिखाने की थी।

मालाबार से लेकर देहली तक और काश्मीर से लेकर गुलब[र्गा] तक ये घटनाएँ इतनी ताज़ी हैं कि इनका यहाँ लिखना अनावश्य[क] जान पड़ता है।

महात्मा गांधी का आंदोलन हिंदुओं के मन में बहुत गहरा [बैठ] गया है। उनके हृदयों में स्वराज्य के लिये प्रबल इच्छा उत्पन्न हो गई है, और उन्हें यह भी निश्चय दिला दिया गया है कि हिंदू-मुसलि[म] एकता के अभाव में स्वराज्य की प्राप्ति असंभव है। यहाँ तक तो बा[त]

सीधी है, परंतु इससे आगे एक बड़ी रुकावट आ जाती है। एकता के लिये हिंदुओं और मुसलमानों के हृदयों में समान इच्छा होनी आवश्यक है। हिंदुओं के दिल में यह बात भी बैठ गई है कि सर्व-साधारण मुसलमान और उनके लीडर इस एकता के लिये इच्छुक नहीं हैं। सरकार का हित भी इसी में है कि यह एकता न हो। सरकार मुसलमानों को धमकी देती है, और उससे उत्साहित होकर मुसलमान हिंदुओं से भिड़ने के लिये तैयार हो जाते हैं।

मुसलमानों में गुंडों की संख्या भी कम नहीं है। वे सदा ही ऐसे अवसर की प्रतीक्षा में रहते हैं। उनके समाचार-पत्र और वकील भी उन्हें उत्साहित करने के लिये तैयार रहते हैं। ऐसी अवस्था में हिंदुओं के लिये कौन-सा उपाय है? कांग्रेस के कुछ नेता हमसे कहते हैं कि हिंदुओं को मुसलमानों की माँगों के आगे झुककर स्वराज्य के लिये बलिदान करना चाहिए; परंतु हिंदुओं की अपनी आत्मा उनसे यह कहती है कि वर्तमान घटनाओं का परिणाम तथा अतीत इतिहास उन्हें यही बताते हैं कि झुक जाने में उनका हित नहीं है। कोई एक हिंदू नहीं, परंतु जाति का प्रत्येक व्यक्ति यह समझने लग गया है कि हिंदू-मुसलिम एकता का यही एक उपाय हो सकता है कि हिंदू सबल और सशक्त हों।

हिंदू-संगठन का प्रयोजन मुसलमानों का विरोध नहीं, बल्कि इसका उद्देश्य उनसे एकता का दृढ़ संबंध स्थापित करना है। इसलिये हिंदू-संगठन स्वराज्य की पहली सीढ़ी और कांग्रेस का एक आवश्यक अंग है। जो लोग हिंदू-संगठन का विरोध कांग्रेस के हित की दृष्टि से करते हैं, वे न तो हिंदू-संगठन के अभिप्राय को समझते हैं, न कांग्रेस के उद्देश्य को।

यदि हिंदू-संगठन से एकता न भी हो, तो यह स्वतः एक लाभ-दायक आंदोलन है। इस देश के राजनीतिक इतिहास का अनुशीलन

करने से जान पड़ेगा कि इस देश के निवासी सभी सद्गुणों में अप
आक्रमणकारियों से कहीं बढ़े-चढ़े थे; परंतु उनसे पराजित होते रहे
इसका एक-मात्र कारण यह था कि उनमें संगठन न था। इन
विरोधियों में कोई और गुण चाहे न रहा हो, परंतु संगठन पर्या
मात्रा में था। हिंदुओं की इस एक न्यूनता ने इन्हें एक असफ
जाति बनाकर पराधीनता में फसा इनके सब गुणों पर पा
फेर दिया। संगठन ही हिंदुओं की बीमारी और कमज़ोरी का उपा
है। संगठित होकर हिंदू अकेले भी स्वराज्य के आंदोलन को सफ
बना सकते हैं।

सांप्रदायिक दृष्टिकोण से देखने पर मालूम होता है कि इ
देश में प्रचलित अनेक संप्रदायों के प्रवर्तकों ने इस जाति को अने
भागों में विभक्त कर दिया है। वही सांप्रदायिक भाव जो इसला
में संगठन उत्पन्न कर सब देश के मुसलमानों को एक सूत्र में बाँध
का कारण हुआ, हमारे लिये फूट का कारण बना। गुरु गोविंदसिं
ने जाति की फूट को दूर करने के लिये नए क्षत्रियों अर्था
खालसा को जन्म दिया; क्योंकि इसका आधार सांप्रदायिक था
इसलिये सिख लोग भी अपने को हिंदुओं से पृथक्
हिंदू-जातीयता से पृथक् हो रहे हैं। स्वामी दयानंद ने आर्य-समा
इसलिये स्थापित किया कि वह हिंदुओं की पृथक्ता को दूर कर एक
को उत्पन्न करे; परंतु वे भी सांप्रदायिक रंग पकड़कर हिंदुओं से अल
हो रहे हैं। सनातनधर्म-सभाओं ने तो आर्य-समाज के विरोध
अतिरिक्त और कोई काम अपने हाथ में अभी तक नहीं लिया है
हिंदू-संगठन के आंदोलन में कोई नवीन बात नहीं है, इसलिये वि
होने की कोई शंका नहीं हो सकती। यह पहला आंदोलन है,
हिंदुओं को एक करने के अभिप्राय से चला है। इसलिये यह हिंद
के और इस देश के लिये अत्यंत आशाजनक है।

जहाँ इसलाम और अरबी सभ्यता मज़हबी उत्तेजना और असहिष्णुता का पाठ पढ़ाती है, वहाँ हिंदू-सभ्यता बालकपन से ही विनय, सहनशीलता और भ्रातृभाव की शिक्षा देती है। हिंदू माता बचपन से ही बालक को उपदेश देती है—"यह चींटी है। इसे दुःख मत दो। इस पर तुम्हारा पैर न पड़ जाय। यह चिड़िया है, इसे नाज खिलाओ। देखो इस पर कंकड़ न फेंकना। इसे भी उसी प्रकार कष्ट होता है, जैसे तुम्हें मारने से होता है।" मुसलमान बच्चे का हृदय मुर्ग़ी को हलाल करके बड़ा प्रसन्न होता है। वह चाक़ू उठाता और मुर्ग़ी का गला काट देता है, इससे उसका मनोविनोद होता है। इसका क्या परिणाम होता है ? हिंदू-बालक के स्वभाव से साहस और वीरता का अंश उड़ जाता है। वह मुसलमान लड़के से बातचीत करता हुआ अपने संप्रदाय की निंदा और उसके मज़हब की प्रशंसा करके उसे प्रसन्न करना चाहता है। सांसारिक व्यवहार में भी वह अपनी निंदा तथा दूसरे की प्रशंसा कर उसे प्रसन्न करने का यत्न करता है। दिल्ली के एकता-सम्मेलन (Unity Conference) में हमारे कई नेताओं ने अपना हिंदू-धर्म से संबंध ही अस्वीकार किया, और वे गोहत्या के प्रश्न पर मुसकिराते थे। कहते थे—"ये हिंदू कैसे मूर्ख हैं, जो गोहत्या को राष्ट्रीय प्रश्न बना रहे हैं। इन्हें होटलों में गोमांस खाना पड़ता है; ये ऐसे मूर्ख हैं कि एक गाय के मारे जाने पर बिगड़ खड़े होते हैं।" हिंदू ही ऐसे पतित हैं, जो ऐसे आदमियों को भी अपना नेता मानने के लिये तैयार हो जाते हैं। माना, उन्हें धर्म पर श्रद्धा नहीं; माना, वे गो-भक्त नहीं; परंतु इस समय 'गोहत्या' का प्रश्न एक सांप्रदायिक प्रश्न नहीं रहा। जिस समय एक सिख झटका करता या एक हिंदू सुअर को मारता है, तो मुसलमानों को क्यों बुरा लगता है ? उनको पूरा अधिकार है, यदि कोई मुसलमान ऐसा करे, तो उसे रोकें।

परंतु किसी हिंदू या सिख को रोकने का उन्हें क्या अधिकार है। इसका वास्तविक कारण यह है कि मुसलमानों का आतंक हम पर छा गया है। जिस स्थान पर हिंदू उनका आतंक नहीं मानते, वहाँ मुसलमान इकट्ठे होकर उनके बाल-बच्चों और स्त्रियों पर आक्रमण करके, उनके घरों को लूटकर उन पर अनुचित आतंक जमाने की चेष्टा करते हैं। हम गोहत्या रोक नहीं सकते। न मुसलमान हमारे रोके रुकेंगे, और न अँगरेज़; परंतु गऊ को सजाकर, उसका जुलूस निकालकर मारने में एक विशेष रहस्य है। यह एक सांप्रदायिक प्रश्न नहीं है। मुसलमानों का अभिप्राय ऐसा करने से यह है कि या तो हिंदुओं के जातीय भाव का समूलोच्छेदन कर दिया जाय, या उनके धन-दौलत और स्त्री-बच्चों पर हाथ साफ़ करके उन्हें निर्बल बना दिया जाय। यह एक राजनीतिक प्रश्न है, जिसे हमारे कई राजनीतिक नेता समझने में असमर्थ हैं।

स्वराज्य हमारा उद्देश है, और उसके लिये हिंदू-मुसलिम एकता आवश्यक है, इसमें किसी को संदेह नहीं हो सकता। तीसरे क़दम पर आकर नीति में भेद पड़ जाता है। कांग्रेस हिंदू-मुसलिम एकता का एक मार्ग बनाती है, और हिंदू-संगठन दूसरा। हिंदू-संगठन स्वराज्य का विरोधी नहीं है, और हिंदू-मुसलिम एकता के लिये वह दूसरा मार्ग उपयुक्त समझता है। संगठन का मतलब है—एक लड़ी में पिरोए जाना। जब तक हिंदू ऐसा नहीं करते, न तो वे आपस में एक हो सकते हैं, न मुसलमानों से उनकी एकता हो सकती है और न वे अपनी रक्षा के लिये नाशक शक्ति का विरोध कर सकेंगे। जिस समय तक हिंदू संगठित न होंगे, वे किसी काम के योग्य न बन सकेंगे। मुसलमान पहले ही संगठित थे, उनकी रही-सही निर्बलता को ख़िलाफ़त के आंदोलन ने दूर कर दिया है। कांग्रेस सदा से ही मुसलमानों का पक्षपात करके उन्हें अपने साथ मिलाने की चेष्टा करती रही है। यह भी एक प्रकार रहस्य है कि आरंभ में कांग्रेस

जहाँ-तहाँ से दस-पाँच मुसलमानों को रिश्वत देकर साथ मिलाए रखने की चेष्टा करती थी। मुसलमान आरंभ में कांग्रेस के साथ थे, परंतु जब सरकार ने देखा कि कांग्रेस उसके हाथों से निकली जा रही है, तो उन्होंने मुसलमानों को बहका दिया कि उनका हित सरकार के साथ रहने में ही है। सर सैयद अहमद ने यह उपदेश देकर मुसलमानों को कांग्रेस से पृथक् कर दिया, परंतु हिंदू-नेता उन्हें सदा ही साथ मिलाए रखने के प्रयत्न में लगे रहे, और इसीलिये महात्मा गांधी ने भी ख़िलाफ़त को कांग्रेस के साथ मिलाया। ख़िलाफ़त का स्वराज्य से कोई संबंध न था, केवल स्वराज्य-प्राप्ति में मुसलमानों को साथ मिलाने के लिये इस काम को कांग्रेस ने हाथ में लिया। ख़िलाफ़त का यह उद्देश्य था कि यदि अँगरेज़ और उनके साथी टर्की को दबा लेंगे, तो बग़दाद का भी बहुत-सा प्रदेश उनके अधीन हो जायगा, और अरब तथा ईरान भी उनके पंजे के नीचे आ जायँगे। इससे अँगरेज़ों की शक्ति एशिया में बहुत अधिक बढ़ जायगी, और भारत के लिये स्वराज्य प्राप्त करना और भी कठिन हो जायगा। इस युक्ति में सत्य अवश्य है; परंतु इसका प्रभाव हमारी अवस्था पर नहीं पड़ता। कारण, न तो कांग्रेस के लिये बल से स्वराज्य प्राप्त करना संभव है, और न उसकी नीति ही ऐसी है। महात्मा गांधी सत्याग्रह की नीति से केवल चरित्र-बल द्वारा ही स्वराज्य प्राप्त करना चाहते थे। इस अवस्था में बग़दाद आदि के अँगरेज़ों के हाथों में चले जाने से हमें कोई हानि न थी। इससे यह स्पष्ट प्रमाणित हो गया कि ख़िलाफ़त-आंदोलन की सहायता करना केवल मुसलमानों को साथ मिलाकर रखने का प्रयत्न था।

इस सबका परिणाम यह हुआ कि मुसलमानों की सहानुभूति भारत से बाहर चली गई, और उनमें मज़हबी असहिष्णुता का उद्वेग अधिक बढ़ गया। कांग्रेस के स्वयंसेवक स्वराज्य और देश के लिये

जेलख़ाने गए; परंतु ख़िलाफ़त के स्वयंसेवक केवल मज़हबी जोश के कारण ख़िलाफ़त के लिये जेलख़ाने गए। ख़िलाफ़त और जमैयतुल उलमा के अधिवेशन कांग्रेस के साथ होते रहने से कांग्रेस पर उनका अनुचित प्रभाव पड़ता रहा है। मुसलमान ख़िलाफ़त के उद्देश से जाते और कांग्रेस के अधिवेशन में सम्मिलित हो अपना काम भी निकाल लेते। कांग्रेस की सहायता से जहाँ दूसरे इसलामी देशों के सम्मान और अधिकार की रक्षा हुई, वहाँ इस देश में भी मुसलमानों का संगठन सुदृढ़ हो गया, जो कि पीछे हिंदू काफ़िरों के विरुद्ध प्रयोग में आने लगा। मुसलमानों का अपना संगठन कांग्रेस के बाहर होने से उनके अपने सांप्रदायिक नेता भी बन गए। जो नेता ख़िलाफ़त के प्रधान इत्यादि चुने जाते थे, उनका प्रभुत्व भी कांग्रेस को मानना पड़ता था, और इनकी इच्छा के विरुद्ध चलना कांग्रेस के लिये असंभव हो गया। इसके साथ ही कांग्रेस में ऐसे आत्मसम्मान-हीन हिंदू-नेता उत्पन्न हो गए, जो इन्हें प्रसन्न बनाए रखना ही अपना उद्देश समझने लगे।

कोहाट की भयंकर घटना हुई। उसमें हिंदुओं को सरे-बाज़ार लूटा गया, उन पर अत्याचार किए गए। इस पर भी मुसलमान समाचार-पत्रों और नेताओं का कहना है कि मुसलमानों पर अत्याचार हुआ। धन्य है! चतुरता हो तो ऐसी हो, जिसे समझना भी कठिन हो जाय। इस घटना से हमारे मुख्य नेता महात्मा गांधीजी के हृदय को बड़ा आघात पहुँचा। उन्हें निश्चय हो गया कि उनकी नीति ने हिंदुओं को हानि पहुँचाई है। वह प्रायश्चित्त करके प्राण देने के लिये तैयार हो गए। उन्होंने कहा—यदि उनके प्राण देने से भी कोहाटी भाइयों को आश्वासन मिल जाय, तो वह उसके लिये भी तैयार हैं। महात्माजी की मृत्यु से कोहाटी भाइयों को अत्यंत शोक ही होगा; उन्हें तो आश्वासन तभी होगा, जब महात्माजी संपूर्ण हिंदू-जाति

को सबल और सगठित करने का प्रयत्न करेंगे, जिससे कोहाट की-जैसी घटनाएँ अन्य स्थानों पर न हो सकें। इसके लिये हिंदुओं में शारीरिक तथा मानसिक बल उत्पन्न होने की आवश्यकता है। महात्माजी ने ख़िलाफ़त का काम करके मुसलमानों में संगठन उत्पन्न कर दिया है। वह संगठन द्वारा हिंदुओं को भी बलवान् बनाकर उनमें जीवन डाल सकते हैं। जब तक हम संगठित न होंगे, मुसलमानों तथा अँगरेज़ों का चरित्र-बल द्वारा मुक़ाबला न कर सकेंगे, और न स्वराज्य प्राप्त कर सकेंगे। स्वराज्य-प्राप्ति का सर्वोत्तम साधन यही है कि महात्माजी सब नेताओं को साथ लेकर हिंदुओं की निर्बलता का उपाय करें। यदि वह ऐसा नहीं करना चाहते, तो उन्हें कम-से-कम कांग्रेस पर से मुसलमानों का आतंक उठा देना चाहिए। ख़िलाफ़त-कानफ़्रेंस चाहे जहाँ कहीं हो, परंतु कांग्रेस के साथ नहीं। इससे स्पष्ट हो जायगा कि वे कौन-से मुसलमान नेता हैं, जिन्हें कांग्रेस से सहानुभूति है, और इसके काम के लिये इतनी दूर जाने को तैयार हैं। यही एक ढंग है, जिससे मुसलमान अपने सांप्रदायिक विचारों को छोड़कर भी कांग्रेस में आने के लिये तैयार होंगे। कांग्रेस को चाहिए कि ख़िलाफ़त और संगठन, दोनों को एक समान महत्त्व दे।

एक प्रश्न और है। क्या कांग्रेस के हिंदू-नेता और कार्य-कर्ता संगठन के कार्य में भाग ले सकते हैं? हमें तो यह प्रश्न ही निरर्थक प्रतीत होता है। जब मुसलमानों के नेता केवल वे ही लोग हो सकते हैं, जो मुसलमानों के अधिकारों के रक्षक तथा पक्के मुसलमान हैं, तो फिर हिंदुओं को संगठन का काम करने में क्या आपत्ति हो सकती है? इस प्रकार के विचार का उठना ही हमारी कायरता का प्रमाण है। हिंदू अभी तक ऐसे विचारों को सहन करते आए हैं। हिंदुओं को चाहिए, उनके जो नेता कांग्रेस में हैं और हिंदू-जाति के हितों की चिंता नहीं करते, उन्हें अपने नेता मानने से इनकार कर दें,

और उनके स्थान में जाति के शुभ-चिंतक नेता चुनकर भेजें। नेता का कर्तव्य जाति को अपने विचारों पर चलाना नहीं है, अपितु उसे जाति के विचारों का प्रतिनिधि होना चाहिए। कांग्रेस के हिंदू-नेताओं को, मुसलमान नेताओं की भाँति, अपनी जाति के हित का ध्यान रखना चाहिए। हिंदू-नेता अपनी जातीयता त्याग मुसलमानों से एकता करने के लिये तैयार हो सकते हैं, परंतु जाति इसके लिये तैयार नहीं है। नेता उसी अवस्था में दृढ़ एकता स्थापित कर सकते हैं, जब वे जाति के सच्चे प्रतिनिधि होंगे।

क्या संगठन एक सांप्रदायिक आंदोलन है?

मैं जब कई सज्जनों के हृदय में कांग्रेस के लिये बहुत उत्साह देखता हूँ, और वे हिंदू-संगठन को एक सांप्रदायिक आंदोलन कहकर इसे अपनी तथा अन्य लोगों की दृष्टि में नीचा दिखाना चाहते हैं, तो मुझे बहुत आश्चर्य होता है, मैं चाहता हूँ, हम एक बार इस प्रश्न पर गंभीरता से विचार कर लें। ज्यों ही हम इस प्रश्न की ओर दृष्टि-पात करते हैं, यह बात हमारे सम्मुख स्पष्ट हो जाती है कि भारत में सामाजिक परिस्थिति उन सब देशों से विचित्र है, जिन्होंने राजनीतिक आंदोलज द्वारा देश में राष्ट्रीयता की स्थापना कर स्वराज्य प्राप्त करने में सफलता प्राप्त की है। हमें संसार के इतिहास में भारतवर्ष की समता अन्य कहीं नहीं मिलेगी। अन्य जातियों पर किन्हीं विदेशी शक्तियों ने प्रबलता प्राप्त कर उन्हें अधीन कर लिया, और अधीन जातियाँ थोड़े या अधिक समय तक अपनी स्वतंत्रता के लिये युद्ध करती रहीं। यह लड़ाई सीधी-सादी थी, इसमें किसी प्रकार का हेर-फेर न था। शत्रु उन पर भाँति-भाँति के अत्याचार कर उन पर अपना अधिकार जमाए रखना चाहते थे, और पराधीन जातियाँ सब प्रकार की क्रूरताओं तथा अत्याचारों को सहन करके उन विदेशी शक्तियों का मुक़ाबला करना अपना कर्तव्य समझती थीं। जिस परिणाम में अत्याचारियों के अत्याचार बढ़ते, उनके बलिदान भी उसी परिमाण में बढ़ते जाते थे। परंतु भारत में परिस्थिति ऐसी नहीं रही। जिस समय भारत मुग़ल-शासन की अधीनता में था, और देश के अनेक भागों में हिंदुओं ने अपनी स्वाधीनता की रक्षा के लिये सिर उठाना आरंभ किया, तो उन्होंने अपने विदेशी मत और सभ्यता

को इस देश में फैलाकर इस देश की पराधीनता की समस्या को अधिक पेचीदा कर दिया। इस देश में हिंदुओं के साथ-ही-साथ एक और ऐसी शक्ति की स्थापना हो गई, जिसने अरबी मत और सभ्यता को अपनाकर हिंदुओं को पराधीन रखना अथवा उनके अस्तित्व को मिटा देना ही अपना कर्तव्य समझ लिया। यद्यपि इसलाम का शासन इस देश के बहुत-से भागों से उठ चुका था, परंतु इतना होने पर भी देश के सब भागों में मुसलमान वर्तमान थे, और उनकी संख्या प्रति दिन बढ़ती जाती थी। अँगरेज़ों के इस देश में आ जाने से उलझन और भी अधिक जटिल हो गई। अब एक जाति पराधीन और दूसरी जाति शासक न होकर दोनों ही अँगरेज़ों के अधीन हो एक दूसरी को मिटा देने का प्रयत्न करने लगीं। इससे जहाँ अँगरेज़ों के लिये इस देश का शासन सुगम होता गया, वहाँ देश में एक राष्ट्र का निर्माण कठिन और असंभव हो गया। इस देश के इतिहास में केवल दो ही ऐसे समय आए हैं, जब हिंदू और मुसलमानों ने मिलकर स्वतंत्रता-प्राप्ति का उपाय किया है। पहली बार मरहठा वीर नाथाजी तथा हैदरअली ने मिलकर देहली और निज़ाम को भी अपने साथ मिलाकर अँगरेज़ों को इस देश से निकाल देने का प्रयत्न किया था। दूसरी बार यह घटना १८५७ के विप्लव के समय हुई। यद्यपि इन दोनों अवसरों पर दोनों जातियों में एकता हो गई थी, परंतु मुझे इस एकता की जड़ में मुसलमानों की शासन करने की इच्छा और आशा दबी दीख पड़ती है। उदाहरण के लिये यदि १८५७ के विप्लव के समय हिंदू बहादुरशाह को शाहनशाह प्रसिद्ध न कर देते, तो मुसलमान उनके साथ न मिलते। मुसलमान सदा इसी शर्त पर हिंदुओं के साथ मिलकर काम करने को तैयार रहते हैं कि वे इस देश में नए सिरे से इसलाम का प्रभुत्व स्थापित करने में उनकी सहायता करें।

वर्तमान समय में भी इस समस्या की उलझन का यही कारण है। मुसलमानों के हृदय में यह विचार जड़ पकड़ चुका है कि वे इस देश को जीत कर कई सौ वर्ष यहाँ शासन कर चुके हैं। सो अब यदि किसी प्रकार अँगरेज़ इस देश से चले जायँ, तो उन्हें फिर हिंदुओं पर वही प्रभुत्व जमाने का प्रयत्न करना चाहिए। और, यदि ऐसा न हो सके, तो मुसलमानों का हित इस देश में अँगरेज़ी शासन के स्थापित करने में ही है; क्योंकि अँगरेज़ मुसलमानों को तरह-तरह के अधिकारों का प्रलोभन देकर हिंदुओं से सदा पृथक् रखते आए हैं। इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि मुसलमानों में केवल वही आंदोलन सफल हो सकता है, जो उनके लिये विशेष अधिकार और सहूलियतें प्राप्त करने की चेष्टा करे। इसके बिना न ख़िलाफ़त और न मुसलिम-लीग ही सफल हो सकती है। मुसलमानों को केवल अपने विशेष अधिकारों से ही मतलब है, उन्हें देश की कोई चिंता नहीं। मैं कांग्रेस पर मुसलमानों के इस अनुचित प्रयत्न के आगे सिर झुकाने का दोषारोपण करता हूँ। कांग्रेस के मुसिलम नेताओं का प्रयत्न भी मुसलमानों की इस प्रवृत्ति के अनुकूल रहा है। मैं यह नहीं कह सकता कि युद्ध के समय अली-भाइयों की नज़रबंदी के लिये सरकार के पास पर्याप्त प्रमाण थे या नहीं, परंतु यह तो प्रकट सत्य है कि युद्ध के आरंभ में मुसलमानों की दृष्टि काबुल की ओर लगी हुई थी। अपनी गिरफ़्तारी से पहले मुझे एक बड़े मुसलमान नेता से मिलने का अवसर मिला। मैंने उनसे पूछा, यदि इस युद्ध में अँगरेज़ पराजित हो जायँ, तो भारत की क्या अवस्था होगी ? संभवतः यहाँ जर्मनी का अधिकार हो जायगा। उन्होंने उत्तर दिया, भारत केवल अमीर की सहायता से ही स्वतंत्र हो सकता है। इस पर मैंने कहा— यदि स्वतंत्रता इस प्रकार ही होती हो, तो हिंदू नेपाल के राजा को बुलाने की चेष्टा करेंगे। उन्होंने उत्तर दिया, मैं नेपाल की

शक्ति के विषय में कुछ नहीं जानता। अफ़ग़ान हों या टर्की, मुसलमानों की दृष्टि मुसलमानों से आगे बढ़ना नहीं पसंद करती। कांग्रेस यदि एकता चाहती है, तो उसे मुसलमानों के हृदय से इस भाव को निकालने का प्रयत्न करना चाहिए, और इसका यह उपाय है कि कांग्रेस ख़िलाफ़त और मुसलिम-लीग को कोई परवा न करे। जो मुसलमान कांग्रेस में सम्मिलित हों, एक हिंदोस्तानी के नाते से आवें उनके सम्मुख मुसलमानों के अधिकारों की चिंता नहीं, बल्कि मनुष्य के अधिकारों की चिंता हो। वे एक हिंदोस्तानी होने का गौरव और अभिमान रखते हों। उनके सम्मुख स्वराज्य का ऊँचा आदर्श हो। इसे ही हम दूसरे शब्दों में यों कह सकते हैं कि प्रत्येक हिंदोस्तानी को विना किसी सांप्रदायिक विचार के वे समग्र अधिकार मिलने चाहिए, जिस प्रकार की अन्य उन्नत देशों की प्रजा को प्राप्त हैं। आप कहेंगे, मुझे मुसलिम-लीग की समालोचना न कर हिंदू-संगठन के पक्ष में युक्तियाँ देनी चाहिए थीं। परंतु अपना अभिप्राय स्पष्ट करने के लिये इन सब बातों का लिखना आवश्यक ही था। अब मैं यह सिद्ध करने की चेष्टा करूँगा कि हिंदू-संगठन एक सांप्रदायिक आंदोलन नहीं है। कोई भी हिंदू ऐसा नहीं, जो संगठन द्वारा हिंदुओं के लिये विशेष अधिकार प्राप्त करने की इच्छा रखता हो। हम चाहते हैं कि इस देश में मुसलमानों को वे सब अधिकार प्राप्त हों, जो हिंदुओं को या किसी दूसरी जाति को प्राप्त हैं। इस विचार से हिंदू-संगठन कांग्रेस के साथ-साथ चल सकता है। हम चाहते हैं कि इस देश में किसी भी जाति या संप्रदाय के साथ विशेष रिआयत नहीं, सब मनुष्यों के अधिकार बराबर हों, और सब में भ्रातृभाव हो, सब परस्पर एक दूसरे के अधिकारों का सम्मान करें, अपने अधिकारों की रक्षा के साथ-ही-साथ वे देश के प्रति भी अपने कर्तव्य का पालन करें।

प्रश्न उठ सकता है यदि हिंदुओं का यही उद्देश है, तो संगठन की क्या आवश्यकता है ? इसका उत्तर यह है कि इस देश की अन्य जातियाँ हिंदुओं को पीछे छोड़कर स्वयं अधिक अधिकार हथियाना चाहती हैं। उनके हृदयों में हिंदुओं के प्रति ईर्षा और संदेह घर कर गया है, उनका विश्वास है कि उनका हित हिंदुओं को निर्बल कर रखने में ही है। उनका यह विचार और प्रयत्न अनुचित है। इसके प्रतिकार का उपाय यही है कि हिंदू बलवान् और संगठित हो जायँ। हिंदू-संगठन तथा अन्य संगठनों में भेद यह है कि अन्य लोग विशेष अधिकार प्राप्त करने के लिये बलवान् होना चाहते हैं, और हिंदू समान अधिकार और समानता के सिद्धांतों की रक्षा के लिये बलवान् होना चाहते हैं। हिंदू-संगठन में सांप्रदायिकता का विचार नहीं है; क्योंकि यह विशेष अधिकार नहीं माँगता। यह केवल समानता स्थापित करने का प्रयत्न करता है। अन्य जातीय तथा सांप्रदायिक आंदोलन दूसरों को पीछे छोड़ अपने लिये अधिकार प्राप्त करने की चेष्टा में हैं; परंतु हिंदू-संगठन देश के राष्ट्रीय हित के लिये प्रयत्न करता है। इसे सांप्रदायिक कहना भूल है।

यदि भारत की अन्य सब जातियाँ अपने-अपने निजी हित में लगी रहें, तो कांग्रेस उन पर भरोसा और विश्वास नहीं कर सकती। ऐसी अवस्था में हिंदू-संगठन ही एक ऐसा आंदोलन है, जो कांग्रेस के साथ काम करके इसे सफल बना सकता है। परंतु कांग्रेस सभी जातियों की साझी संस्था होने के कारण हिंदुओं को सबल बनाने के लिये कुछ नहीं कर सकती। कांग्रेस की वास्तविक उन्नति हिंदुओं के सबल होने पर ही निर्भर है; क्योंकि केवल हिंदू ही आरंभ से कांग्रेस के उद्देश से सहानुभूति रखते आए हैं। सभवतः आरंभ में हिंदू-संगठन से कांग्रेस के काम में थोड़ा-बहुत विघ्न पड़ेगा; क्योंकि हिंदुओं का ध्यान इस ओर आकर्षित हो जायगा, परंतु अंत में कांग्रेस को

इससे लाभ ही होगा। हिंदू सबल होकर कांग्रेस का काम अधि
अच्छी तरह करेंगे। हिंदू आरंभ से कांग्रेस का काम करते आए हैं
उन्होंने इसके लिये सबसे अधिक बलिदान किया है। निस्संदे
मुसलमानों ने क़ुर्बानी की है, परंतु वह ख़िलाफ़त के लिये थी। यदि
ख़िलाफ़त को कांग्रेस से निकाल दिया जाता, तो बहुत कम मुसलमा
कांग्रेस का साथ देते।

यह भी कहा जा सकता है कि हिंदुओं और मुसलमानों के पृथक्
पृथक् काम करने की क्या आवश्यकता है? दोनों की कांग्रेस सार्व
संस्था है, इसी में दोनों को मिलकर काम करना चाहिए। इसके
उत्तर में मैं स्पष्ट कह देना चाहता हूँ कि पिछली घटनाओं को देखते
हुए वर्तमान अवस्था में दोनों का साथ मिलकर काम करना कठि
जान पड़ता है। इसमें बड़ी रुकावट हमारे समाचार-पत्र हैं, जो सद
ही दोनों दलों को भड़काने का प्रयत्न करते रहते हैं।

हिंदुओं का धर्म आर्य-जाति का धार्मिक विश्वास [illegible] सेमे-
टिक मज़हब की [illegible] है। हिंदुओं की सभ्यता आर्य-जाति की
सभ्यता है, और मुसलमानों की सभ्यता अरब से आई है। हिंदुओं
के नाम इस देश के प्राचीन आर्य नामों के ढंग पर हैं, परंतु
मुसलमानों के नाम अरबी हैं। हिंदुओं का रूप और वेष-भूषा आर्य
ढंग पर है, मुसलमानों की आकृति-प्रकृति अरबी ढंग पर है। हिंदुओं
का हृदय इस देश के प्राचीन निवासी आर्यों के कृत्यों से गौरवपूर्ण है
मुसलमान अरब और फ़ारस के इतिहास पर अभिमान करते हैं।

यह ठीक है कि सारे मुसलमान हिंदू नहीं बन सकते, परंतु फिर भी
दोनों जातियों में एकता हो सकती है, और इसका उपाय यह है कि
मुसलमान समझ लें, उनका सांसारिक हित इसी में है कि वे हिंदुओं
से मिलकर रहें। यह ठीक है कि परलोक की चिंता भी आवश्यक वस्तु
है, परंतु संसार में रहने के लिये सांसारिक चिंता पारलौकिक चिंता

से कम आवश्यक नहीं है। पारलौकिक हित के लिये सांसारिक अवस्था का अच्छा होना परमावश्यक है। जिस जाति की सांसारिक अवस्था अच्छी नहीं, वह परलोक क्या सुधारेगी। इसलिये सब सांप्रदायिक विभिन्नताओं के रहते हुए भी हिंदुओं और मुसलमानों को एक होकर रहना होगा।

अंत में मैं इतना और कह देना चाहता हूँ कि यदि दोनों जातियों को मिलाकर एक करना होगा, तो हिंदू तो मेल के लिये तैयार हो जायँगे; क्योंकि उनका मत उदारता और सहिष्णुता की शिक्षा देता है, और वे सब संप्रदायों को समान दृष्टि से देखते हैं। इसमें यदि किसी को आपत्ति हो सकती है, तो केवल मुसलमानों को जिनके मत में मुसलमानों के अतिरिक्त और सबको क़ाफ़िर कहा गया है। मिलाप के लिये दोनों ओर से इच्छा और प्रयत्न होना चाहिए। अकेले हिंदुओं के आगे बढ़ने से कुछ नहीं हो सकता। मुसलमानों की इच्छा के विना ही यदि हिंदू एक होना चाहें, तो इसका मतलब यह है कि हिंदू अपना अस्तित्व मिटाकर एक जाति बना दें। हिंदू-संगठन इसके लिये तैयार नहीं।

क्या हिंदू-संगठन होना संभव है ?

मुझे स्वयं हिंदू-संगठन में तो कोई संदेह नहीं है, प्रत्युत मुझे
अपने देश के सब दुःखों और कष्टों का उपाय इसी में ही दीख पड़ता है।
हमारे देश के नेता चाहे किन्हीं शब्दों से इस विषय में अपने
मंतव्य को प्रकट करें, मुझे तो इसमें संदेह और शंका के लिये कोई
स्थान नहीं दीख पड़ता। मेरे लिये इससे अगला क़दम चिंता और
सोच-विचार का है। प्रश्न उठता है, 'क्या हिंदू-संगठन के लिये कोई
आशा भी है ?' इस प्रश्न का उत्तर मुझे स्पष्ट नहीं दिखाई देता।
इस विषय पर विचार करते समय मेरी आँखों के आगे निराशा का
अंधकार छा जाता है, और एक प्रकार की बेचैनी-सी हो जाती है।
आगा-पीछा कुछ नहीं दीखता। मैं हिंदुओं में संगठन करने और
उनमें जीवन डालने का कोई मार्ग ढूँढना चाहता हूँ; परंतु जिस ओर
देखता हूँ, मुझे दरवाज़ा बंद ही दिखाई देता है। सब ओर कठिनता
ही दीखती है। मैं इस कठिनता को बता सकता हूँ; परंतु इसका कोई
उपाय मुझे नहीं दीखता। मैं सैकड़ों बार कह चुका हूँ कि हिंदू-संग-
ठन इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं कि हिंदू प्रत्येक गाँवों और क़स्बों
में सभाएँ स्थापित करके हिंदू-महासभा के निश्चय के अनुसार आप
को एक माला में पिरो दें। जिस समय माला के मनके अलग-
अलग होते हैं, उनका कोई अस्तित्व नहीं होता; परंतु जब वे एक
माला में पिरो दिए जाते हैं, तो एक अत्यंत पवित्र वस्तु बन जाते हैं।
जिस स्थान पर जाकर देखो, हिंदू सब जगह एक संगठन की आव-
श्यकता का अनुभव करते हैं, और इसके लिये तैयार हैं; परंतु
जब उनसे काम करने के लिये कहा जाता है, तो कोई व्यक्ति आगे

बढ़कर उत्तरदायित्व को अपने सिर नहीं लेता। मुसलमान दिन में कई बार मसजिद में इकट्ठे होते हैं; हिंदुओं के लिये दिन में एक बार कैसा, सप्ताह और महीने में भी एक बार एकत्र होना कठिन है। इसका कारण स्पष्ट है। हिंदुओं में स्वार्थ और पैसे का लोभ बहुत अधिक बढ़ गया है, और उन्हें किसी जातीय काम में समय देना दूभर जान पड़ता है। इस स्वार्थ और पैसे के लोभ को कैसे इनके दिल से निकालकर, इसके स्थान में जाति-हित का भाव भर दिया जाय, यह एक कठिन प्रश्न है। इसका मुझे कोई हल नहीं दिखाई देता। एक हल तो मैं बता सकता हूँ कि वृद्ध और नवयुवक अपनी आवश्यकताओं को कम कर, स्वार्थ को त्याग जाति का काम करने के लिये मैदान में निकल आवें।

बलिदान का बीज बोने से ही जाति की स्वार्थपरता की व्याधि दूर हो सकती है। जब गुरु गोविंदसिंह ने कायर और निर्बल हिंदुओं में से क्षत्रिय पैदा करने का निश्चय किया, तो उन्होंने इसी सिद्धांत को अपना पथ-दर्शक बनाया, और अपने अनुयायियों को इसी मार्ग पर चलने का उपदेश दिया। गुरु गोविंदसिंह ने सेवा-धर्म को नीचे से उठाकर चोटी का धर्म बना दिया। सेवा से ही मनुष्य में निस्स्वार्थता आ सकती है। यही भाव थोड़ा और ऊँचा उठकर बलिदान का रूप धारण कर लेता है। गुरुओं और उनके अनुयायियों ने जो बलिदान किए हैं, वे संसार के इतिहास में सदा अमर रहेंगे।

यह समय हिंदुओं के लिये गुरुओं के समय से भी बढ़कर भयानक है। हिंदुओं का अस्तित्व इस समय संशय में है; परंतु हिंदू अमीर अपना रुपया छोड़ने के लिये तैयार नहीं। वृद्ध अपनी गृहस्थी नहीं छोड़ सकते। नवयुवकों के लिये अपनी आशाओं को छोड़ना कठिन है। जिस समय मैं अपनी निराशा प्रकट करता हूँ, मुझसे कहा जाता है—"प्रचार की आवश्यकता है। ज्यों-ज्यों विचार फैलेंगे, लोगों में जाति

के लिये सहानुभूति उत्पन्न होगी।" मैं कहता हूँ, आर्य-समाजों के लि
प्रचार की आवश्यकता थी; क्योंकि उन्हें नए विचारों को जनता
सम्मुख रखना था। हिंदुओं को उनकी निर्बलता बताकर, उन्हें एक
के लाभ समझाने के लिये प्रचार की क्या आवश्यकता है? ऐसा कौ
हिंदू है, जा अपनी जातीय निर्बलता के कारणों और परिणामों
नहीं जानता? सोते हुए और बेसमझ आदमी को जगाकर समझा
जा सकता है; परंतु जो जागता है और समझ-बूझकर बेपरवाह ब
हुआ है, उसे कौन समझा सकता है। मुझसे कहा गया, सभाएँ बना
के लिये प्रचारकों की आवश्यकता है। सभा के पास कोई प्रचार
न था, इसलिये मैंने स्वयं एक दौरा किया। मेरा अच्छा स्वागत हुआ
मेरे जाने पर जोश भी खूब दिखाया गया, और सभाएँ भी स्थापि
हो गईं; परंतु फिर क्या हुआ? मुझे इन सभाओं का होना था न होन
बराबर मालूम होता है। यदि प्रचारक या उपदेश रखने से इतन
ही काम होना है, तो मैं पूछता हूँ, इससे क्या बनेगा, और इसकी
क्या आवश्यकता है? सब स्थानों के हिंदुओं को, चाहे वे आर्य
समाजी हों या सनातन-धर्मी, महीने में एक बार एकत्र होक
अपने जीवन का प्रमाण देना चाहिए। इस काम के लिये प्रत्येक
हिंदू प्रचारक है। आश्चर्य यह है कि इतने प्रचारक होते हुए भी
कहीं कुछ काम होता दिखाई नहीं देता। दुःख यह है कि छोटे-छोटे
नगरों और क़सबों में भी कोई मनुष्य काम करनेवाला पैदा नहीं
होता।

मेरे पास पत्र आते हैं कि हिंदू-सभा सो गई, हिंदू-सभा कुछ काम
नहीं करती। य लोग एक पत्र लिखकर और एक आने का टिकट
ख़र्च कर अपने कर्तव्य से उऋण हो जाते हैं; परंतु दूसरों से बहुत
कुछ आशा रखते हैं। केवल इतना ही नहीं, बहुत-से महानुभाव
अपने ऐसे विचारों को समाचार-पत्रों में छपवा देते हैं। जहाँ उनकी

चिट्ठी पत्र में छपी कि उनका कर्तव्य पूरा हुआ। कई संपादक हिंदू-संगठन के विषय में समाचार-पत्रों में खूब उत्तेजनापूर्ण लेख लिखते हैं। इससे शोर तो बहुत मचता है, परंतु काम कुछ नहीं होता। मैं इन सज्जनों की सेवा में निवेदन कर देना चाहता हूँ कि यह हमसे छिपा नहीं कि संगठन का काम कुछ नहीं हो रहा, परंतु ये सभाएँ आपकी ही बनाई हुई हैं, और इनमें प्रायः ऐसे ही आदमी भरे हुए हैं, जो दूसरों को मार्ग दिखाना ही पसंद करते हैं, स्वयं उस पर चलना पसंद नहीं करते। इस प्रकार की समालोचना जाति के लिये हानिकारक है। जिन महानुभावों के हृदय में ऐसी समालोचना करने की इच्छा उत्पन्न होती है, उनसे मेरी प्रार्थना है कि केवल समालोचना ही न कर सभा के बनाने में भी कुछ सहायता दें। चिट्ठियाँ लिखने की अपेक्षा वे लोगों को उत्साहित करें। थोड़ा समय हुआ, मुझे एक महाशय ने दो फ़ुलसकेप काग़ज़ों का एक लंबा पत्र लिखा। जिसमें आपने लिखा, "हिंदू-जाति की उन्नति का एक ही उपाय दंगल के अखाड़े स्थापित करना है। हिंदू-सभा ने इस विषय का प्रस्ताव पास करके छोड़ दिया, शोक है काम कुछ नहीं हुआ।" प्रस्ताव पर काम न होने का कारण यह था कि स्वास्थ्य बिगड़ जाने के कारण मैं लगभग तीन-चार मास के लिये लाहौर से बाहर चला गया था। मैं इन महाशय से कहना चाहता हूँ कि बहुत अच्छा होता, यदि वह अपना और मेरा समय नष्ट न कर इस संबंध में कुछ क्रियात्मक काम करते। हिंदू-सभा यह नहीं करती, वह नहीं करती, ऐसा लिख देने से कुछ नहीं बन सकता। इस प्रकार की समालोचना करने का अधिकार उसी व्यक्ति को है, जो संगठन के लिये स्वयं कुछ करता हो।

कुछ लोग पूछते हैं, हिंदू-सभाएँ स्थापित कर वे क्या करें ? मैं इस प्रश्न का उत्तर देने की कोई आवश्यकता नहीं समझता। सभाएँ

समय-समय पर हमें सावधान करती रहती हैं। हिंदू-महासभा ने यह निर्णय किया है कि हिंदू-सभाएँ स्थान-स्थान पर विधवाओं की रक्षा के लिये आश्रम स्थापित करें। जिन लोगों को जम्मू, चंबा और कांगड़े के इलाक़े के विषय में कुछ पता है, वे जानते हैं कि प्रतिवर्ष किस तरह सैकड़ों देवियाँ विधर्मियों के हाथों में पड़ती हैं। परंतु हिंदुओं के पत्थर-दिलों पर कुछ प्रभाव नहीं पड़ता। क्या इन स्थानों की हिंदू-सभाओं को यह बताने की आवश्यकता है कि इस विषय में उनका क्या कर्तव्य है? किसी जाति में स्त्रियों की संख्या का कम होना उस जाति के विनाश का कारण होता है। मुसलमान इस रहस्य को खूब अच्छी तरह समझते हैं, और वे शनैः-शनैः हिंदुओं के पैरों के नीचे से ज़मीन खिसका रहे हैं। मैं नहीं कह सकता कि हिंदुओं को कब सुध आवेगी। पंजाब हिंदू-सभा ने यह निश्चय किया है कि भविष्य में स्कूल खोलने के स्थान में हिंदू-बालकों की शारीरिक अवस्था सुधारने के लिये दंगलों के अखाड़े स्थापित किए जायँ, और लाहौर में एक केंद्रीय अखाड़ा बनाया जाय। यह दूसरा काम है, जो हिंदू-सभाएँ कर सकती हैं। तीसरा काम हिंदू-सभाएँ हिंदू-मंदिर और तीर्थ-सुधार का अपने हाथ में ले सकती हैं। परंतु यह काम तभी हो सकता है, जब हिंदू-सभाएँ दृढ़ हो जायँ, और वे हिंदू-समाज की प्रतिनिधि समझी जाने लगें।

सबसे बड़ा काम जो हिंदू-सभाओं के सम्मुख है, वह अछूतोद्धार का है। मेरा विचार है कि हिंदुओं का भला इन्हीं अछूतों के उद्धार से होगा। प्रकृति का नियम विचित्र है। जो जातियाँ संपन्न और प्रभावयुक्त होती हैं, वे भोग-विलास में पड़कर अपनी रक्षा के लिये असमर्थ हो जाती हैं। शारीरिक निर्बलता के कारण इनकी संतान भी कम होने से इनकी संख्या घट जाती है। ऐसी अवस्था में निचली श्रेणी के लोग ही ऊपर आकर जाति की रक्षा करते हैं।

पुराने समय में राजपूताने में सैनिक लोगों में से अग्नि-कुल के राजपूत इसी प्रकार उत्पन्न हुए थे। दक्षिण में मरहठे भी इसी प्रकार उत्पन्न हुए। जो मरहठे एक समय शूद्र समझे जाते थे, वे एक दिन हिंदू-धर्म के उद्धारक बने। उन्हीं की स्थापित की हुई रियासतें आज भी चली आ रही हैं। पंजाब में गुरु गोविंदसिंह ने जिन जाटों को सिख बनाया, वे भी इसी श्रेणी में से थे। जो लोग ग़रीब होते हैं, और भोग-विलास में लिप्त नहीं होते, उनकी शारीरिक अवस्था अच्छी होती है, और उनमें बलिदान का भाव भी अधिक होता है। संकट के समय ये लोग आगे आ जाते हैं, और विलासी लोग पीछे हट जाते हैं। मुझे यदि संगठन की आशा है, तो इन अछूतों से ही।

पढ़नेवाले विस्मित होंगे, परंतु मैं स्पष्ट कह देता हूँ कि जिन अछूतों से हम घृणा करते हैं, और जिन्हें अपने कुओं पर चढ़ने नहीं देते, एक दिन वे ही आकर हमारी रक्षा करेंगे। अछूतोद्धार हिंदू-संगठन का मुख्य अंग बन जायगा। हिंदू-सभा सब हिंदुओं की प्रतिनिधि है, इसलिये यह काम हिंदू-सभाओं का ही करना होगा। संगठन के बिना अछूतोद्धार का कोई लाभ नहीं, और न इसमें सफलता ही हो सकेगी। निराशा का बड़ा कारण यह है कि हमारे परोसी मुसलमान अपनी जाति को उन्नत और सबल बनाने का मुख्य साधन जानते हैं, उनका सबसे बड़ा धर्म अपने संप्रदाय के अनुयायियों की संख्या बढ़ाना है। जब तक एक व्यक्ति हिंदू रहता है, वह डरता रहता है, उसकी आत्मा निर्बल रहती है। जिस दिन वह मुसलमान बन जाता है, उसके कान में यह मंत्र फूँक दिया जाता है कि वह मुसलमान है, उसके लिये बहिश्त का दरवाज़ा खुल गया है, और इस दुनिया में भी वह बड़े-बड़े आदमी की बराबरी कर सकता है। वह मुर्दा मनुष्य अब जीवित हो जाता है, और उसकी आत्मा में भी शक्ति आ जाती है। मुसलमान साधन की चिंता नहीं करते। यदि कोई मनुष्य धन के

लोभ से मुसलमान बनता है, तो धन से ही सही, यदि कोई दुःख देने से बनता है, तो यही सही, कोई ज़बरदस्ती से बन सकता है, तो यह भी ठीक है। जहाँ मुसलमान नए आए हुए भाई को छाती से लगाने के लिये तैयार रहते हैं, वहाँ हिंदू अपने पुराने भाइयों को भी वापस लेने में हिचकिचाते हैं। हिंदू अपने भाइयों को ढकेलना जानते हैं, उनमें अपने भाइयों को ऊँचा उठाने की शक्ति नहीं है। हिंदू उसी दिन बलवान् होंगे, और उन्नति करेंगे, तब उनमें दूसरों को अपने साथ मिलाने की वही शक्ति आ जायगी, जो उनके परोसी मुसलमानों में है।

हिंदू-संगठन का साधन

एक प्रश्न मुझसे यह पूछा जाता है कि हिंदुओं को आख़िर एक सूत्र में बाँधा कैसे जा सकता है। मैं हिंदुओं में संगठन स्थापित करना चाहता हूँ, तो इसका कोई साधन भी होना चाहिए। मैं अपने विचारों के अनुसार इस प्रश्न का उत्तर थोड़े शब्दों में देना चाहता हूँ।

मैं यह बात प्रसन्नता से स्वीकार करता हूँ कि हिंदू-धर्म या मत कोई मज़हब या संप्रदाय नहीं है, और इसे मैं हिंदू-सभ्यता और हिंदुओं के लिये गौरव का कारण समझता हूँ। इसलाम और ईसाई-धर्म ने मज़हब को ही संगठन का साधन बनाया है। संसार में सबसे पहले बौद्ध-धर्म का प्रचार हुआ; परंतु बौद्ध-धर्म ने सांप्रदायिक विचारों को सामाजिक संगठन का साधन नहीं बनाया। बौद्ध-धर्म से से पूर्व यहूदी आदि संप्रदाय प्रचार का काम बिलकुल न करते थे। यहूदी आज दिन तक भी किसी अन्य संप्रदाय के मनुष्य को अपने धर्म में सम्मिलित नहीं करते। इसलाम और ईसाई धर्म धार्मिक दृष्टिकोण से यहूदी-धर्म का ही अनुकरण है। यह कह देना ऐतिहासिक दृष्टि से ग़लत नहीं समझा जायगा कि ईसाइयत में से यदि ईसा को और इसलाम में से हज़रत मुहम्मद को निकाल दिया जाय, तो शेष यहूदी-धर्म ही रह जायगा।

ईसाइयों ने यहूदी-संप्रदाय के सिद्धांतों को लेकर प्रचार करना आरंभ किया, ज्यों-ज्यों उनके हाथ में राजनीतिक शक्ति आती गई, उनका संगठन दृढ़ होता गया। ईसाइयों की उन्नति देखकर हज़रत मुहम्मद ने भी यहूदियों के आरंभिक सिद्धांतों को लेकर इसलाम में

सांप्रदायिक और राजनीतिक शक्ति उत्पन्न कर दी, और एक बलवान् शक्ति को जन्म दे दिया।

उन्नति के मार्ग में रुकावट—यह एक सत्य सिद्धांत है कि सांप्रदायिकता को सामाजिक संगठन का साधन बनाना उन्नति के मार्ग में बड़ी रुकावट उपस्थित करना है। जब तक योरप में ईसाइयों का प्राबल्य रहा, मनुष्य का मस्तिष्क चर्च के अधीन विकसित अवस्था में रहा, कोई उन्नति न हो सकी। योरप ने उन्नति के मार्ग में पहला क़दम तभी रक्खा, जब उसने धार्मिक सुधार (Reformation) द्वारा अपने मस्तिष्क को सांप्रदायिक दबाव से मुक्त कर लिया। इस समय तक योरप में राष्ट्रीय संगठन बिलकुल न था। इसी प्रकार जब तक एशिया के देश इसलाम के दबाव से स्वतंत्रता प्राप्त नहीं कर लेते, उनके लिये किसी प्रकार की उन्नति करना सर्वथा असंभव है। योरप के देशों का रुपया इसलामी देशों को सहायता देने का यही प्रयोजन है कि वे सदा ही अपने मज़हबी उन्माद में पड़े रहें और उनकी तूती एशिया में बोलती रहे। संप्रदाय के प्रभुत्व में विचार-स्वतंत्रता होना कठिन है, इस बात का प्रमाण इसलाम और ईसाई-धर्म का इतिहास है। इन दोनों संप्रदायों ने विचार-स्वतंत्रता का नाश करने के लिये अनेक महापुरुषों के प्राण लिए और उन्हें जीता जलाया। एक बार जब किसी जाति के मस्तिष्क संप्रदाय की अधीनता स्वीकार कर लेते हैं, तो विचारों की स्वतंत्रता स्वयं ही नष्ट हो जाती है।

संप्रदाय सबसे पूर्व यही शिक्षा देता है कि उसकी बताई हुई दो-चार बातें ही सच हैं, और उस सचाई का प्रचार करना ही सबसे ऊँचा और आवश्यक कर्तव्य है। जो उस सत्य को स्वीकार नहीं करता, उसका जीवन पापमय है। ऐसे पापमय जीवन का अंत कर मनुष्य को पाप से बचाना चाहिए। संप्रदाय प्रत्येक विषय में अपने पाद-

रियों और मौलवियों की सम्मति को ही ठीक मानता है। जिस समाज या जाति के मनुष्य मौलवियों और पादरियों के वचन को ही ब्रह्मवाक्य मानते हैं, वहाँ विचार-स्वतंत्रता कैसे आ सकती है, और विचारों की दासता में कर्म की स्वतंत्रता कहाँ हो सकती है.?

हिंदू-समाज और सभ्यता सांप्रदायिक दासता से मुक्त है, इस बात का सबको गौरव है। हिंदू-धर्म के जिज्ञासु सदा सत्य की खोज में यही कहते सुनाई देते हैं कि "वह अंतिम सत्य क्या है ?"

हिंदू-ऋषि और दार्शनिक एक काल्पनिक ईश्वर और फ़रिश्तों के अस्तित्व को स्वीकार करके अपने धार्मिक विचारों की स्थापना नहीं करते। हिंदू-धर्म का ब्रह्म 'ख़ुदा या ईश्वर' नहीं है। ख़ुदा एक काल्पनिक वस्तु है, जिसके आविष्कार का श्रेय सेमेटिक जातियों को है। हिंदुओं का ब्रह्म एक दूसरी शक्ति है। ब्रह्म की खोज हमारे जिज्ञासु और ऋषि ब्रह्मांड में स्थूल प्रकृति से आरंभ करते हैं।

उपनिषदों में प्रश्न होता है—यह संसार क्या है ? हम क्या हैं ? यह आत्मा क्या है ? कहाँ से आती है ? इस ब्रह्मांड को कौन शक्ति चलाती है ? इन सब प्रश्नों की खोज करते हुए ऋषि परम ब्रह्म तक पहुँचते हैं। यह केवल हिंदू-सभ्यता ही है, जिसमें इतनी विचार-स्वतंत्रता है कि आस्तिक भी हिंदू है, नास्तिक भी। हिंदू-सभ्यता यह नहीं कहती कि तुम इन बातों को मानो, नहीं तो तुम हिंदू नहीं रहोगे। इसके अतिरिक्त हिंदू-धर्म-शास्त्र संसार में सबसे प्राचीन है। इस पर कई आँधियाँ और तूफ़ान आए और गुज़र गए; यह वैसा ही है। इसमें कई लहरें आईं और चली गईं; परंतु हिंदू-धर्म उसी प्रकार शांत सागर की भाँति निश्चल है। गीता ने हिंदू-धर्म की सर्वोत्तम व्याख्या की है। गीता कहती है—"सब मार्ग मेरी ही ओर आते हैं, और जो जिस मार्ग से आता है, मैं

उसी मार्ग पर उसे मार्ग में ही मिलता हूँ।" मैं हिंदू-धर्म के इस भाव की रक्षा करना चाहता हूँ, और साथ ही यह भी चाहता हूँ कि हिंदुओं का संगठन दृढ़ होकर संसार के सब सांप्रदायिक संगठनों का मुक़ाबला कर सके। यदि संसार में सत्य की विजय होती है, तो मुझे निश्चय है कि हमारी विजय होगी। ये सब सांप्रदायिक संगठन हानिकारक हैं; क्योंकि ये शक्ति प्राप्त करके संसार को ग़लत रास्ते पर ले जाना चाहते हैं। समय आवेगा, जब संसार को पता चलेगा कि मज़हब ने मनुष्य की कितनी हानि की है, उस दिन संसार हिंदू-सभ्यता के महत्त्व को समझेगा, जो अब तक विचार-स्वतंत्रता की रक्षा के लिये संसार की सारी शक्तियों से युद्ध करती रही है।

यदि संसार में किसी अन्य मज़हब का संगठन हो, तो हिंदू-संगठन की कोई आवश्यकता नहीं। जो लोग हिंदू-संगठन से भयभीत होते हैं, उनका भय निराधार है। धार्मिक सहिष्णुता हिंदुओं का विशेष गुण है। यदि किसी को भय हो, तो केवल अपने पापों से होना चाहिए। सांप्रदायिक पराधीनता के आधार पर संगठन करके दूसरों पर प्रभुत्व जमाने का यत्न करना अनुचित है। विचार-स्वतंत्रता से अज्ञान का पर्दा स्वयं दूर हो जायगा। हिंदुओं ने जितने दुःख उठाए हैं, सब धार्मिक सहिष्णुता के कारण उठाए हैं। सब वैयक्तिक गुण होते हुए भी दूसरी जातियों के विरुद्ध संगठित होने का भाव हिंदुओं में न था, इसलिये हिंदुओं पर संगठित शक्तियाँ सदा अत्याचार करती रही हैं। इस समय निस्संदेह हिंदुओं में एक नया विचार उत्पन्न हो गया है कि जीवन चाहे वैयक्तिक हो या सामाजिक, उसके लिये संसार में युद्ध की आवश्यकता है। यदि संसार से हिंदुओं का अस्तित्व गिर गया, तो संसार की उन्नति में बड़ी भारी बाधा पड़ जायगी। संसार से विचार-स्वतंत्रता के लिये युद्ध करने-

वाली एक शक्ति उठ जायगी, संसार से स्वतंत्रता का नाम मिट जायगा और उसका स्थान मूर्खता और पराधीनता ले लेगी। इस समय हिंदुओं का अपनी उन्नति के लिये प्रयत्न करना संसार की भलाई और उसकी रक्षा के लिये प्रयत्न करना है।

राम और कृष्ण

ही हमारे संगठन का एक साधन हैं। मैं उन लोगों को महापापी समझता हूँ, जो मज़हब को संगठन का साधन बनाते हैं। मज़हब एक फ़िलासफ़ी है, जिसके विषय में निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता। कौन कह सकता है कि स्वर्ग और नरक हैं? कौन कह सकता है कि प्रलय के दिन सारे मुर्दे उठ खड़े होंगे, और एक दूसरे को पहचान लेंगे। पिता, पुत्र, दादा, पोता किस-किस आयु के शरीरों में उठ खड़े होंगे और किस तरह एक दूसरे को पहचानेंगे। इस प्रकार के सांप्रदायिक विचार चाहे वे कितने ही युक्ति-युक्त क्यों न हों उनमें संदेह के लिये सदा ही अवसर है। ऐसे विश्वासों को संगठन का आधार बनाना भूल है। यदि ये सब ढंग ग़लत हों, तो हिंदुओं को क्योंकर संगठित किया जा सकता है।

प्रत्येक जाति और देश में सदा ही महापुरुष होते आए हैं। इनको आदर्श पुरुष और अवतार की पदवी दी जाती है; क्योंकि इनके अंदर उस जाति के सभी गुण चरम सीमा में पाए जाते हैं। महापुरुषों के जीवन से ही किसी जाति के आचार और आदर्श का पता लगता है। क़ैसर जर्मनी का महापुरुष था; क्योंकि उसमें जर्मनी की महत्त्वाकांक्षा केंद्रित पाई जाती थी। अँगरेज़ों की महत्त्वाकांक्षा यह है कि उनका शासन सब समुद्रों पर हो। उनका महापुरुष लार्ड नेल्सन था; क्योंकि वह उनकी जलसेना का सबसे बड़ा सेनापति था। वाशिंगटन ने अमेरिका में स्वतंत्रता की पताका गाड़ी थी, वही उनका महापुरुष है। यही महापुरुष जाति की आत्मा और उसकी जान होते हैं। हिंदू-जाति

के महापुरुष राम और कृष्ण हैं। यदि हिंदू-जाति की आत्मा को देखना हो, तो राम और कृष्ण में देखा जा सकता है। यदि हिंदू-जाति के आदर्श को देखना हो, तो इन दोनों के जीवन को मनन कीजिए।

सांप्रदायिक फ़िलासफ़ी पुस्तकों में भरी रहती है; परंतु सर्वसाधारण पुस्तकें पढ़कर उसे समझ नहीं सकते। यदि किसी को हिंदू-धर्म के तत्त्व को समझना हो, तो राम और कृष्ण के चरित्र का अध्ययन करना चाहिए। विजया दशमी हिंदुओं का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण और पवित्र त्योहार है। जातीय त्योहार उनके महापुरुषों के कृत्यों की स्मृति हैं और इन्हीं से जाति में जीवन का संचार होता है। यदि हिंदू-जाति का कोई इतिहास न होता, तो केवल राम और कृष्ण की स्मृति ही हममें जीवन का प्रचार करने के लिये पर्याप्त थी।

मेरी इच्छा

हिंदुओं की जातीयता राम और कृष्ण पर निर्भर है। लोग कहते हैं ये दोनों एक ही हैं, क्योंकि ये दोनों परमात्मा का अवतार थे। मैं यह तो नहीं जानता कि वे परमात्मा का अवतार थे या नहीं, परंतु स्वयं कृष्ण ने ही कहा है—"जब-जब धर्म का नाश होकर पाप का प्राबल्य हो जाता है, मैं धर्म की रक्षा के लिये आता हूँ।" ये परमात्मा हों या न हों, परंतु इतना तो निश्चय है कि करोड़ों हिंदुओं ने लाखों वर्षों तक इन महापुरुषों के नामों का जप परमेश्वर के नाम की तरह ही किया है। मैं चाहता हूँ, इस समय कोई तुलसी और सूर के समान कवि हो, जो इन महापुरुषों की महिमा सर्वसाधारण के समझने योग्य भाषा में छंदोबद्ध कर लिख दे। यह काम हिंदू-संगठन के मार्ग में बड़ा सहायक होगा। तुलसी की रामायण बहुत अच्छा ग्रंथ है, परंतु उसकी भाषा ज़रा कठिन है। यदि मुझमें कवि की प्रतिभा होती और मैं सुंदर छंद लिख सकता, तो सब काम छोड़कर इसी के

पीछे लग जाता। इस पुस्तक में हिंदू-जाति के दूसरे महापुरुषों में गुरु नानक, गुरु गोविंद, वैरागी वीर, प्रतापत था शिवाजी का वर्णन हो सकता है। यह सब महान् आत्माएँ एक ही उद्देश्य को पूरा करने के लिये समय-समय पर अवतार धारण करती रही हैं।

आशा की रेखा

प्रति दिन समाचार-पत्रों में कहीं-न-कहीं झगड़े का सामचार सु
पड़ता है। प्रायः यह भी लिखा रहता है कि इतने हिंदू मारे ग
हिंदुओं की दूकानें लूटी गईं, और जला दी गईं। कई स्थानों से
भी समाचार आता है कि इस काम में ख़िलाफ़त के कार्य-कर्ता
ने भी भाग लिया है। कोहाट में ख़िलाफ़त के आदमी वरदियाँ प
और झंडा हाथ में लिए लूट में भाग ले रहे थे। हिंदू जब
समचारों को पढ़ते हैं, तो इनका हृदय धक से रह जाता है। हो
क्यों न? जो कल लखपती थे, आज वे अपना पेट भरने के लिये दूस
के आश्रित हैं। जो कल महलों में पंखों के नीचे आराम करते
आज सोने के लिये ख़ाली ज़मीन ढूँढ़ते फिरते हैं। इनमें केवल से
साहूकार ही नहीं, बल्कि वकील और बैरिस्टर भी सम्मिलित हैं। को
की घटना सभी हिंदुओं के लिये शिक्षाप्रद है। क्या हिंदू इससे शि
ग्रहण कर पैसे का प्यार छोड़कर संगठन की सहायता करेंगे?
सोचने-विचारने का समय नहीं रहा, बल्कि झटपट काम करने का स
है। यह तो हुआ, परंतु हम निश्चय कह सकते हैं कि कांग्रेस हि
मुसलिम प्रश्न को हल करने में असफल रही। महात्मा गांधी
शेष सब प्रश्नों को एक ओर रख इस समस्या को सुलझाने की चे
की, ताकि उन्हें कोई इस प्रश्न को सुलझाने का ढंग बता दे। ह
राजनीतिक नेता अभी तक भ्रम में पड़े हुए हैं कि सभाओं, कमेटियों
कानफ़्रेंसों से एकता हो सकती है। उन्हें समझ लेना चाहिए कि
उपाय एकता करने में कभी सफल नहीं हो सकते। कांग्रेस अपना क
कर चुकी है, जब फिर उपयुक्त समय आवेगा, कांग्रेस आगे आ जायगी

कांग्रेस के मुसलमान नेता इस झगड़े का उत्तरदायित्व हिंदू और मुसलमान, दोनों पर डालकर अपनी बेतअल्लुक़ी दिखाना चाहते हैं। कांग्रेस के हिंदू नेता भी अपनी निष्पक्षता का शिकार बन रहे हैं और कोहाट में भी वे दुःखी और निस्सहाय मुसलमानों को ढूँढ़ते फिरते हैं। निस्संदेह कोहाट में मुसलमानों पर भयंकर आपत्ति पड़ी है, क्योंकि उन्होंने हिंदुओं के जलते हुए मकानों में नाज का एक भी दाना नहीं छोड़ा। नहीं कह सकते, यह उनके दुःख का कारण है या प्रसन्नता का कि कोहाट में उन्होंने हिंदुओं का नाम तक मिटा दिया है।

कोहाट की घटना से हमारी सरकार का दिवालियापन भी प्रकट हो गया है। माना लोग स्वराज्य चाहते हैं, और हिंदू-मुसलमानों की वास्तविक एकता नहीं हुई; परंतु इसका यह अभिप्राय कभी नहीं कि गवर्नमेंट स्वराज्य के लिये यत्न करनेवालों की रक्षा के लिये उत्तरदायी नहीं है। यदि किसी सरकार के शासन में एक प्रबल भाग दूसरे निर्बल भाग को दो, तीन या अधिक दिन तक निश्चित होकर लूट और क़त्ल कर सकता है, तो उस गवर्नमेंट को शासन करने का क्या अधिकार है, और वह किस रोग की दवा है?

कई शताब्दियाँ व्यतीत हो गईं। एक मुग़ल सम्राट् के शासन-काल में देश के एक दूरस्थ स्थान में एक बुढ़िया लुट गई थी। उसने बादशाह के पास जाकर कहा था, यदि तुम उस प्रांत का शासन समुचित रूप से नहीं कर सकते, तो तुमने उस देश को अपने अधिकार में क्यों रख छोड़ा है। वास्तव में ही यदि कोई सरकार प्रबल मनुष्यों से निर्बलों की रक्षा कर उनकी सहायता नहीं कर सकती, तो वह अपने सबसे बड़े कर्तव्य की अवहेलना करती है। इसके अतिरिक्त गवर्नमेंट का काम ही और क्या है। प्रबल को सरकार की सहायता की कोई आवश्यकता नहीं। यह कहना पागलपन है कि दोनों ओर के गुंडे

शरारत करते हैं। मंदिरों में पूजा के लिये घंटे बजानेवाले हिंदू गुं[illegible] नहीं हैं, और न अपने घरों में अपनी स्त्रियों तथा बाल-बच्चों की र[illegible] करने के लिये लड़नेवाले हिंदू गुंडे हैं। यहाँ पर अब मैं इस बात [illegible] स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि हिंदू मुसलमानों से कोई झगड़ा न[illegible] करना चाहते और न उन्हें देश से बाहर निकालना चाहते हैं। मुस[illegible] लमान हिंदुओं को इस देश में अपने प्राणों और धन की रक्षा न[illegible] करने देते। हिंदू केवल अपने प्राणों और धन की रक्षा करना चाहते हैं[illegible] हिंदुओं के लिये अब यह स्पष्ट हो गया है कि अपनी रक्षा करने [illegible] लिये उन्हें स्वयं तैयार रहना होगा, वरना उनके प्राण संशय में हैं[illegible] हिंदुओं के लिये संगठन इस समय जीवन और मृत्यु का प्रश्न है। [illegible] हिंदू नेता इस समय हिंदुओं की सहायता करने पर तैयार नहीं उन्हें हिंदुओं को सहानुभूति और उनसे सम्मान की आशा छो[illegible] देनी चाहिए।

विजयादशमी का त्योहार हिंदुओं के लिये एक पाठ है। जिस[illegible] समय हिंदुओं के धर्म और प्राण संकट में थे, उस समय भगवा[illegible] राम ने अवतार धारण किया, जिस समय उनके अपने देश के राज[illegible] कंस ने अत्याचारों को सीमा तक पहुँचा दिया था, कृष्ण ने उसक[illegible] संहार किया। जिस समय देहली में हिंदुओं का धर्म संशय में प[illegible] गया था, वंदा बैरागी ने धर्म-ध्वजा खड़ी कर दी। इन दुर्घटनाओं [illegible] भी, जिन्हें देखकर हमारा हृदय टूक-टूक हो जाता है, प्रकृति का हा[illegible] है। संसार में कोई बुराई ऐसी नहीं, जिसमें अच्छाई गुप्त रूप से [illegible] निहित न हो। मुझे भगवान् पर पूर्ण विश्वास है और इन सब घ[illegible] नाओं में उनकी सहायता का हाथ मुझे दीख पड़ता है। ये ही कारण[illegible] हिंदू-जाति को जगाने के कारण होंगे, और इनसे जाति में वह ब[illegible] आवेगा, जो हमारा रक्षक होगा।

हिरनी के साथ उसका नन्हा-सा छौना था। उसे शिकारी ने [illegible]

लिया था। एक ओर आग लगा दी थी, दूसरी ओर बाढ़ थी। तीसरी ओर दो कुत्ते थे, और चौथी ओर शिकारी स्वयं बंदूक लिए घात में बैठा था। हिरनी स्वयं इन आपत्तियों से निकलकर अपने प्राण-रक्षा कर सकती थी, परंतु उसका बच्चा साथ था। ऐसे संकट के समय उसकी आँखें संकट-मोचनहार भगवान् की ओर उठी। "विनती करे मृग-नारी, संकट काटो मुरारी।" उनका हाथ लंबा है। आँधी चल पड़ी, आग उड़कर बाढ़ में लग गई। हिरनी छलाँगे भरती भाग गई। आओ, इस संकट के समय भगवान् राम और कृष्ण का ध्यान करें। वे ही हमें शक्ति प्रदान करेंगे।

मैं बिलकुल निराश नहीं हूँ

क्या हमारा भविष्य निराशामय है ? यह एक ऐसा प्रश्न है कि इस पर मैं जितना गूढ़ विचार करता हूँ, उतना ही यह गहन होता जाता है। मुझे इस प्रश्न का उत्तर निराशा। में मिलता है, यदि मैं केवल अपनी दृष्टि को वर्तमान तक ही परिमित रक्खूँ। वर्तमान की सभी घटनाएँ ऐसी हैं कि कोई आशा ही उत्पन्न नहीं होती। रोग और उसके कारणों का पता है, परंतु रोगी बड़ा बेपरवा है। उसे न मृत्यु की चिंता है, न कष्ट का दुःख। ऐसा प्रतीत होता है कि यह सब भी प्रकृति के नियमानुकूल ही है। इस जाति की बेपरवाही इतनी बढ़ गई है कि इसे अपने अस्तित्व की भी चिंता नहीं रही है।

यदि हम मनुष्य-समाज को देखें, तो जान पड़ता है कि यह भी एक समुद्र की भाँति है। इसमें लहरें उठती हैं। कुछ समय तक उनका प्रभाव भी रहता है, फिर वह लुप्त हो जाती हैं। हमारी सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक आंदोलन सब ऐसी ही लहरों के समान हैं, जो किसी समय प्रबल वेग से उठी थीं। परंतु काल की शक्ति अनंत है, वह इन सबको हड़प जाता है। यदि हम अपनी दृष्टि को परिमित रक्खें, तो हमारी दृष्टि इन लहरों तक ही रहती है, परंतु यदि हमारी दृष्टि ज़रा दूर तक चली जाय, तो समुद्र का प्रशांत भाग हमारी दृष्टि के सम्मुख आ जाता है।

एक समय इस पृथ्वी पर बौद्ध-धर्म की प्रबलता थी। संसार के सब देशों ने इसके सामने सिर झुका दिया था। उस समय किसी को आशंका न थी कि एक दिन बौद्ध-धर्म का ह्रास हो जायगा

और कोई अन्य विचार उसका स्थान ले लेंगे। जिस समय ईसाई-धर्म ज़ोरों पर था, उस समय वह भी संसार को निगल जाना चाहता था। आज भी ऐसे आदमियों की कमी नहीं, जो अपने पुराने विचारों की लगन में लगे हुए हैं, परंतु योरप और अमेरिका में जाकर कोई भी मनुष्य देख सकता है कि ईसाई-धर्म समाप्त हो चुका है। आज भी योरप के ऊँचे-ऊँचे गिरजाघरों से ईसाई-धर्म का वैभव दीख पड़ता है, परंतु जनता के हृदय से वह अब निकल चुका है। ईसाई-जनता में शिक्षा और सभ्यता के प्रचार के साथ-ही-साथ ईसाई-धर्म का तिरोभाव आरंभ हो गया था। एक समय था, जब योरप के देशों में प्रत्येक मुहल्ले में गिरजा बनाना आवश्यक समझा जाता था, परंतु अब अमेरिका के मुहल्लों में गिरजे के लिये कोई स्थान नहीं। वहाँ प्रत्येक मुहल्ले में स्कूल का होना आवश्यक समझा जाता है। मनुष्य के मस्तिष्क पर मज़हब का राज्य उसी समय तक रहता है, जब तक कि विद्या का प्रकाश उसे प्रकाशित नहीं कर सकता। शिक्षा के प्रभाव से विचारों की शक्ति मनुष्य में उत्पन्न होती है और विचारों की शक्ति उत्पन्न हो जाने से मज़हब की प्रबलता स्वयं दूर हो जाती है।

इसलाम को उत्पन्न हुए अभी अधिक समय नहीं हुआ, और इसके सौभाग्य से इसलाम का प्रचार उन देशों में अधिक है, जहाँ अभी तक उन्नति की लहर नहीं पहुँची है। प्रकृति में उन्नति की लहर कभी आगे और कभी पीछे चलती है, शायद इसका अभिप्राय यह है कि मनुष्य-समाज के सब अंग शनैः-शनैः एक साथ उन्नति की ओर बढ़ें। इसलाम की उन्नति के समय में इसके सैनिकों ने अफ़्रीका के किनारों पर तथा सूडान के जंगली मनुष्यों को अपने में मिलाकर उन्हें समता का पाठ पढ़ाकर मनुष्य बनाया। जहाँ इसलाम ने इन असभ्य या अर्द्ध-सभ्य जातियों को उन्नति का मार्ग दिखाया, वहाँ उसने थोड़ी-बहुत

उन्नत जातियों के मार्ग में रुकावट डाल दी। इसलामी जातियों की मानसिक अवस्था ऐसी है कि वह एक विशेष सीमा से आगे नहीं बढ़ सकती। इस प्रकार दोनों जातियाँ एकसमान सभ्य हो गईं। मानसिक शक्ति के विकास के रुक जाने से यह जातियाँ शारीरिक तौर पर अधिक बलवान् हो गईं और इन्होंने इसी शक्ति के प्रयोग को इसलाम के प्रचार के लिये आवश्यक समझा।

हिंदुओं की निर्बलता के अनेक भीतरी कारण हैं। इनके अतिरिक्त बाहिरी कारण भी इन्हें खा रहे हैं। दूसरों पर निर्भर होना निर्बलता का सबसे बड़ा कारण है। सबसे बढ़कर इनका पड़ोसी मज़हब अपनी पाशविक शक्ति से इन्हें निगल जाने के लिये सदा तैयार रहता है। हिंदू अपने को इन सब आक्रमणों को सहने में असमर्थ पाते हैं। हिंदुओं के इसलाम से अधिक भयभीत होने का बड़ा कारण यह है कि वह हमारा पड़ोसी है और उसे हम शत्रु से बदलकर मित्र बनाना सरल समझते थे। वास्तव में ही यह काम सरल होता, यदि इसलाम को स्थापित हुए कुछ अधिक समय हो गया होता और मुसलमान जातियों में मानसिक स्वतंत्रता कुछ अधिक होती। इस समय तक इसलाम विचार-स्वतंत्रता के विरुद्ध तुला हुआ है। इस समय इसलाम और विचार-स्वतंत्रता में एक तनातनी चल रही है। इसलाम में सहिष्णुता की कोई आशा तभी हो सकती है, जब इसलाम अंधाधुंधी छोड़कर विचारों की स्वतंत्रता को अपनावेगा। टर्की में विचार-स्वतंत्रता की विजय के थोड़े-बहुत लक्षण दिखाई देने लगे हैं, और उसने अपने आपको किसी सीमा तक मज़हबी जंज़ीरों से मुक्त कर लिया है। भारत के मुसलमानों में अभी तक विचार-स्वतंत्रता के बोझ को उठाने योग्य सामर्थ्य नहीं हुई है।

मुझे यदि कोई आशा है, तो अपना दृष्टि-क्षेत्र बढ़ा देने पर ही है। समय व्यतीत होगा, इसे कोई रोक नहीं सकता। मानसिक उन्नति भी

होगी, क्योंकि संसार का प्रवाह रुक नहीं सकता। मानसिक उन्नति के प्रकाश के सम्मुख अंध विश्वास का अँधेरा स्वयं दूर हो जायगा। हिंदुओं की मानसिक अवस्था अधिक उन्नत है, यह सोच-विचारकर काम कर सकते हैं, और इनमें संप्रदाय के नाम पर अंधविश्वास नहीं है। सोच-विचार और सहनशीलता की शक्ति में हिंदू इस समय सब जातियों से बढ़कर हैं। हिंदू-जाति संसार में सबसे प्राचीन है। मुझे शंका है कि हिंदू-जाति में मानसिक उन्नति को बलिदान कर शारीरिक उन्नति हो सकती है। यदि ऐसा हो भी सके, तो यह मनुष्यता को पीछे हटाकर हो सकेगा। मुझे आशा है कि समय व्यतीत होने के साथ मुसलमानों की धर्मांधता और असहिष्णुता घट जायगी और वे हिंदुओं के समीप होते जायँगे, और उसी समय हिंदुओं के साथ इनको वास्तविक एकता होगी। इस समय मुसलमानों की ऊँची-से-ऊँची श्रेणी में भी वह विचार-स्वतंत्रता नहीं, जो हिंदुओं की नीची-से-नीची श्रेणी में पाई जाती है। मुसलमानों को सहिष्णुता का पाठ पढ़ाने की आवश्यकता है। समय उन्हें यह पाठ पढ़ावेगा वे युक्ति तथा विचार से सोचने-समझने लगेंगे, और वही श्रेणी हिंदुओं के साथ मिलनेवाली होगी। उस समय इसलाम हिंदू-संस्कृति के महत्त्व को समझकर स्वीकार करेगा। मनुष्य का इतिहास बताता है, मनुष्य सदा ही अनेक अड़चनों और रुकावटों पर विजय प्राप्त करता आया है। मज़हब मनुष्य को बहुत समय तक मानसिक परतंत्रता में दबाकर नहीं रख सकता। एक दिन यह मानसिक पराधीनता अवश्य दूर होगी।

और भी दौरे फलक़ में हैं आनेवाले ;
नाज़ इतना न करें हमको मिटानेवाले।

हमारे भी हैं मेहरबान् कैसे-कैसे ?

अपना काम करते हुए हमें अपनी विरोधी शक्तियों का भी ध्यान कर लेना चाहिए, नहीं तो हम अपनी अवस्था और परिस्थिति का ठीक-ठीक ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकते। यदि हमारे देश में एक शासित और दूसरी शासक, दो ही जातियाँ होतीं, तो हमारी अवस्था इतनी विकट न होती। हमारी जाति के पुराने इतिहास में अनेक ऐसे उदाहरण हैं, जिनमें हम अपनी समस्या का हल ढूँढ़ सकते हैं। हमारे दुर्भाग्य से हम अकेले ही पराधीन जाति नहीं हैं, हमारे साथ एक और मज़हब है, जिसके ग्रहण कर लेने से मनुष्य के अन्य सब भाव मिट जाते हैं और धार्मिक पक्षपात के अतिरिक्त उन्हें और कुछ दिखाई ही नहीं देता। अपनी पुरानी जाति से उन्हें इतना वैर हो जाता है कि उसे मिटा देने में ही उनकी सारी प्रसन्नता हो जाती है। अपनी पवित्र मातृभूमि उन्हें केवल एक मिट्टी का ढेला ही दिखाई पड़ने लगती है। अपना पुराना इतिहास उन्हें निरर्थक और बेहूदा दिखाई देने लगता है। यदि यह लोग देशोन्नति के कार्य में हमारी सहायता न करते, तो भी इतनी हानि नहीं थी। परंतु दुःख तो यह है कि इस विपद् के समय में भी इन लोगों का वही पुराना विचार हिंदुओं को मिटाकर देश पर अपना प्रभुत्व जमाने का ज्यों-का-त्यों चला आता है। यदि वे स्वयं कुछ नहीं कर सकते, तो अन्य जातियों के साथ मिलकर हमें हानि पहुँचाने के लिये तैयार हो जाते हैं।

दूसरी ओर इनमें ऐसे लोगों की संख्या बड़ी भारी है, जो अपने संप्रदाय को फैलाना ही अपने जीवन का उद्देश्य समझते हैं। इन

लोगों की दृष्टि में कोई भी काम, जो इनकी संख्या को बढ़ा सकता है, घृणित होने पर अच्छा समझा जाता है। उनकी शिक्षा यह है कि हिंदू काफ़िरों का वेश धारण कर लो और अबोध बच्चों और स्त्रियों को अपने मत में मिला लो। ऐसे भेड़ियों से अपनी रक्षा करना कठिन है। इनमें बहुत-से ऐसे आदमी हैं, जो अपनी पुस्तकों के नाम हिंदू-पुस्तकों के ढंग पर रखकर उन्हें लाखों की संख्या में छपवाकर हिंदुओं में मुफ़्त बाँटकर उन्हें अपने जाल में फँसा लेते हैं। गुजरात-प्रांत में आग़ाख़ानी गीता, गायत्री और अवतारों की कथा से हिंदुओं को उतना ही भय है, जितना कि किसी जाति को शत्रुओं से घिरे होने पर उनकी भयानक चालों से होता है।

आगे है हमारी सरकार की नीति, जो मुसलमानों के साथ मिलकर हिंदुओं को नीचा दिखाना चाहती है। पंजाब की अवस्था कितनी विचित्र है, वह ब्राह्मण और क्षत्रिय, जो आदि काल से इस भूमि के स्वामी चले आए हैं, अपने पूर्वजों के देश में ज़मीन तक ख़रीदने के अधिकारी नहीं रहे। कहा जायगा, इसका कारण इन लोगों का काश्तकार न होना है। परंतु जो सरकार मुसलमानों के शिक्षा की दृष्टि से हिंदुओं से पीछे होने पर उन्हें छात्र-वृत्तियाँ और सरकारी पदों का प्रलोभन देकर हिंदुओं के बराबर कर सकती है, क्या हिंदुओं के ऊँची श्रेणी के लोगों को कृषि की ओर आकर्षित नहीं कर सकती। प्रश्न तो नीति का है। पंजाब में सरकारी नौकरी मुसलमानों को संख्या के अनुपात से दी जाती है, परंतु विहार और उड़ीसा में, जहाँ मुसलमानों की संख्या लगभग तीन प्रति शतक है, वहाँ भी उन्हें ही अधिक अवसर दिया जाता है। इसका कारण समझ में नहीं आता। लाला लाजपतरायजी अभी आसाम से आ रहे हैं। आसाम में मुसलमानों की बस्ती नहीं के बराबर है। वहाँ

की भूमि अत्यंत उपजाऊ और सुंदर है। पश्चिमी बंगाल के मुसलमान वहाँ जा रहे हैं और सरकार उन्हें नाम-मात्र मूल्य पर भूमि दे रही है। वे लोग ऐसे नीच हैं कि आसामी स्त्रियों को छीनकर अपने घर में रख लेते हैं। इस भय को देखकर एक सज्जन ने कौंसिल में यह प्रस्ताव किया है कि सरकार को यह भूमि दूसरे प्रांत के निवासियों को न देनी चाहिए। इस पर आसाम के मंत्री ने आपत्ति की कि यह तो मुसलमानों पर आक्रमण है। इस पर इन महाशय ने डरकर अपना प्रस्ताव वापस ले लिया। वहाँ तो अधिक संख्या को कोई नहीं पूछता। संख्या बहुत हो या थोड़ी, परंतु उसमें जीवन का होना ही अधिक महत्त्वपूर्ण बात है।

कई मुसलमान सज्जनों का कहना है कि सरकार को मुसलमानों को ही बड़े-बड़े पद देने चाहिए, क्योंकि इस देश में उनका राज्य रह चुका है। कइयों का कहना है कि सरकार जो कुछ कर रही है, वह उचित और न्यायसंगत है। संभव है, यही ठीक हो, परंतु राजनीति तो इसका समर्थन नहीं करती। यह तो सरकार को निश्चित रूप से विदित है कि मुसलमान इस देश को अपना नहीं समझते और न उन्हें इससे विशेष सहानुभूति ही है। इसलिये हिंदुओं को वश में करने के लिये सरकार मुसलमानों को अपने हाथ में रखना चाहती है। कुछ हिंदू सज्जन विश्वास करते हैं कि हम भी ख़ुशामद और स्वामिभक्ति से सरकार के कृपा-पात्र बन सकते हैं। यदि वे ऐसा कर सकते हैं, तो कर देखें। परंतु किसी की ख़ुशामद-दरामद का सरकार की नीति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। वह तो सब आगा-पीछा देखकर अपनी नीति निश्चित करती है। इस प्रकार हिंदू चक्की के दो पाटों में पिस रहे हैं। मुसलमान यद्यपि संख्या में थोड़े हैं और हिंदुओं की ही तरह पराधीन हैं, परंतु उनका संगठन विशेषकर हिंदुओं के विरोध में बड़ा प्रबल है। इधर सरकार भी

इन्हें प्रोत्साहित करती है। इन दोनों चक्की-पाटों में से निकल बचना टेढ़ी खीर है। इस देश में हिंदू रियासतें बहुत अधिक हैं। यदि इनके रईस ज़रा साहस से काम लें, तो हिंदू-जातीयता के निर्माण में बड़ी सहायता मिल सकती है, परंतु बात उलटी ही है। हिंदू-रियासतों में हिंदुओं को मुसलमान बनाने का काम पूरे ज़ोरों पर हो रहा है। सरकार के समाचार-पत्र भी इस विषय में अपनी प्रसन्नता प्रकट कर रहे हैं। हिंदू-रियासतों में सब जगह मुसलमान अफ़-सर नियुक्त किए जाते हैं, ताकि वे हिंदुओं को दबा रक्खें। मुसलमान-रियासतों में मुसलमानों के एजेंट खुले मैदान काम कर रहे हैं, परंतु क्या मजाल कि हिंदू-रियासतों में कोई हिंदू जातीय भाव का प्रचार कर सके।

हम स्वयं अपने सबसे बड़े शत्रु हैं

हिंदू-जाति के सबसे बड़े शत्रु स्वयं इसके अपने अंग हैं, जो इसके अस्तित्व से निश्चिंत हैं। जहाँ प्रत्येक मुसलमान अपने धर्म का स्वभाव से ही प्रचारक है, वहाँ हिंदुओं के हृदय से जातीयता का विचार ही उठ गया है। हमारा दूसरा रोग हमारी अकर्मण्यता है। यदि किसी के हृदय में कोई भाव भी उत्पन्न हो जाय, तो उसे अकर्मण्यता आ घेरती है। प्रत्येक हिंदू यही कहता दिखाई देता है, क्या करें कुछ हो नहीं सकता।

हमारा पुराना दुर्योधन के समय का रोग ईर्ष्या है। इस रोग का कोई उपाय ही नहीं हो सकता। हमारी अवनति के मूल कारण यही हैं, जो अनेक रूप धारण करके हमारे सम्मुख प्रकट होते हैं। तो भी हमें यह देखना है कि हमारे विचार के अनुसार हमारी जातीयता के शत्रु कौन-कौन शक्तियाँ हैं। फूट और धड़ेबंदी तो हिंदुओं के स्वभाव में घुस गई हैं। दल बाँधने में इन्हें आनंद और उत्साह होता है। अधिक विस्मय का विषय यह है कि धड़ेबंदी को छोड़कर यदि उन्हें जाति के लिये कुछ काम करने के लिये कहा जाय, तो इनका सारा उत्साह काफ़ूर हो जाता है, और कोई थोड़ा समय भी इस काम के देने के लिये तैयार नहीं होता। इन कारणों से हिंदू संगठन एक इतना सूक्ष्म तराज़ू बन गया है, जिसका सम करना बड़ा कठिन काम है। हम अपनी उपद्रवी प्रकृति के कारण उसे सदा विषम करने के लिये तैयार रहते हैं। इस तराज़ू को ठीक कर संगठन करना हिंदुओं को एक नीरस और निष्प्रयोजन कार्य मालूम होता है।

आओ, फिर भी सोच देखें कि हमारी अनेकता के बीज कहाँ-कहाँ

हैं। सबसे पहले हमारे कांग्रेसवाले भाई हैं। उनका कहना है कि संगठन ने कांग्रेस के काम को बहुत बड़ा धक्का पहुँचाया है। अच्छा हो यदि वे अपनी दृष्टि को थोड़ा विस्तृत कर उन प्रांतों में कांग्रेस की अवस्था को देखें, जहाँ अभी तक संगठन की आवाज़ नहीं उठी है। उन स्थानों में भी कांग्रेस का काम कुछ नहीं हो रहा। संगठन पर दोषारोपण करना संकीर्णता है। कांग्रेस ने तीन-चार साल काम किया है, उस समय उसके सामने एक कार्यक्रम था। अब कांग्रेस के सामने कोई काम नहीं है। कार्यक्रम को बंद कर दिया गया है या स्थगित कर दिया गया है। इस अवस्था में काम हो कैसे सकता है। कांग्रेस के सम्मुख एक कार्यक्रम है, संगठन के सम्मुख दूसरा। दोनों में परस्पर कोई विरोध नहीं। जब जनता के सम्मुख कोई कार्यक्रम न हो, तो जनता को पूर्ण अधिकार है कि वह अपने लिये दूसरा काम चुन ले। कई स्थानों पर दोनों प्रकार के व्यक्ति प्रयाप्त संख्या में हैं। उस जगह परस्पर झगड़ने की अपेक्षा अच्छा यही होगा कि काम बाँटकर किया जाय। संगठन के संबंध में यही समझ लिया जाय कि यह एक पृथक कार्य है। कांग्रेस के असहयोग के प्रस्ताव की दृष्टि से हमें सब प्रकार की सरकारी नौकरी से परहेज़ करना चाहिए। परंतु संगठन की दृष्टि से हमें पुलीस और फ़ौज की नौकरी के लिये हिंदुओं को उत्साहित करना चाहिए। परंतु इतना आवश्यक है कि आंदोलन के चलानेवाले सज्जनों में चरित्र-बल और त्याग की पर्याप्त मात्रा हो।

संगठन के लिये अगली समस्या आर्य-समाजियों और सनातन-धर्मियों की है। आर्य-समाजियों को चाहे संगठन से सहानुभूति हो या न हो, इसमें कोई संदेह नहीं कि उन्होंने अब तक संगठन के कार्य में किसी प्रकार का रोड़ा नहीं अटकाया। आर्य-समाज को यदि कोई शिकायत है, तो यही कि हिंदू-महासभा पर्याप्त उन्नति नहीं कर रही है।

मुझे विश्वास है, जिस समय संगठन का आंदोलन पर्याप्त शक्ति पकड़ लेगा, उस समय आर्य-समाज तन, मन, धन निछावर करके इस काम की सहायता करेगा। क्या अच्छा होता यदि आर्य-समाज आरंभ से ही इस आंदोलन में प्राण डालने का प्रयत्न करता। इस समय तक केवल सनातनधर्म-सभा ने ही संगठन का पूरा साथ दिया है। यद्यपि कई स्थानों पर इस समय आर्य-समाज और सनातनधर्म-सभाओं में पारस्परिक प्रतिस्पर्द्धा चल रही है, परंतु हमें पूर्ण आशा है कि हिंदू अपनी पुरानी सहिष्णुता का प्रमाण देंगे। परंतु हम यह देखकर चुप नहीं रह सकते कि सनातनधर्म के एक-दो अगुआओं ने हिंदू-महासभा का विरोध करना आरंभ कर दिया है। हम उनकी परिस्थिति का ध्यान दिलाकर उन्हें समझा देना चाहते हैं कि संपूर्ण हिंदू-जाति सनातनधर्म सभाओं के पीछे नहीं चल सकती। हिंदू शब्द की कई परिभाषाएँ हैं। हिंदू-महासभा की परिभाषा के अनुसार भारत में स्थापित हुए सभी धर्म हिंदू शब्द के अंतर्गत हैं। इन सभी धर्मों को महासभा में उतना ही अधिकार प्राप्त है, जितना सनातन-धर्म-सभा को। हम मानते हैं, सनातनधर्म-सभा को उन सब सिद्धांतों की रक्षा का पूरा अधिकार है, जिनका सनातनधर्म से संबंध है। परंतु सनातनधर्मी भाइयों को यह आशा कभी नहीं करनी चाहिए कि हिंदू-सभा सनातनधर्म के ही सिद्धांतों के अनुसार काम करेगी। महासभा के सदस्य बनने का अधिकार अछूत भाइयों को भी उतना ही है, जितना कि ब्राह्मणों और क्षत्रियों को। यदि कोई सज्जन महा-सभा में अछूतों के प्रवेश के विरुद्ध हैं, तो मेरी वैयक्तिक सम्मति में तो अछूतों को भी पूरा अधिकार है कि वे सभा में अपनी संख्या अधिक करके उन सज्जनों को सभा से बाहर कर दें, जो उन्हें सभा से निकालना चाहते हैं। हिंदू-महासभा किसी एक विशेष संप्रदाय की संपत्ति नहीं है।

सनातनधर्म सभाओं का कहना है कि हिंदू-महासभा हिंदुओं के सुधार में हाथ न डाले, यह सनातनधर्म-सभा का अपना काम है। मैं पूछता हूँ कि सनातनधर्म-सभा का विशेष कौन-सा मत है। वह शैव मत को मानती है या शाक्त को। वैष्णव-धर्म को मानती है या देवी की पुजारी है। वह इन सब मतों के मंदिरों को कैसे सुधार सकेगी? इसी प्रकार हिंदू-महासभा किसी भी मत के पूजा के तरीक़े में दख़ल नहीं देना चाहती। जो मंदिर जिस देवता का है, वह उसी के लिये रहेगा, परंतु उनकी आय-व्यय और संपत्ति का प्रबंध हिंदू-महासभा के हाथ में रहने से सभा यह देख सकेगी कि देवता की पूजा में अर्पण किया गया धन उचित रूप से धर्म की रक्षा में व्यय हो रहा है। वह दुराचार में तो नष्ट नहीं हो रहा है। इससे भी अधिक कठिन प्रश्न विधवाओं का है। सनातनधर्म-सभा सभी हिंदुओं की प्रतिनिधि नहीं है। विधवाओं के संबंध में सनातनधर्म-सभा के चाहे जो विचार हों, वह उनका प्रचार कर सकती है। हिंदू-सभा उनका विरोध कभी न करेगी। हिंदुओं में ही जाटों इत्यादि की कई ऐसी बिरादरियाँ हैं, जिनमें विधवा-विवाह को बिलकुल भी बुरा नहीं माना जाता। सनातनधर्म-सभा इन लोगों को हिंदू-समाज से बहिष्कृत नहीं कर सकती। इन लोगों को पूरा अधिकार है कि यह सभा में सम्मिलित होकर विधवाओं की रक्षा के संबंध में अपने विचार प्रस्तुत करें। इसी प्रकार सनातनधर्म-सभा भी अपने विचारों को सभा के आगे रख सकती है। परंतु वह सभा पर अपना एकाधिकार नहीं क़ायम कर सकती।

कई ऐसे सिद्धांत हैं जिन्हें सनातनधर्म-सभाएँ धर्म का नाश करनेवाला समझती हैं, और कई दूसरे हिंदू उन्हें ही इस समय जाति की रक्षा का एक-मात्र उपाय समझते हैं। हिंदू-सभा का यही कर्तव्य है कि इन सब भिन्न-भिन्न विचारों के मनुष्यों को एकत्र रख जाति की

उन्नति के लिये एक कार्य-क्रम निश्चित करे। यह काम कोई एक सांप्रदायिक संगठन नहीं कर सकता। यदि हिंदू-सभा भी इस काम को छोड़ दे, तो उसके अस्तित्व की ही कोई आवश्यकता नहीं रह जाती।

इससे आगे चलिए, तो मालूम होगा कि हमारी बिरादरियों के झगड़े भी हमारे संगठन के मार्ग में रोड़ा अटका रहे हैं। यदि किसी स्थान पर एक क्षत्रिय महाशय को सभापति बना दिया जाता है, तो उसमें ब्राह्मण इसलिये सम्मिलित नहीं होते कि उनका पारस्परिक वैमनस्य देर से चला आता है, जिसे वे छोड़ नहीं सकते। ब्राह्मण क्षत्रियों का नाम केवल उदाहरण के लिये दिए हैं, परंतु ऐसी अनेक छोटी-छोटी बिरादरियाँ हैं, जिनमें यह विचार काम कर रहा है। इन बिरादरियों के प्रधान अपना नेतृत्व या चौधरीपन बनाए रखने के लिये जाति के हित का ध्यान नहीं करते। हिंदू-महासभा का काम जाति को एक करना है। इन सब बिरादरियों को उसमें सहायक होना चाहिए।

मैंने उन तीन-चार अड़चनों के विषय में कुछ कहा है, जो सभा के मार्ग में रुकावट बन रही हैं। इन अड़चनों को उत्पन्न करनेवालों की सेवा में मैं इतना कह देना चाहता हूँ कि इस समय जाति की नाव भँवर में पड़ी हुई है। यदि यह नाव डूब गई, तो वे सब भी इसके साथ ही डूब जायँगे। सभाएँ, समाजें और बिरादरियाँ अकेली-अकेली नहीं जी सकतीं। क्या कभी हमने विचार किया है कि इन संकटों का क्या कारण है। मैं बता देना चाहता हूँ, यह सब महानुभाव दुर्योधन और जयचंद के भाई हैं। उन्हें बुरा कहते हुए भी यह उन्हीं के चरण-चिह्नों पर चल रहे हैं।

यह स्वार्थ और संकीर्णता हममें से किस प्रकार दूर हो। ऐसे आदमियों का हमारी समाज में होना आवश्यक ही है और इसका कारण हमारी पराधीनता और दीनावस्था है। इसका क्या उपाय हो सकता है?

संसार में एक उपाय तो यह देखा जाता है कि कोई शिवाजी, कोई वैरागी वीर या कृष्ण पैदा हो, जो अपनी शक्ति और बल से इस पाप के मल को जाति से निकालकर बाहर कर दे। परंतु इनको भेजनेवाला तो परमात्मा है। हम सब उसकी ओर अपने नेत्र करें और उससे अपनी रक्षा की प्रार्थना करें।

दूसरा उपाय यह हो सकता है कि जाति में एक ऐसा प्रबल आंदोलन उत्पन्न कर दिया जाय, जो उन लोगों को, जो जाति के हित की चिंता न कर वैयक्तिक लाभ के लिये इसे हानि पहुँचा रहे हैं या पहुँचाने से परहेज़ नहीं करते, यह दृढ़ निश्चय करा दें कि वे जाति की आँखों में धूल नहीं डाल सकते।

यदि कोई शक्ति अवतार धारण नहीं करती, तो हमें अपनी शक्ति से ही अपनी रक्षा करनी होगी। क्या हिंदू इस पुकार का कोई आशाजनक उत्तर देंगे?

रक्षा का उपाय

संसार के इतिहास में अनेक हृदयस्पर्शी कथाएँ मिलती हैं, परं संभवतः 'जॉन ऑफ़् ऑर्क' की कथा से अधिक हृदयद्रावक क दूसरी नहीं मिलेगी। जॉन एक फ़्रेंच कन्या थी। फ़्रांस के इतिहा में एक समय आया था जब इँगलैंड ने फ़्रांस पर आक्रमण कर उस बहुत-से प्रदेश को अधिकृत कर लिया था। फ़्रांस का सुंदर और सुर प्रदेश उजड़ने लगा। अँगरेज़ी सेना नगरों और क़सबों को लूट लगी। फ़्रांस के शासक ऐसे नपुंसक थे, उनमें जातीय अभिमान मि गया था कि वे दूसरी जाति की पराधीनता की ज़ंजीरों में जकड़ दि गए। फ़्रांस की अवस्था अत्यंत कष्टमय और करुणाजनक थी।

जो एक कृषक की कन्या थी वह अपनी जाति के कष्टों और उस प होनेवाले अत्याचारों की कथा सुनती, और घर में बैठ फूट-फूटकर रोती वह सोचती थी कि उसकी जाति की रक्षा कौन करेगा? कई रात्रि रोते और जागते बीत गईं। अंत में उसे एक दिन स्वप्न में एक फ़रिश्ते के दर्शन हुए, उस फ़रिश्ते ने ज़ोर से कहा—"जाओ अपने रा से जाकर कहो कि परमेश्वर ने तुम्हें अपने देश की रक्षा के लि भेजा है।"

वह अबोध गँवार लड़की अपने घर से निकल पड़ी। आगे इति हास की लंबी घटनाएँ हैं, वह किस प्रकार राजा तक पहुँची, कि प्रकार उसने सैनिक वेष धारण कर फ़्रांस की सेना का सेनापति अपने हाथ में ले अँगरेज़ों को पराजित किया।

जॉन ऑफ़् ऑर्क उस समय फ़्रांस के स्त्री-पुरुषों का प्राण बन ग थी। सभी स्त्री-पुरुष चलते-फिरते और काम करते दीखते थे। ज

ऐसा प्रतीत होता था कि इन सबकी इंद्रियाँ जॉन के मस्तिष्क की अनुगामी हैं। इस कन्या की प्रतिमूर्ति हम उस राजपुत्री में देख पाते हैं, जो बौद्धों के अत्याचारों को सहन न कर सकी थी। वह रो-रोकर कहती—"किं करोमि ? क्व गच्छामि ? को वेदानुद्धरिष्यति ? क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? कौन वेदों की रक्षा करेगा ?" बौद्ध लोग हमारे बच्चों की जान और कन्याओं के सतीत्व पर तो हाथ नहीं डालते थे। उनके साथ तो हमारा केवल सांप्रदायिक भेद था। वे अपने सिद्धांतों की शिक्षा अपने ढंग पर देते थे। राजकुमारी वेदों का अपमान न सह सकती थी। हम नित्य नई घटनाएँ सुनते हैं, अमुक स्थान पर लड़की को उड़ा लिया गया, अमुक स्थान पर बच्चों को इकट्ठे कर उठा ले गए, परंतु कुछ असर नहीं होता। लखनऊ में एक ब्राह्मण बीमार था, एक मुसलमान डॉक्टर उसकी चिकित्सा करने आता था। ब्राह्मण मर गया और डॉक्टर ने उसकी स्त्री को बहकाकर घर में रख लिया। हरिद्वार में मैंने सुना कि एक दर्ज़ी दूकानदार ने एक हिंदू-लड़की को घर में रख लिया है, और उससे यह काम लेता है कि वह दूसरी लड़कियों को उसके पास बहकाकर ले आती है, और वह उन्हें ग़ायब कर देता है। ऐसी ही घटनाओं की सूचना सीमांत-प्रदेश से हमें मिलती है। बिहार और पश्चिमीय बंगाल में नवयुवती विधवाओं को ज़बरदस्ती उठाकर छिपा लिया जाता है! क्या कोई ऐसा हृदय है, जो इन घटनाओं को सुन-कर व्यथा से तड़फ़ उठे और कहे—"कौन रक्षा करेगा ?" भगवान् कृष्ण ने कहा तो है कि "जब अत्याचार बढ़ जाता है, तो वे रक्षा करने आते हैं।" या तो अभी अत्याचार अधिक नहीं हुआ या बुलाने-वाला कोई नहीं है।

हमें धमकियाँ दी जाती हैं कि तुम इसलाम के विरुद्ध संगठन करते हो। हाँ, यदि लड़कियों को उठा ले जाना इसलाम है, तो हमारा संग-

ठन इसलाम के विरुद्ध है। यदि बच्चों को उड़ा ले जाना इसलाम है, तो हमारा संगठन इसलाम के विरुद्ध है। हमें इसे मानने में कोई लज्जा नहीं कि यदि छल-प्रपंच से हिंदुओं में फूट डालने का नाम इसलाम है, तो हम इसलाम के विरुद्ध हैं। यदि इसलाम हिंदू-जाति को नष्ट करनेवाली शक्ति का नाम है, तो हमारा संगठन इसलाम के विरुद्ध है। यदि इसलाम हमारा पड़ोसी और भाई बनकर रहने के लिये तैयार हो, तो शत्रुता तो दूर रही, हम इसलाम को गले लगाने के लिये तैयार हैं। यदि मुसलमान भाई स्वराज्य के आंदोलन में हिंदुओं पर एहसान करके सम्मिलित होना चाहें, तो न हों। उन्हें ऐसा करना हो, तो अपना कर्तव्य समझकर करें। स्वराज्य का आंदोलन इसी अवस्था में चल सकता है, वर्ना नहीं।

हमारी समस्या के विकट होने के कई कारण हैं। जो कुछ मुसलमान हमारे साथ करते हैं, हम उस सबका इलाज ख़ूब अच्छी तरह कर लेते, यदि इस देश में मुसलमानों का ही राज्य होता, तो हम समझ लेते कि हमें अपनी रक्षा स्वयं करनी है। दुःख यह है कि हमें अपनी रक्षा के लिये उस सरकार का मुख ताकना पड़ता है, जो हमारी जाति के दुःख और अपमान को अनुभव नहीं कर सकती। सरकार के अपने हित और हैं, इसलिये हमारी अवस्था उससे कहीं अधिक विकट है जितनी वह दीख पड़ती है।

हमें यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि एक वही आंदोलन जीवित रह सकेगा, जो जाति की इस आपत्ति से रक्षा कर सकेगा। यदि कोई भी आंदोलन सफल न हो सका, तो इस जाति का अस्तित्व शेष न रहेगा, और उसके साथ ही सब आंदोलन भी समाप्त हो जायँगे। हमें हर समय अपने मस्तिष्क और हृदय में यह ध्यान रखना चाहिए कि हम किसी-न-किसी प्रकार अपनी जाति की सेवा में कुछ भाग ले सकें। इसके साथ ही हमें यह भी ध्यान में रखना चाहिए

कि जिस आंदोलन को अपना सर्वस्व बना प्रयत्न में लगे हुए हैं, वह हमें हमारे उद्देश्य की ही ओर ले जा रहा है, या अन्य किसी ओर। मेरी प्रार्थना है कि यदि इस प्रकार सोचने पर हमें अपना आंदोलन उद्देश्य के पथ से च्युत प्रतीत हो, तो हमें उसे छोड़ देना चाहिए, या उसे उद्देश्य के पूरे करनेवाले आंदोलन में मिला देना चाहिए। सबसे पहले मैं आर्य-समाज को ही लेता हूँ, क्योंकि वर्तमान में यही सबसे पहला आंदोलन है। अब आर्य-समाज के लिये अपने उद्देश्य की ओर जानेवाले मार्ग का परख लेने का समय आ गया है। आर्य-समाज का उद्देश्य हिंदू-जाति का सुधार और उसका रक्षा है या कुछ और ? यह हिंदू-जाति और सभ्यता का अंश है या मुसलमान, सिख, ईसाई आदि पंथों की तरह हिंदू-धर्म से पृथक् और स्वतंत्र एक नया पंथ है। इस समय तक आर्य-समाज क्रियात्मक जीवन में बिलकुल हिंदू रहा है। (यद्यपि आर्य-समाज की एक पार्टी के कुछ सभासद अपने को हिंदू कहने के लिये तैयार नहीं) हिंदू इसलिये क्योंकि हिंदू कोई संप्रदाय नहीं, यह एक सामाजिक संगठन (Social system) है, जिसका सबसे बड़ा चिह्न जाति-पाँति का बंधन है। इस समय समाज के दोनों दल इस जाति-पाँति के बंधन के संगठन में सम्मिलित हैं, इसलिये इन दोनों को पक्का हिंदू कहना चाहिए, यद्यपि यह दोनों दल अपने धर्म के सार्वभौम होने का अभिमान करते हैं। इस आर्य-समाज के हिंदू होने से यह स्पष्ट है कि समाज का उद्देश्य हिंदू-जाति की उन्नति और रक्षा है। इसका अंतिम उद्देश्य वैदिक धर्म को सार्वभौम धर्म बनाना है। यह भी हिंदू-धर्म का ही काम है।

वैदिक धर्म के प्रचार का एक उपाय तो यह हो सकता है कि इसे एक नया रूप देकर इसका प्रचार किया जाय। मुझे भी कभी-कभी ऐसा ख़्याल आ जाता था। अस्तु, यदि किसी आर्य-समाजी के मन में

ऐसा विचार हो, तो उसे अपने को हिंदू-समाज से एक
पृथक् कर लेना चाहिए। अन्य मतावलंबियों को अपनी समा
में सम्मिलित करते हुए उन्हें अपनी संतान का विवाह आ
इसी समाज में करना और हिंदू-समाज के सामाजिक संगठन
पृथक् हो जाना चाहिए। यह तो है संप्रदाय बनाने का ढं
यदि किसी में इतना साहस न हो, तो उसके लिये यही कहा जाय
कि वह हिंदू ही है और कुछ नहीं। इस अवस्था में समाज के कामों
एक ही कसौटी रह जाती है, और वह यह कि उनका काम हिंदू-जा
के हित के कहाँ तक अनुकूल है। इस समय हिंदू-जाति का हि
केवल इसी बात में है कि इस जाति की भिन्न-भिन्न समाजें और सं
दाय मिलकर एक संगठन बनाएँ। अपनी-अपनी डेढ़ ईंट की मस्जि
बनाने से जाति का भला नहीं हो सकता। आर्य-समाज का शि
प्रचार का काम संसार की दृष्टि में चाहे कितना ही बड़ा और अ
प्रतीत हो, वह वास्तव में निरर्थक और व्यर्थ है। केवल शिक्षा-प्र
को ही अपना उद्देश्य बना लेने से समाज अपने उद्देश्य से सैक
कोस दूर चला गया है। हिंदू-समाज पर दिन-प्रति-दिन वि
पड़ती जा रही है, और समाज को केवल अपने स्कूलों के लिये
करने और उनके गुण गाने से ही मतलब है। इस शिक्षा का उद्दे
क्या है? "क्योंकि लोगों को सरकारी नौकरी की इच्छा है, इसलिये
नवयुवकों को नष्ट होने से बचाकर उसे पूरा करने का प्रयत्न कर
हैं।" इसमें केवल दृष्टि-कोण का भेद है। यदि देश और धर्म
चिंता में भूखे रहना, सांसारिक सम्मान की चिंता न करना
अन्य सैकड़ों कष्ट सहन करना जीवन का नष्ट होना है, तब तो अ
आपकी शिक्षा का उद्देश्य ऊँचा और अच्छा है। आपके वि
के अनुसार हक़ीक़त ने अपना जीवन नष्ट कर दिया, उसने सांसा
सुख-भोग और मान-प्रतिष्ठा की चिंता नहीं की। आपके विचार में

प्रताप मूर्ख था, जो वनों में अपनी स्वतंत्रता की रक्षा के लिये भटकता फिरता था, और उसके बच्चे अनाज के लिये तरसते थे। आपकी सम्मति में मानसिंह बुद्धिमान् मनुष्य था, क्योंकि वह ख़ूब सुख तथा सम्मान भोगता था। आपकी शिक्षा से कुछ मनुष्यों को सांसारिक सुख मिल जाता है, सो ठीक है, परंतु इससे जाति में जीवन आता है या मृत्यु? प्रश्न होता है कि समाज के लिये शिक्षा के प्रचार की आवश्यकता ही क्या है?

उत्तर मिलेगा, समाज का उद्देश्य विद्या-प्रचार है। मैं पूछता हूँ, विद्या का अर्थ क्या है? जिस समय देश में इस्लाम का शासन था अरबी, फ़ारसी पढ़ने से नौकरियाँ मिलती थीं, उस समय क्या उर्दू के इल्मोअदम और इसलामी साहित्य का प्रचार ही विद्या थी। उस समय क्या ऐसे मकतब बनाना ही समाज का उद्देश्य होता? यदि ऐसी ही बात है, तो बलिहारी है इस मस्तिष्क की। क्या ऐसी ही शिक्षा से हिंदू-जाति का उद्धार और वैदिक सभ्यता का प्रचार होगा। कहा जाता है कि वर्तमान शिक्षा के बिना आर्य-समाज के सिद्धांत समझ में नहीं आते। मैं पूछता हूँ, जो लोग बुद्ध और शंकर के दर्शन को समझ सकते हैं, उन्हें क्या आर्य-समाज के सिद्धांत समझ में नहीं आ सकते। फिर भी सज्जनो, मैं बड़ा ही नादान और निराला हूँ, जो इतने बड़े काम के महत्त्व को नहीं समझ सकता। काम के महत्त्व को मैं समझता हूँ और काम करनेवालों के लिये मेरे हृदय में सम्मान है, परंतु भेद इतना है कि मैं इसे ठीक मार्ग नहीं समझता। अच्छा होता यदि इतनी शक्ति और धन जाति की भलाई में ख़र्च होता। बंगाल, बंबई या संयुक्तप्रांत में कहीं भी इतना रुपया नष्ट नहीं होता, जितना पंजाब में। यह सब काम तो अब शिक्षा-सदस्य के साथ मिलकर किया जा सकता है। परंतु पंजाबी समझें कैसे, इनकी प्रकृति अपने ही ढंग की है।

गरमी की ऋतु में रेल का सफ़र कीजिए तो स्टेशनों पर सेवा-समिति के सदस्य ठंडा पानी पिलाते मिलेंगे, कई स्थानों पर बनिये लोग यात्रियों को बरफ़ का पानी पिलाने के लिये रुपया दे देते हैं। मैंने यात्रियों को कहते सुना है, भाई धन्य जन्म है! प्यासों को पानी पिलाना, इससे बढ़कर और क्या पुण्य है ? यदि सेवा-समितिवाले अपने सदस्यों की नामावली तथा काम की रिपोर्ट तैयार करें, तो बड़ी भारी पुस्तक बन सकती है। परंतु शोक है, मेरी समझ ही निराली है। मैं इस काम का कुछ मूल्य नहीं समझता। इस प्रकार समय और शक्ति के व्यय को मैं निरर्थक समझता हूँ। इस प्रकार पानी पिलाने से जाति में कभी जीवन नहीं आ सकता। रेल के यात्रियों को पानी पिलाना रेलवे का कर्तव्य है। हमारा काम शिकायतें करके रेलवे को इस काम के लिये बाधित करना है। परंतु होता क्या है—सरकारी क़ुली बाबुओं का काम करते हैं, और सेवा-समिति अवैतनिक रूप से क़ुलियों का काम करती है। ठीक यही अवस्था हमारी समाज तथा सनातनधर्म-सभाओं की है। वे सरकारी शिक्षा-प्रचार, जो सरकार का अपना काम है, व्यर्थ अपने सिर लेकर प्रसन्न हो रहे हैं।

आर्य-समाज के विषय में इतना कुछ कहने से मेरा अभिप्राय यह है कि समाज के सभासद सोच देखें कि वास्तव में उनके काम का क्या परिणाम निकल रहा है ? हिंदू-जाति पर जो अवस्था बीत रही है, उसे देखते हुए क्या समाज को अपना ढंग बदलने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती ? क्या यह कहना अनुचित होगा कि समाज अपनी शक्ति और समय को हिंदू-जाति के हित के लिये व्यय करे तो अच्छा हो।

दूसरी बड़ी संस्था सनातनधर्म-सभा है। बहुत हद तक सनातनधर्म-सभा आर्य-समाज के मुक़ाबले का ही काम कर रही है। आर्य-

ठीक है कि सनातनधर्म-सभा में प्रायः पुराने विचार के मनुष्य हैं; परंतु क्या वह यह स्वीकार नहीं करेंगे कि हमारी जाति में कई ऐसे अवगुण घुस आए हैं, जो इसे घुन की भाँति खोखला कर रहे हैं। क्या इन व्याधियों को दूर करना सनातनधर्म का कर्तव्य नहीं है? क्या भगवान् कृष्ण यों ही कहते हैं—"जब-जब धर्म की ग्लानि होती है, तब-तब मैं उसे उठाने के लिये आता हूँ।" क्या इस समय धर्म की ग्लानि नहीं हो रही? क्या स्मृतियाँ समय-समय पर बदलती नहीं रहतीं? क्या सनातनधर्म-सभा का यही उद्देश्य है कि जो सभा जाति की रक्षा के लिये प्रयत्न करे उसके विरोध में खड़ी हो जाय। यदि सनातन-धर्म-सभा बाल-विवाह को रोकने का और विधवाओं की रक्षा का प्रबंध न करेगी, शुद्धि की दूर ही से प्रशंसा कर अपने हाथ में न लेगी, अछूतोद्धार को अपने हाथों में न लेगी और उन्हें हिंदुओं के पूरे अधिकार न देगी, तो वह याद रक्खे कि वह स्वयं अपने पैर में कुल्हाड़ी मारेगी। किसी संप्रदाय विशेष को लेकर सनातनधर्म-सभा चल नहीं सकती, ऐसा करने से अन्य संप्रदाय इससे विमुख हो जायँगे। परंतु यदि सनातनधर्म-सभा उपर्युक्त कामों को अपना ले, तो हिंदू-सभा का काम ही सनातनधर्म-सभा का काम बन जायगा और सनातनधर्म-सभा हिंदू-संगठन का एक अंग बन जायगी। परंतु यदि सनातनधर्मी भाई विशेष व्यक्तियों के वैयक्तिक लाभ की इच्छा से फैलाए जाल में फँस, कौंसिलों और म्युनिसिपिल कमेटियों के झगड़ों में फँस जायँगे, तो वे भी उसी बीमारी का शिकार हो जायँगे, जिसका शिकार हमारे मुसलमान भाई बन रहे हैं, या हिंदू-जाति की दूसरी बिरादरियाँ बन रही हैं। इस प्रकार धड़ेबंदी के जनून में सनातनधर्म-सभा जाति के टुकड़े-टुकडे करके भयंकर पाप की भागी और हिंदुओं के नाश का कारण बनेगी।

तीसरी संस्था हिंदू-संगठन है, जो हिंदुओं को जातीयता के आ-धार पर एक करने के विचार से चलाई गई है। इसकी हानि जाति की हानि है। हिंदुओं का स्वभाव है कि वे अपने दल या संप्रदाय के लिये पृथक्-पृथक् सब कुछ करने के लिये तैयार रहते हैं, सम्मिलित जाति का काम उन्हें नहीं भाता। फूट, वैमनस्य और अकर्मण्यता का विष हमारे शरीर में बहुत गहरा चला गया है। शरीर से विष को निकालने के लिये इंजेक्शन 'Injection' की आवश्यकता होती है। इस समय नवयुवकों के एक ऐसे दल की आवश्यकता है, जो अपने को इस प्रकार के इंजेक्शन के लिये अर्पण कर दे। यदि हम इस प्रकार का एक दल बना सकें, तो हमारे उद्देश्य में सफलता हो सकती है, और हिंदू-जाति की जीवन-रक्षा भी हो सकेगी।

ओ३म्

"आर्य-साहित्य-विभाग" ग्रन्थ माला का ४ था पुष्प

मूर्तिपूजा मीमांसा

लेखक—

बुद्धदेव मीरपुरी आर्योपदेशक
आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा लाहौर ।

प्रकाशक
अध्यक्ष—
"आर्य्य साहित्य विभाग"
आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पञ्जाब सिन्ध
बलोचिस्तान आदि लाहौर ।

प्रथमवार २००० | वैशाख १०६ दयानन्दाब्द | मूल्य ≡)

"आर्य्य-साहित्य-विभाग" ग्रन्थमाला

सम्पादक—

वाचस्पति ऐम० ए०

ग्रन्थाङ्क ४

श्री ओम् ... आर्य
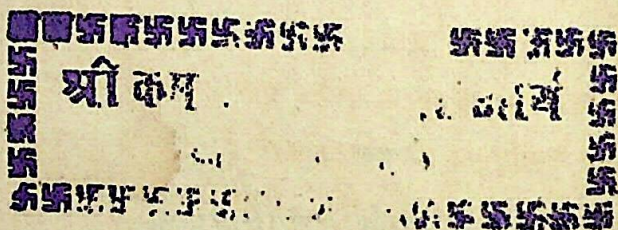
प्रकाशक—

अध्यक्ष 'आर्य्य-साहित्य-विभाग,'

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा लाहौर।

मुद्रक—

मलिक हरभगवानदास महरोत्रा

नवजीवन प्रेस, मैक्लेगन रोड, लाहौर।

❀ समर्पणम् ❀

जिनके हृदय में आर्यसमाज के सिद्धान्त तथा महर्षि दयानन्द के लिये अगाध श्रद्धा है, जो प्रभु के अनन्य भक्त हैं, प्रत्येक समय, प्रत्येक अवस्था में आर्यसमाज की उन्नति का ही चिन्तन करते हैं, जो सुख दुःख लाभालाभ सम्पूर्ण परिस्थितियों में प्रसन्नचित्त रहते हैं, जिनके मुखमण्डल को देखकर दुःखी से दुःखी मनुष्य का भी हृदय-कमल खिल जाता है उन श्रद्धेय ला० खुशहालचन्दजी खुर्सन्द की सेवा में यह छोटा-सा उपहार सादर समर्पित करता हूं।

भवदीयो—
बुद्धदेवः

॥ ओ३म् ॥

भूमिका

यह ग्रन्थ 'आर्य साहित्य विभाग' ग्रन्थ माला का चौथा ग्रन्थ है। इसके लेखक श्रीमान् प० बुद्धदेव जी मीरपुरी हैं जिन्होंने इस प्रकार के विषयों पर कई शास्त्रार्थों में विजय प्राप्त की है। यह ग्रन्थ आपके अनुभव का निचोड़ है। पहले तीनों ग्रन्थ ईश्वरभक्ति के साथ सम्बन्ध रखते हैं। संसार में लोग ईश्वर के स्थान पर जड़ मूर्ति आदि की पूजा करके दुःखी होते हैं। ऐसे लोगों को उस पाप और दुःख से बचाने के लिये यह ग्रन्थ प्रकाशित किया जाता है।

सहस्रों वर्षों के बाद ऋषि दयानन्द ने सच्ची वैदिक ईश्वरभक्ति का स्वरूप संसार के समाने रखा। उस महापुरुष ने लोगों को जड़ से हट के ईश्वर की ओर आने का सन्देश दिया। उसने अपने ग्रन्थों में मूर्ति पूजा का पूरे बल से खण्डन किया और ईश्वर पूजा का युक्ति प्रमाणों द्वारा प्रतिपादन किया। परन्तु कुछ लोग पक्षपात वश वा अविद्या वश उस ऋषि के ग्रन्थों पर आक्षेप उठाने लगे कि उनमें मूर्तिपूजा का विधान है इस ग्रन्थ के पहले ही अध्याय में ऐसे आक्षेपों का युक्तियुक्त उत्तर दिया गया है।

दूसरे अध्याय में सिद्ध किया गया है कि मूर्तिपूजा का पुराणों

में भी खण्डन पाया जाता है। पुराणों के श्लोकों से दिखाया गया कि जिन को पौराणिक लोग परमात्मा के अवतार मानते हैं वे स्वयं कहते हैं कि हम परमात्मा नहीं हैं। इस लिये परमात्मा के स्थान पर उनकी मूर्तियों की पूजा अनीश्वर पूजा है। पुराणों में मूर्तिपूजा का फल दुःख है, ऐसा लिखा है।

मूर्तिपूजा को सिद्ध करने के लिये जो युक्तियां सनातन धर्मी भाई देते हैं उनका खण्डन तीसरे अध्याय में किया गया है।

चौथे अध्याय में वेद के प्रमाणों से मूर्तिपूजा निषिद्ध सिद्ध की गई है।

इस पुस्तक के पाठ से पाठकों को ज्ञान हो जायगा कि मूर्तिपूजा का वेद और पुराण निषेध करते हैं। जितनी युक्तियां मूर्तिपूजा को सिद्ध करने के लिये दी जाती हैं वे सब हेत्वाभास है और जितने आक्षेप इस विषय में ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों पर उठाए जाते हैं वे सब असङ्गत हैं।

आशा है कि आर्य जानता 'आर्य साहित्य विभाग' के ग्रन्थों की बिक्री को अधिक से अधिक बढ़ा कर ऐसे ग्रन्थ बहुत संख्या में प्रकाशित करने में हमारा हाथ बटायगी और वैदिक धर्म प्रचार के इस उत्तम साधन को सुदृढ़ करने का श्रेय प्राप्त करेगी।

वैशाख दयानन्दाब्द १०४

वाचस्पति (सम्पादक)
अध्यक्ष
आर्य साहित्य विभाग

विषय-सूची

विषय पृष्ठ

ओ३म्

मूर्तिपूजा मीमांसा

प्रथम अध्याय

मूर्तिपूजा और आर्यसमाज

आर्यसामाजिक भाई इस बात को भली प्रकार जानते हैं कि जब कभी पौराणिकों से शास्त्रार्थ होता वा आर्यसमाज के विरुद्ध पौराणिक पंडित भाषण देते हैं तो झट कह देते हैं कि आर्यसमाजियो! अपने घर को टटोलो जिस मूर्तिपूजा का तुम खण्डन करते हो वह

तुम्हारी सत्यार्थप्रकाश आदि सब पुस्तकों में लिखी हैं फिर किस मुँह से खण्डन करते हो।

इन पृष्ठों में मैं उन सब प्रमाणों वा युक्तियों का उत्तर समुचित रूप से बिना किसी पक्षपात के, जो पौराणिक पण्डित पेश करते हैं देना चाहता हूँ, जिससे भली प्रकार जनता को पता लग जायगा कि—जो महर्षि दयानन्द इतना ज़बरदस्त मूर्तिपूजा का खण्डन करता था यह कैसे सम्भव हो सकता है कि उसकी बनाई हुई पुस्तकों में मूर्तिपूजा का विधान हो, विशेष करके जो आक्षेप पं० कालूरामजी शास्त्री वा पं० अखिलानन्द जी ने अपनी पुस्तकों में किए हैं उनका अच्छी तरह से खण्डन किया जायगा।

मनसा परिक्रमा

प्रश्न १—स्वामी दयानन्द ने अपनी बनाई संध्या में मनसा परिक्रमा लिखी है। प्रथम तो ऊपर लिखा है कि—"अथ मनसा परिक्रमा-मन्त्राः।" इस हैडिङ्ग के बाद नीचे "प्राची दिगग्निरधिपतिः" इत्यादि वेद के ६ मन्त्र परिक्रमा करने के लिखे हैं, जिन मन्त्रों से हमारे समाजी भाई नित्य-प्रति ईश्वर की मानसिक परिक्रमा करते हैं। मन से परिक्रमा करना तब ही हो सकता है जब कि ईश्वर की मूर्ति कायम करली जावे। मूर्ति कायम करके उसके चारों तरफ़ घूमना मूर्तिपूजा है क्योंकि बिना स्वरूप शरीर या मूर्ति के परिक्रमा हो ही नहीं सकती।

हमारे आर्यसमाजी भाइयों को ईश्वर की मूर्ति नित्य बनानी पड़ती है यह बात दूसरी है कि—सनातनधर्मी चार अंगुल या दो बालिश्त की मूर्ति बनाते हैं और आर्य-समाजी सौ दो सौ मील लम्बी और पचास साठ मील चौड़ी बनाते हैं, परन्तु बिना मूर्ति के इनकी सन्ध्या हो ही नहीं सकती। जब यह प्रति दिन परमात्मा की मूर्ति बनाकर उस की परिक्रमा करते हैं तो क्या कोई विचार शील मनुष्य कह सकता है कि ये मूर्तिपूजा नहीं करते?

उत्तर १—न्यायदर्शन में गौतमाचार्य ने लिखा है—

अविशेषाभिहितेऽर्थे वक्तुरभिप्रायादर्थान्तरकल्पना वाक्छलम्। १।२।१२॥

जहां खास अर्थ न किया हो। साधारणतया जो बात कही हो वहां वक्ता के अभिप्राय (मतलब) को न लेकर उससे उलटा परिणाम निकालना वाक्छल यानि वाणी का छल होता है। जितने भी प्रमाण महर्षिकृत पुस्तकों में से पौराणिक मूर्तिपूजा की पुष्टि में पेश करते हैं उन सब में वाक्छल होता है। इस बात को हम स्थान २ पर दर्शायेंगे ताकि पाठकों को पता लग जावे कि ये किस ढंग से अपना कार्य सिद्ध करते हैं।

मनसा परिक्रमा के मन्त्रों के विषय में ऋषि संस्कार विधि में लिखते हैं—नीचे लिखे मन्त्रों से "सर्वव्यापक परमात्मा की स्तुति प्रार्थना करे इन मन्त्रों को पढ़ते जाना और अपने मन से

चारों ओर बाहिर भीतर परमात्मा को पूर्ण जानकर निर्भय निःशंक उत्साही आनन्दित पुरुषार्थी रहना।"

उपर्युक्त लेख में कितनी साफ़ परमात्मा की सर्वव्यापकता वा पूर्णता दिखलाई है, कभी साकार मूर्ति वाला सर्वव्यापक हो सकता है? ऐसा साफ़ ऋषि का लेख होने पर भी उससे मूर्तिपूजन सिद्ध करना दुराग्रह नहीं तो और क्या है? यहां परिक्रमा के अर्थ परमात्मा के चारों तरफ़ चक्र लगाना नहीं है, किन्तु जो मनुष्य सन्ध्या करता है उसकी अपेक्षा (निस्वत) से चारों तरफ़ नीचे ऊपर भागना है। जब अघमर्षण मन्त्र में मन परमात्मा की महिमा को देखता है तो पाप की इच्छा से घबराकर चारों ओर भागता है किन्तु जिधर भी जाता है उधर भगवान् को मौजूद, सर्वव्यापक पाता है, परिणाम स्वरूप थककर उसी ब्रह्म में स्थित हो जाता है। बस यह सिद्ध होगया कि—परिक्रमा के अर्थ हमारे शरीर की अपेक्षा (निस्वत) से चारों तरफ़ नीचे ऊपर भागने के हैं, परमात्मा के चारों ओर घूमने के नहीं।

बलिवैश्वदेव और मूर्ति पूजा

प्रश्न २—पंच महायज्ञ विधि में बलिवैश्वदेव प्रकरण में स्वामी दयानन्द जी ने नीचे लिखे मन्त्र बोल २ कर ईश्वर के खाने के लिए बलि रखने की आज्ञा दी है। नीचे लिखे मन्त्रों से बलि रख कर ईश्वर को भोग लगाया जाता है—

ओं सानुगायेन्द्राय नमः, सानुगाय यमाय नमः, सानुगाय वरुणाय नम इत्यादि।

स्वामी दयानन्द जी ने इन्द्र, यम, वरुण, सोम, मरुत, भद्रकाली यह सब नाम परमात्मा के मान कर लिखे हैं। यह बात हमारी समझ में नहीं आती कि जब आर्यसमाजी ईश्वर को भोग लगावें तब तो ईश्वर गट्ट गट्ट खा जावे और स्वामी दयानन्द भोग लगाने वालों को धार्मिक कहें किन्तु जब सनातन धर्मी ईश्वर को भोग लगावें तब ईश्वर निराकार हो जावे। ईश्वर को ही नहीं बल्कि "वनस्पतिभ्यो नमः" इस से समाजी वृक्षों को भी दाल भात रोटी खिलाते हैं। बस भोग लगाना वेशक मूर्तिपूजा है और आर्य समाजी मूर्ति पूजा करते हैं।

उत्तर २—इमे त इन्द्र ते वयं पुरुष्टुत ये त्वारभ्य चरामसि प्रभुवसो। नहि त्वदन्यो गिर्वणो गिरः सघत् क्षोणी-रिव प्रति नो हर्य तद्वचः ॥अ० २०।१५।४॥

हे अत्यन्त स्तोतव्य प्रभूतैश्वर्य सम्पन्न विघ्नविनाशक परमात्मन् जो हम तेरा आरम्भ करके अर्थात् प्रत्येक सत्कर्म में तेरा ध्यान करके व्यवहार करते हैं, वे हम तेरे ही हैं तुझ से भिन्न कोई और उपासक की पुकार को नहीं सुनता। पृथिवी की भान्ति तू हमारी प्रार्थना स्वीकार कर।

इस मन्त्र में भगवान् ने इस बात का उपदेश दिया है कि—

प्रत्येक कार्य के आरंभ में परमात्मा का नाम अवश्य लेना चाहिये। बलिवैश्व देव यज्ञ में जो परमात्मा के इन्द्र, वरुण आदि नाम लेकर बलिएं रक्खी जाती हैं वह परमात्मा को भोग नहीं लगाया जाता किन्तु इस वेदमंत्र के अनुसार कर्म से प्रथम भगवान् का नाम स्मरण करके कीड़े मकोड़े पशु पत्ती आदि को अन्न दिया जाता है। बाकी रही वृक्षों को भोग लगाने की बात यह आपके समझ की भूल है। जैसे कोई मनुष्य दान देते समय कहता है, १०) धर्मशाला के लिए वा १०) मन्दिर के लिए। इस का अर्थ यह नहीं के धर्मशाला वा मन्दिर की ईंटों के लिए दान है बल्कि इसका अर्थ है कि मन्दिर वा धर्मशाला में रहने वालों के लिए यह दान है। इसी प्रकार वनस्पतियों के लिये अन्न देने के अर्थ है वृक्षों पर रहने वाले पक्षियों के लिए अन्न देना चाहिए। आज कल भी आर्य वा आर्य देविएं गरमियों में वृक्षों के नीचे पानी के वर्तन लटकाते हैं और कबूतर आदि जानवरों को अन्न डालते हैं यही बलिवैश्वदेव का बिगड़ा हुआ रूप है इस में मूर्ति पूजा की गंध भी नहीं है।

सोम पान

प्रश्न ३--स्वामी दयानंद ने

वायवायाहि दर्शतेमे सोमा अरंकृता। तेषां पाहि श्रुधि हवम्॥

इस मंत्र से आर्याभिविनय पुस्तक में ईश्वर को भोग लगाया

है। आप इस मंत्र के अर्थ में लिखते हैं कि— हे जगदीश्वर आप आओ यह सोमादि समस्त रस आपके लिए बहुत उत्तम रीति से तैयार किया है, सर्वात्मा से आप इस का पान करो। जब आर्याभिविनय में ईश्वर सोम रस के कटोरे भर-भर पीता है तो हमारा भोग क्यों नहीं खाता? आर्य समाज की यह नई फ़िलासफ़ी हमारी समझ में नहीं आती।

उत्तर ३— ऋग्० १।३।१।१। मन्त्र का अर्थ महर्षि करते हैं—"हे अनन्त बल परेश वायो! आप अपनी कृपा से ही हमको प्राप्त होओ, हम लोगों ने अपनी अल्प शक्ति से ओषधियों का उत्तम रस सम्पादन किया है, और जो कुछ भी हमारे श्रेठ पदार्थ हैं, वे सब आपके लिए अर्थात् उत्तम रीति से हमने बनाये हैं, और वे सब आपके समर्पण किये गये हैं, उनको आप स्वीकार करो (सर्वात्मा से पान करो) इस मंत्र के अर्थ में पान शब्द के अर्थ रक्षा हैं न कि पीना। वक्ता के अभिप्राय से उलटा अर्थ करना विद्वानों का काम नहीं है। देखिये ऋग्वेद भाष्य में महर्षि कृत इसी मन्त्र का अर्थ—"जैसे परमेश्वर के सामर्थ्य से रचे हुए पदार्थ नित्य ही सुशोभित होते हैं वैसे ही ईश्वर का रचा हुआ भौतिक वायु है उसकी धारणा से भी सब पदार्थों की रक्षा और शोभा है" कहिये अब भी आपकी समझ में आया या नहीं कि—पाहि वा पान का अर्थ रक्षा वा पालन है। दूसरी बात यह है कि—यहां सर्वात्मा से पान है न कि मुँह से, इस से भी पान का अर्थ रक्षा

है, और आप तो पान से भी मूर्ति पूजा सिद्ध नहीं कर सकते। तुलसीदास जी ने लिखा है।

विन पग चले सुने विन काना,
कर विन कर्म करे विध नाना।
रसना विना सकल रस भोगी,
विन वाणी वक्ता वड़ जोगी॥

इस से पान करते हुए भी परमात्मा की आंख नाक कान वाली मूर्ति सिद्ध नहीं होती किन्तु तुलसीदास के कथनानुकूल विना ही इन्द्रियों के परमात्मा सब काम करता है। कहिये अब आपकी समझ में आया या नहीं कि परमात्मा विना मुँह के कटोरे भर २ कर कैसे पीता है। ※

पटेले (सुहागे) की पूजा

प्रश्न ४—स्वामी दयानन्द जी अपने वनाए यजुर्वेद भाष्य में पटेले (सुहागे) का पूजन लिखते हैं। अपने खेत में चलने वाले लकड़ी के पटेले पर घी दूध शक्कर शहदचढ़ाना लिखा है, मन्त्र और स्वामी का अर्थ नीचे देखिये—

घृतेन सीता मधुना समज्यतां

※ यदि पान का अर्थ पीना भी मान लिया जाय, तब भी ऋषि

विश्वैर्देवैरनुमता मरुद्भिः ।
ऊर्जस्वती पयसा पिन्वमाना
अस्मान् सीते पयसाभ्याववृत्स्व॥

अर्थ—सब अन्नादि पदार्थों की इच्छा करने वाले विद्वान् मनुष्यों की आज्ञा से प्राप्त हुआ जल वा दुग्ध से पराक्रम सम्बन्धी सींचा वा सेवन किया हुआ पटेला घी तथा शहद वा शक्कर आदि से संयुक्त करो। पटेला हम लोगों को घी आदि पदार्थों से संयुक्त करेगा। इस हेतु से जल से वार २ बर्ताओ।

वेद का मन्त्र और स्वामी दयानन्द जी का अर्थ पाठक देख चुके, अब पाठक विचार लें कि—खेत के पटेला पर दूध, घी, शक्कर चढ़ाना क्या पूजन नहीं ? और फिर पटेला से घी, दूध,

---

के इन शब्दों से मूर्त्तिपूजा सिद्ध नहीं हो सकती—पौराणिकों के ठाकुर जी को भोग लगाने में तो ठाकुर जी के मुँह आदि अंग होते हैं यहां महर्षि स्पष्ट लिख रहे हैं—"सर्वात्मा से पान करो।" महर्षि इन शब्दों में स्पष्ट ही परमात्मा को निराकार और सर्वव्यापक बता रहे हैं, तो फिर परमात्मा का मुँह और मूर्त्ति की कल्पना कैसे ? अतः मूर्त्तिपूजा के साथ तो इन शब्दों का दूर का भी सम्बन्ध नहीं, इस मन्त्र के सारे अर्थ आर्याभिविनय से पढ़ जाओ, प्रभु के साथ स्नेह का अतिशय द्योतित हो रहा है। प्रभु प्रेम की मस्ती है। सच्चे भगवद्भक्त के हृदय के सच्चे समर्पण के भाव हैं। —(सम्पादक)

की प्रार्थना करना जड़ पदार्थों से मांगना भी मूर्ति पूजा नहीं। समाजियों में यही तो अद्भुतता है कि अनेक जड़ पदार्थों को पूजते हुए भी मूर्तिपूजा से घबराते हैं। विचित्र लीला है।

उत्तर ४—यजुर्वेद के बारहवें अध्याय में ६७ मन्त्र से लेकर ७१ मन्त्र तक कृषि विद्या का भली प्रकार वर्णन किया है। बोने के साधन कैसे हों, खाद कैसी डालनी चाहिए, बीज कैसा हो इत्यादि बातों का वर्णन खोल कर किया है। ऋषिकृत मन्त्र-भाष्य में से कुछ अर्थ देता हूँ।

इन खेतों में विष्ठा आदि मलिन पदार्थ नहीं डालने चाहियें, किन्तु बीज सुगन्धि आदि से युक्त करके ही बोवें कि—जिस से अन्न भी रोग रहित उत्पन्न होकर मनुष्यादि की बुद्धि को बढ़ावें। य० अ० १२ मं० ६६॥

सब विद्वानों को चाहिये कि—किसान लोग विद्या के अनुकूल घी मीठा और जल आदि से संस्कार कर स्वीकार की हुई खेत की पृथिवी को अन्न को सिद्ध करने वाली करें। जैसे बीज सुगन्धि आदि युक्त करके बोते हैं वैसे इस पृथिवी को भी संस्कार युक्त करें। य० १२। ७०॥

कैसा अच्छा वेद का उपदेश है कि—भूमि में अच्छी खाद डाल कर उसको उत्तम करना, बीज को भी अच्छी तरह देख कर वा श्रेष्ठ बना कर बोना चाहिये। जिस आम को सौंफ के अर्क में भिगोकर बोया जाता है, उसका नाम सौंफिया और

उसमें से सौंफ की सुगन्धि आती है। इसी प्रकार अगर शहद आदि में भिगोकर बोया जावे तो अवश्य उसका प्रभाव होता है। इस विद्या की बात को न समझ कर पौराणिक पण्डितों को यहां पर भी मूर्तिपूजा ही दीखती है। दीखे क्यों नहीं, कृषिविद्या से उनका क्या बने, मूर्तिपूजा से तो उनका पेट भरता है। कहो बुद्धि में आया या नहीं। यहां पटेले की पूजा नहीं किन्तु बीजों को मधु आदि में सींच कर बोना लिखा है।

ऊखल मूसल

प्रश्न ५—संस्कार विधि नामक पुस्तक में जात कर्म संस्कार में स्वामी दयानन्द ने ओखली मूसल को भोग लगवाया है। ओखली और मूसल दोनों को भोग लगाकर भी मूर्ति पूजन का खण्डन, यह उन्हीं से हो सकता है, जो भेड़ चाल से स्वामी दयानन्द की माया में पूरे फँस गए हैं। यदि इस मामले को पंचायत में दे दिया जावे कि—ओखली मूसल की पूजा करने वाला दयानन्दी समुदाय मूर्ति पूजक है या नहीं, तो ऐसी कोई वजह नहीं दीखती जिस वजह से आर्यसमाज पर मूर्ति-पूजक होने की डिगरी न मिले।

उत्तर ५—मैं तमाम पौराणिक पण्डितों को चैलेंज देता हूँ कि—अगर तुम में हिम्मत है, तो तुम संस्कार विधि में इतना शब्द दिखला दो कि—ओखली वा मूसल की पूजा करनी चाहिए।

क्यों झूठ पर कमर बांध ली है ? जिस मन्त्र को पौराणिक पेश करते हैं, वह यह है—

ओं शंडामर्का उपवीरः शौण्डिकेय उलूखलः ।
मलिम्लुचो द्रोणासश्च्यवनो नश्यतादितः स्वाहा ॥

इन दोनों मन्त्रों में कई कीड़ों के नाम वा उनको मारने का उपदेश है, ताकि प्रसूता को वा उसके बच्चे को कोई हानि न पहुँचा सके, और ये उलूखलादि सब कीड़ों के नाम हैं। कहिये क्या आप भी मूर्ति पूजा के अर्थ मूर्तियों को मारना करते हैं ? अगर नहीं करते तो क्यों कहते हैं कि यहां ओखली की पूजा है यहां तो उलूखल को मारना लिखा है। हां आपके भविष्य पुराण में अवश्य लिखा है—

राजंतं मूसलं चैव हलं पार्श्वेषु विन्यसेत् ।

सुन्दर मूसल की पूजा करनी चाहिये। कहिये अब डिगरी पौराणिक सभा पर होगी वा आर्यसमाज पर ? कहो तो यह मामला पंचायत में दे देवें।

कुश, दर्भ और मूर्तिपूजा

प्रश्न ६—संस्कार विधि में मुण्डन संस्कार में कुश दर्भ की पूजा लिखी है। क्या घास पूजने वाले मूर्ति पूजक नहीं ? पूजना ही नहीं किन्तु उस से प्रार्थना भी करते हैं—

ओषधे त्रायस्वैन ँ मैन ँ हि ँ सीः ।

अर्थ—हे ओषधि कुश! इस बालक की रक्षा कर, इसको मत मार। लीजिये कुश से बालक के बचाने की प्रार्थना करना क्या मूर्ति-पूजा नहीं है? अवश्य है किन्तु पक्षपात में उलझे हुए आर्य-समाजियों को ये बातें नहीं सूझतीं।

उत्तर ६—व्याकरण का एक नियम है, कि वचन, विभक्ति, पुरुष, काल आदि सब बातों में व्यत्य (तबदीली) होता है। इसी नियम के अनुसार इस मन्त्र के दो अर्थ होते हैं। जब परमात्मा के पक्ष में लगाते हैं तब मध्यम पुरुष का एक वचन होता है, और ओषधी का अर्थ है परमात्मा—हे ओषधे सर्व रोग नाशक परमात्मन्! इस बालक की आप रक्षा कीजिये। और जब इस मन्त्र का अर्थ ओषधी परक होता है तब व्याकरण के नियम से प्रथम पुरुष का एक वचन होता है, और अर्थ होता है यह ओषधी अपने गुणों से इस बालक के अनेक रोगों को दूर करती है। भला बतलाइए पाठकगण! इस मन्त्र में कहां मूर्ति-पूजा है किन्तु पौराणिक पण्डितों को तो हर बात में मूर्ति-पूजा ही सूझती है।

उस्तरा और मूर्त्तिपूजा

प्रश्न ७—संस्कार विधि में मुण्डन संस्कार में छुरे को विष्णु की डाढ़ बताना, उससे प्रार्थना करना, नमस्ते करना, आदि बहुत सी बातें लिखी हैं। अगर नाई का छुरा विष्णु की डाढ़ है तो वह निरा-

कार कैसे रहा, जब निराकार नहीं तो उसकी मूर्ति भी है और जब मूर्ति है तो उसकी पूजा भी करनी चाहिये। अगर आर्य समाजी जड़ पूजक नहीं तो जड़ को नमस्ते, नमस्कार आदि क्यों करते हैं। जादू वह जो सर पर चढ़ कर बोले। जो लोग इतना शोर मचाते थे कि जड़ की पूजा नहीं करनी चाहिये वे सचाई के आगे झुक गए और जड़ छुरे को नमस्कार आदि करके मूर्तिपूजक नहीं तो उस्तरा पूजक तो बन ही गए।

उत्तर ७—जो मन्त्र पौराणिक छुरे की पूजा सिद्ध करने के लिए देते हैं वह यह है—

शिवो नामासि स्वधितिस्तेपिता
नमस्तेऽस्तु मा मा हि ँ सीः।
निवर्तयाम्यायुषेऽन्नाद्याय प्रजननाय
रायस्पोषाय सु प्रजास्त्वाय सूवीर्याय ॥य० ३।६३॥

अर्थ—हे जगदीश्वर आप अविनाशी वज्रमय हैं आपका सुख-स्वरूप विज्ञान देने वाला नाम है। आप मेरे पालन करने वाले पिता हैं। आपको हमारा सत्कार पुर्वक नमस्कार हो। आप मुझको अल्पमृत्यु से युक्त न कीजिये। आयु, अन्न, प्रजनन अच्छी प्रजा, धन की रक्षा, बल, पराक्रम आदि सम्पूर्ण पदार्थ आप की ही भक्ति से मिल सकते हैं, इसलिए आस्तिक होकर मैं आपकी भक्ति करता हूँ।

मैंने वेदमंत्र का प्रमाण देकर साबित कर दिया है कि प्रत्येक कार्य भगवान् की प्रार्थना करके करना चाहिये। मुण्डन में भी ईश्वर की प्रार्थना के पश्चात् ही पिता अपने पुत्र के बालों को काटता है। यह उसकी आस्तिकता है। इस मन्त्र में स्वधिति आदि सम्पूर्ण नाम परमात्मा के हैं और परमात्मा ही से प्रार्थना वा उसी को नमस्ते यानी नमस्कार किया गया है, किसी जड़ छुरे उस्तरे को नहीं। महर्षि दयानन्दजी ने भी इस मन्त्र को ईश्वर वा विद्वान् परक ही लगाया है उस्तरा अर्थ नहीं किया। यह पौराणिक पण्डितों का छल है जो इस मन्त्र से छुरेकी पूजा सिद्ध करते हैं। हां भविष्य पुराण में अवश्य लिखा है—छुरिको रक्ष मां नित्यम्—हे छुरे तू मेरी रक्षा कर। इस पर कई पौराणिक कह देते हैं कि हम तो छुरे की पूजा इस लिए करते हैं कि सारा संसार ब्रह्म का स्वरूप है। इन पण्डितों का भी विचित्र मस्तिष्क है। कभी यह साबित करते हैं कि हम जड़ मूर्ति की पूजा नहीं करते, किन्तु उस में व्यापक परमात्मा की पूजा करते हैं। और कभी कहते हैं कि छुरे की पूजा इसलिये करते हैं कि सारा संसार ब्रह्म का स्वरूप है। यह वदतोव्याघात है, इसलिये मानने के लायक नहीं। अगर सारा संसार परमात्मा है तो फिर आप भी परमात्मा हुए। जब सम्पूर्ण ब्रह्म है तो पूजा किस की कौन करेगा?

"विष्णोर्दंष्ट्रोऽसि"—इसका अर्थ यह नहीं कि छुरा परमात्मा की डाढ़ है किन्तु "यज्ञो वै विष्णु" इस श्रुति के अनुसार विष्णु नाम यज्ञ का है और उस्तरा उसका साधन यानी हथियार है। इस पर कई पण्डित कहते हैं कि इस श्रुति का अर्थ यह नहीं कि यज्ञ का नाम विष्णु है, किन्तु यज्ञ विष्णु अर्थात् परमात्मा का नाम है, जब यह सिद्ध हो गया कि यज्ञ नाम परमात्मा का है तो छुरा ईश्वर की डाढ़ ही रहा। यहां इनका यह अर्थ शतपथ की शैली के विरुद्ध है क्योंकि "राष्ट्रं वै अश्वमेध, ज्योतिर्वै पुरिषं" इत्यादि सम्पूर्ण वाक्य हमारे ही अर्थ को पुष्ट करते हैं। दूसरी बात यह है कि अगर विष्णु का नाम यज्ञ है, तो इस में हमारी कोई हानि नहीं विष्णु का अर्थ यज्ञ, विष्णु यज्ञ को इसलिये करते हैं कि इस में डाले हुए सब पदार्थ जल वायु में व्याप्त हो जाते हैं इस लिये यहां उस्तरा यज्ञ का साधन है। यही अर्थ उपयुक्त है। "स्वधिते मैन ं हिं ं सीः ॥" इस श्रुति का भी अर्थ परमात्म परक है। हे स्वधिते अविनाशी अखण्डनीय परमात्मन्! आप इस बालक की आयु को लम्बा कीजिये। इसमें उस्तरे से नहीं किन्तु परमात्मा से ही प्रार्थना है।

रीढ़ की हड्डी और मूर्तिपूजा

प्रश्न ८—स्वामी दयानन्द जी ने सत्यार्थप्रकाश के सातवें समु-

ल्लास में लिखा है कि—हृदय, नाभि, रीढ़ की हड्डी नासिका-ग्रभाग वा किसी अन्य स्थान का ध्यान करना चाहिये। हम इन आर्यसमाजियों से पूछते हैं कि क्या यह मूर्तिपूजा नहीं है? आप तो मूर्तिपूजा का खण्डन करते थे और यहां तो स्वामी जी ने हड्डी की पूजा लिखी है। हड्डी पूजक बुरे होते हैं या मूर्तिपूजक ?

उत्तर ८—इस विषय में जो महर्षि दयानन्द का लेख है वह नीचे दिया जाता है जिससे पाठकों को पता लग जावे कि क्या यह हड्डी की पूजा है या परमात्मा की। स्वामी जी लिखते हैं—"जब उपासना करना चाहें तब एकान्त शुद्ध देश में जा कर आसन लगा प्राणायाम कर, बाह्य विषयों से इन्द्रियों को रोक, मन को नाभिप्रदेश में वा हृदय, कण्ठ, नेत्र, शिखा अथवा पीठ के मध्य हाड़ में किसी स्थान पर स्थिर कर अपने आत्मा और परमात्मा का विवेचन, परमात्मा में मग्न हो जाने से संयमी होवें।" मन एक देशी है सर्व देशी नहीं उसने शरीर के किसी एक हिस्से में रहना है सब में नहीं। इस लिये न्याय में लिखा है कि मन एक समय में एक ही काम करता है अनेक नहीं। अतः शरीर के किसी न किसी एक ही प्रदेश में ठहरता है लेकिन प्रश्न तो यह है कि क्या यह हृदय आदि की पूजा है ? कभीं नहीं जैसे वेद में लिखा है कि—

उपह्वरे गिरीणां संगमे च नदीनां।

धिया विप्रोऽजायत ॥

पर्वतों की गुफाओं में वा नदियों के सङ्गम में किसी एक स्थान पर बैठकर भगवान् की उपासना करनी चाहिये। इसका यह अर्थ नहीं कि यह स्थान की पूजा है। आसन पर बैठ कर सन्ध्या करने से आसन की पूजा नहीं होती। इसी प्रकार से मन चाहे नाभि आदि किसी प्रदेश में रहे स्वामीजी लिखते हैं कि मनुष्य को चाहिये अपने अत्मा से परमात्मा में लीन हो जावे। यहां आत्मा परमात्मा का चिन्तन है नकि हड्डी वा हृदय का।

जो लोग यह उपहास करते हैं कि आर्य समाजी हड्डु पूजक हैं उनको कुछ बुद्धि से कार्य लेना चाहिये। क्या इस हिसाब से पौराणिक बिच्छु पूजक, सर्पपूजक, पत्थरपूजक, वृक्षपूजक आदि नामों वाले नहीं होंगे? कौनसी ऐसी वस्तु है जिसकी पूजा पुराणों में न लिखी हो।

कुरानी और पौराणिक मूर्तिपूजा

प्रश्न १—सत्यार्थ प्रकाश के चौदहवें समुल्लास में मुसलमानों का खण्डन करते हुए स्वामीजी लिखते हैं कि "ऐ मुसलमानो! तुम जो हिन्दुओं को बुतपरस्त कहते हो, क्या तुम मस्जिदुल् हरमकी पूजा नहीं करते हो? आप हिन्दुओं से भी बड़ी मूर्ति की पूजा करते हैं। अगर आप कहें कि हमतो मक्के की तरफ मुँह करके परमात्मा की पूजा करते हैं, तो हिन्दू भी तो यही

कहते हैं कि हम मूर्ति के आगे परमात्मा की पूजा करते हैं।" इस स्वामीजी के लेख से मूर्तिपूजा ही सिद्ध नहीं होती किन्तु युक्ति देकर स्वामीजी मूर्तिपूजा को सिद्ध करते हैं। इस लेख की मौजूदगी में आर्यसमाजी कैसे कह सकते हैं कि हम मूर्ति पूजक नहीं ?

उत्तर ९—जो लेख स्वामी जी ने लिखा है उस को यहां पर लिखना आवश्यक है मैंने कई शास्त्रार्थों में देखा है कि पौराणिक सम्पूर्ण लेख नहीं पढ़ते किन्तु भ्रम में डालने के लिये बीच २ में से पढ़ कर सुना देते हैं। लेख यह है—

"समीक्षक—क्या यह छोटी बुत्परस्ती है ? नहीं। बड़ी। (पूर्वपक्षी) हम मुसलमान लोग बुत्परस्त नहीं हैं, किन्तु बुतशिकन अर्थात् मूर्तों के तोड़ने हारे हैं। हम किबले को .खुदा नहीं समझते। (उत्तरपक्षी) जिन को तुम बुत्परस्त समझते हो वे भी उन उन मूर्तों को ईश्वर नहीं समझते किन्तु उन के सामने परमेश्वर की भक्ति करते हैं। यदि बुतों के तोड़ने हारे हो तो उस बड़े बुत् किबले को क्यों नहीं तोड़ते ?"

(प्र०) वाहजी हमारे तो किबले की ओर मुँह करने का क़ुरान में हुक्म है और इन के वेद में नहीं (उ०) जैसे तुम्हारे लिए क़ुरान में हुक्म है वैसे इन के लिये पुराण में आज्ञा है। जैसे तुम क़ुरान को .खुदा का हुक्म समझते हो वैसे ही पुराणी पुराणों को .खुदा के अवतार व्यास जी का वचन समझते

हैं। तुम और इन में बुत्परस्ती का कुछ भिन्न भाव नहीं है प्रत्युत तुम बड़े बुत्परस्त और ये छोटे हैं क्योंकि जब तक कोई मनुष्य अपने घर में से प्रविष्ट हुई बिल्ली को निकालने लगे तब तक उस के घर में ऊँट प्रविष्ट हो जावे वैसे ही मुहम्मद साहिब ने छोटे बुत् को मुसलमानों में से निकाला परन्तु बड़े बुत् जो कि पहाड़ सदृश मक्के की मस्जिद है वह मुसलमानों के मत में प्रविष्ट करा दी ? क्या यह छोटी बुतपरस्ती है ? हां जैसे हम लोग वैदिक हैं वैसे ही तुम लोग भी वैदिक हो जाओ, तो बुतपरस्ती आदि बुराइयों से बच सको अन्यथा नहीं। तुम जब तक अपनी बड़ी बुत्परस्ती को न निकाल दो तब तक दूसरी छोटी बुत्परस्ती के खण्डन से लज्जित हो के निवृत्त रहना चाहिये और अपने आप को बुत्परस्ती से पृथक् करके पवित्र करना चाहिये।

पाठक अगर आप ध्यान से महर्षि का लेख पढेंगे तो आपको भलीप्रकार विदित हो जाएगा कि ऋषि ने इस लेख में मूर्तिपूजा का खण्डन किया है या मण्डन। महर्षि तो मुसलमानों को स्पष्ट कहते हैं कि हम जैसे वैदिक बन कर ही मूर्तिपूजा आदि बुराइयों से बचोगे अन्यथा नहीं। जब स्वामी जी मूर्तिपूजा को बुरा बतलाते हैं तो इस लेख में मूर्तिपूजा बतलाना क्या अत्यन्त अनुचित नहीं ? और अन्त में उन्हों नें लिखा है कि मूर्तिपूजा छोड़ कर पवित्र होजाओ। इस लेख का अभिप्राय इतना ही है कि मूर्तिपूजक को

मूर्तिपूजा के खण्डन का अधिकार नहीं, जब तक कि वह स्वयं मूर्तिपूजा न छोड़े। जैसे पौराणिक मूर्तिपूजक वैसे मुसलमान मूर्तिपूजक। इन दोनों को मूर्तिपूजा छोड़ कर ईश्वर पूजा वा वैदिक धर्म को मानना चाहिये।

प्रत्यक्ष ब्रह्म और मूर्तिपूजा

प्रश्न १०—सत्यार्थप्रकाश के आरम्भ ही में स्वामीजी लिखते हैं "त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्माऽसि त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि" इत्यादि इसमें स्वामीजी ने ब्रह्म को प्रत्यक्ष लिखा है अगर वह मूर्तिवाला साकार नहीं है तो उसका प्रत्यक्ष कैसे हो सकता है? क्योंकि वह स्वामी जी के लेख के अनुसार प्रत्यक्ष है और प्रत्यक्ष मूर्ति वाला होता है, इसलिये मूर्तिपूजा सिद्ध है।

उत्तर १०—ऋग्वेद में यह लिखा है कि ब्रह्म का प्रत्यक्ष कैसे वा किस चीज़ से किया जाता है। मन्त्र—

एकः सुपर्णः स समुद्रमाविवेश
स इदं विश्वं भुवनं विचष्टे ।
त पाकेन मनसापश्यमातितस्तं रेळ्हि
स उ रेळ्हि मातरम् ॥ ऋ० १०।११४।४॥

अर्थ—वह परमात्मा एक है, वही सम्पूर्ण संसार में व्यापक है। मैं

उस ब्रह्म को परिपक्व मन वा आत्मा से देखता हूँ।

प्रत्यक्ष दो प्रकार का होता है एक बाह्य इन्द्रिय जन्य, दूसरा आभ्यंतर अर्थात् जो मन वा आत्मा से किया जाता है उसी को मानसिक वा आत्मिक प्रत्यक्ष कहते हैं जैसे लिखा है "दृश्यते त्वग्रया बुध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः" उस प्रभु के दर्शन सूक्ष्म बुद्धि से होते हैं इस लिये परमात्मा को प्रत्यक्ष कहने से उसकी मूर्ति सिद्ध नहीं होती, क्योंकि उसका आत्मा से प्रत्यक्ष किया जाता है, और आत्मा वा परमात्मा दोनों निराकार हैं।

डंडा, जूता और मूर्तिपूजा

प्रश्न ११—संस्कार विधि के समावर्तनसंस्कार में स्वामीजी ने डण्डे वा जूते की पूजा लिखी है। अब तो आपको पता लगा या नहीं? आप तो मूर्तिपूजा का खण्डन करते थे, किन्तु यहां डण्डे वा जूते की पूजा निकल आई। चौबे जी गए छब्बे जी बनने रह गये दुबेजी। अच्छी हुई।

उत्तर १२—इस शंका पर तो पौराणिक पण्डित अपनी बुद्धि का दिवाला ही निकाल देते हैं। मैं तो इन पण्डितों को कहता हूँ कि जिन चीज़ों की पूजा तुम संस्कार विधि आदि पुस्तकों में बतलाते हो वहां पर हम को इतना ही बतला दो कि इन चीज़ों में से किसी के लिए यह लिखा हो कि इस

चीज़ की पूजा करनी चाहिये। अगर नहीं दिखला सकते तो यह आप का कथन असत्य है कि संस्कार विधि में डण्डे आदि की पूजा लिखी है। जूते वा डण्डे की पूजा की हकीकत नीचे लिखी जाती है। समावर्तन संस्कार में स्नातक जूता पहनते वक्त कहता है—

"प्रतिष्ठे स्थो विश्वतो मा पातम्।" यह मज़बूत जूतियें आदि पैर की रक्षा के लिए पहनता हूँ।

"ओं विश्वाभ्यो माष्ट्राभ्यस्परिपाहि सर्वतः" यह दण्डा प्रत्येक प्रकार से रक्षा करने वाला है इस मन्त्र से डण्डा हाथ में ग्रहण करता है। मैं पौराणिक पण्डितों से पूछता हूँ कि ब्रह्मचारी जूता पैर में पहन कर चलता है? क्या यह जूते की पूजा है? क्या जिन चीज़ों की पूजा की जाती है उन की यही दशा की जाती है? क्यों भ्रम में पड़े हो? यह तो रक्षा के लिये धारण किये जाते हैं, न कि पूजा के लिये। हां डण्डे से अवश्य पूजा लिखी है, पापियों को ठीक करने के लिये।

मूर्ति पूजक लोग ये ही शंकाएँ आर्य समाज की पुस्तकों पर किया करते हैं, जिन का उत्तर हमने दे दिया। कई पौराणिक लोगों ने ऐसे ट्रैक्ट पंचमहायज्ञ विधि आदि पुस्तकों के नाम से छाप रखे हैं जिन से मूर्तिपूजा सिद्ध करने की कोशिश किया करते हैं। ऐसे अवसरों पर

उन से कहना चाहिये कि यह अजमेर की छपी पंचमहायज्ञविधि आदि पुस्तक है, अगर तुम में हिम्मत है तो जिस बात को तुम कहते हो वह इस पुस्तक में दिखलाओ, अगर नहीं दिखला सकते तो जो पुस्तक तुम ऋषि दयानन्द के नाम से पेश करते हो वह ऋषिकृत नहीं बल्कि तुम्हारी कपोल कल्पित है, हम इस को नहीं मानते। यह तुम्हारे लिये कोई नई बात नहीं, प्रथम भी व्यासादि ऋषियों के नाम से तुमने अनेक पुस्तकें बना रक्खी हैं।

दूसरा अध्याय

पुराण और मूर्तिपूजा

जिन पुराणों को पौराणिक लोग वेद से भी प्रथम मानते हैं और परमात्मा के अवतार व्यास जी का वचन कहते हैं अब मैं उन्हीं पुराणों में से बतलाऊँगा कि मूर्तिपूजा करना ठीक नहीं। कई पौराणिक पण्डित कह दिया करते हैं कि जब तुम समाजी पुराणों को नहीं मानते तो उनका प्रमाण क्यों देते हो। इन पण्डितों को इस बात का बिल्कुल ध्यान नहीं रहता कि ये लोग सत्यार्थ-प्रकाश आदि पुस्तकों को न मानते हुए भी अपनी पुस्तक, भाषण,

शास्त्रार्थ आदि में मूर्तिपूजा आदि अवैदिक सिद्धान्तों को सिद्ध करने के लिये ऋषि दयानन्द कृत पुस्तकों का प्रमाण क्यों उपस्थित कर देते हैं? भाई! शास्त्रार्थ का यह नियम है कि जिस सिद्धान्त को मनुष्य सिद्ध करना चाहे अगर उसी असूल को साबित करने के प्रमाण प्रतिवादी की पुस्तक से निकाल देवे तो वह सिद्धान्त सबसे अधिक मज़बूत हो जाता है। यदि आर्यसमाजी पुनर्जन्म का प्रमाण कुरान से वा मूर्तिपूजा के निषेध का प्रमाण पुराण से निकाल देवे तो इस से बढ़कर और क्या सबूत पुनर्जन्म के होने में वा मूर्तिपूजा के खण्डन के लिये हो सकता है? कोई आदमी किसी मनुष्य से कहता है कि तुमने मेरे १०) देने हैं। प्रमाण के लिये उसी कर्ज़दार की बही में से रुपये देने का लेख पेश कर देवे तो कर्ज़ के देने में सब से बड़ा प्रमाण माना जावेगा।

आर्यसमाज परमात्मा को निराकार मानता है इस में कोई झगड़ा नहीं क्यों कि पौराणिक भी परमात्मा को निराकर मानते हैं, यह सिद्धान्त उभय पक्ष सम्मत है और निराकार की मूर्ति भी नहीं होती, यह भी दोनों पक्ष मानते हैं। इसलिये आर्यसमाज का सिद्धान्त तो सिद्ध है।

मूर्तिपूजा को सिद्ध करने के लिये दूसरा स्वरूप पौराणिक साकार मानते हैं। यह साध्य है क्योंकि आर्यसमाज इसको नहीं मानता। जितनी मूर्तियें मन्दिरों में पूजी जाती हैं, पौराणिक पण्डितों का कहना है कि वे सब इसी साकार देहधारी परमात्मा की हैं।

जिन पौराणिक परमात्माओं की मूर्तियें मन्दिरों में पूजी जाती हैं, वे परमात्मा नहीं थे और उनके पूजने वालों को मुक्ति नहीं किन्तु दुःख मिलता है इस बात को सिद्ध करने के लिये पांच युक्तियें पेश की जाती हैं—

(१) जिन पौराणिक देवताओं की मूर्तियें मन्दिरों में पूजी जाती हैं वे किसी दूसरे की उपासना, भक्ति और नाम स्मरण करते हैं।

(२) जो गुण परमात्मा के निराकार, पूर्णकाम, सर्वज्ञ, सृष्टिकर्त्ता आदि बतलाये हैं वे इन पौराणिक ईश्वरों में नहीं घटते।

(३) इनकी पूजा करने वालों के लिये दुःख लिखा है, ईश्वर की भक्ति दुःख से छूटने के लिये की जाती है, न कि दुःख के लिये।

(४) जो आचार इन परमात्माओं का पुराणों में बतलाया है उससे तो यह सिद्ध होता है कि ये साधारण मनुष्य भी नहीं थे।

(५) इनके आपस में झगड़े वा एक दूसरे की निन्दा से यह सिद्ध होता है कि इनमें से कोई भी ईश्वर नहीं है।

इन सब युक्तियों के लिये नीचे पुराणों के प्रमाण उद्धृत किय जाते हैं। उनका अर्थ भी वही देता हूँ जो पौराणिकों ने किया है।

ब्रह्मा आदि अन्य के उपासक हैं

पौराणिक परमात्माओं में से ब्रह्मा, विष्णु, महेश मुख्य परमात्मा हैं इनके लिये यदि सिद्ध हो जाये कि ये परमात्मा

नहीं हैं तो दूसरे देवों का अपने आप अनीश्वरत्व सिद्ध हो जायगा। देवी भागवत के स्कं० ३ अ० ४ में तीनों देवता अपनी हालत का बयान करते हुए कहते हैं—

वयं युवतयो जाता सुरूपाश्चारुभूषणाः ।
विस्मयं परमं प्राप्ता गतास्तत् सन्निधिं पुनः ॥७॥

अर्थ—हम तीनों ब्रह्मा, विष्णु, शिव नव जवान स्त्रियें हो गये, हमारे भूषण वा वस्त्र स्त्रियों वाले थे। हमको यह दशा देखकर परम विस्मय (हैरानी) हुआ और देवी के चरणों के समीप जाकर विष्णु कहने लगा—

विष्णु

अकर्ता—"ज्ञातं मयाखिलमिदं त्वयि संनिविष्टं,
त्वत्तोऽस्य संभवलयावपि मातरद्य ।
शक्तिश्च तेऽस्य करणे विततप्रभावा,
ज्ञाताधुना सकल लोकमयीति नूनम् ॥३०॥

अर्थ—हे जननि! मैंने आज ही यह जाना कि इस संसार को बनाने वा प्रलय करने हारी आप ही हैं। आप ही के अन्दर इस ब्रह्माण्ड को बनाने की शक्ति है, अन्य में नहीं यह इस समय, मैंने जाना है।

वेद कहता है "द्यावा भूमि जनयन् देव एकः" उसी एक परमात्मा ने प्रकाशमयलोक तथा पृथिवी आदि लोक बनाये, किन्तु यहां विष्णु कहता है कि मैं संसार का बनाने वाला नहीं।

अज्ञानी—नाहं भवो न च विरंची विवेद मातः,
कोऽन्यो हि वेत्ति चरितं तव दुर्विभाव्यं।
महाप्रभावे कानीह संति भुवनानि,
ह्यस्मिन् भवानि चरिते रचनाकलापे ॥३५॥

अर्थ—हे मातः! मैं विष्णु, शिव, ब्रह्मा तेरे चरित्र को नहीं जानते। जब हम ही तेरे चरित्र को नहीं जानते तो दूसरा कौन जान सकता है। इस संसार में कौन २ से लोक हैं इस बात को हम नहीं जानते।

वेद कहता है कि परमात्मा सर्वज्ञ है किन्तु यहां विष्णु अपने को ही नहीं किन्तु शिव आदि सब को अज्ञानी बतलाता है इस से सिद्ध है कि ये परमात्मा नहीं।

अनेक—अस्माभिरत्र भुवने हरिरन्य एव,
दृष्टः शिवकमलजः प्रथितप्रभावः।
अन्येषु देवि भुवनेषु न संति किं ते,
किं विद्म देवि विततं तव सुप्रभावम् ॥३६॥

अर्थ—हमने इस संसार लोक में ब्रह्मा, विष्णु, शिवजी दूसरे

ही देखे हैं क्या दूसरे लोकों में शिवादि नहीं हैं, अवश्य हैं लेकिन हम इस तेरे विस्तृत प्रभाव को नहीं जानते। वेद में बतलाया है—

> दिव्यो गंधर्वो भुवनस्य यस्पति-
> रेक एव नमस्यो विद्वीड्यः।
> तं त्वा यौमि ब्रह्मणा दिव्य देव,
> नमस्ते ऽस्तु दिवि ते सधस्थम्। अ० २।१।१॥

सम्पूर्ण संसार का अधिष्ठाता परमात्मा है और वह एक ही है। वही नमस्कार करने और प्रशंसा करने योग्य है। वेद ज्ञान द्वारा उस को प्राप्त कर सकते हैं। वेद परमात्मा को एक कहता और विष्णु के कहने से परमात्मा अनेक सिद्ध होते हैं इस से सिद्ध है कि विष्णु परमात्मा नहीं है।

स्मरण—याचेव तेंघ्रिकमलं प्रणिपत्य कामं,
चित्ते सदा वसतु रूपमिदं तवैतत्।
नामापि वक्त्रकुहरे सततं तवैव,
संदर्शनं तव पदांबुजयो सदैव ॥३७॥

अर्थ—मैं आप के चरणों में गिर कर आप से यही मांगता हूँ कि हमेशा मेरे चित्त में यह आप का मनोहर रूप बसता रहे। मेरी मुख रूपी गुहा में आप का ही नाम रहे। मैं सदा आपके

चरणों का दर्शन करता रहूं।" इस श्लोक में विष्णु ने तीन बातें मांगी हैं—मन में देवी का रूप, ज़बान पर नाम वा चरणों का दर्शन। कहिये पाठक! इस प्रकार दूसरे की भक्ति करने वाला परमात्मा क्यों कर हो सकता है?

नौकर—भृत्योऽयमास्ति सततं मयि भावनीयं,
त्वं स्वामिनीति मनसा ननु चिन्तयामि।
एषावयोरविरता किल देवी भूयाद्,
व्याप्ति सदैव जननि सुतयो रिवार्ये ॥३८॥

अर्थ—हे जननि! मैं आपका भृत्य दास हूँ, निरंतर मुझ में ऐसी भावना कीजिये। मैं मन से यही चिन्तन करता हूँ कि आप मेरी स्वामिनी (मालिक) हैं। हे आर्ये! आप मुझ को अपने बच्चे की तरह जानो।

परमात्मा किसी का गुलाम नहीं है, किन्तु सब परमात्मा के दास हैं यहां विष्णु अपने आप को दास बतलाता है इस लिये विष्णु परमात्मा नहीं।

पामर—त्वं वेत्सि सर्वमखिलं भुवनप्रपञ्चं।
सर्वज्ञता परिसमाप्ति नितांत भूमिः।
किं पामरेण जगदंब निवेदनीयं,
यद्युक्तमाचर भवानि तवेङ्गितं स्यात ॥३९॥

अर्थ—तू इस सम्पूर्ण संसार प्रपञ्च को जानती है। आप में सर्वज्ञता समाप्त हो जाती है। हे जगदंब ! मैं पामर आप से क्या निवेदन कर सकता हूँ। जो ठीक हो वही आप कीजिये, जिस से आप का इच्छित सिद्ध हो।

यहां विष्णु अपने को पामर बतलाता है, जिस के अर्थ अत्यन्त नीच के हैं। अत्यन्त नीच परमात्मा कैसे हो सकता है। वेद कहता है—

एतो न्विन्द्रं स्तवाम शुद्धं शुद्धेन साम्ना।
शुद्धैरुक्थैर्वावृध्वांसं शुद्ध आशीर्वान्
ममत्तु ॥ऋ० ८।९५।७॥

अर्थ—हम सब शुद्ध पवित्र ईश्वर की स्तुति पवित्र वेद मंत्रों द्वारा करें वह पवित्र आश्रय दाता सब को सुख देता है। इस मन्त्र में स्पष्ट ईश्वर को शुद्ध पवित्र बतलाया है।

अनित्यः—ब्रह्माहमीश्वरवरः किल ते प्रभावात्,
सर्वे वयं जनियुतानयदा तु नित्याः।
केन्येऽसुराः शतमखप्रमुखाश्च नित्याः,
नित्या त्वमेव जननी प्रकृतिः पुराणाः ॥४२॥

अर्थ—मैं विष्णु, ब्रह्म, शिवजी आपकी कृपा से उत्पत्ति वाले हैं। जो उत्पन्न होते हैं, वे नित्य कैसे हो सकते हैं ? जब हम तीनों

नित्य नहीं तो दूसरे इन्द्रादि देवता कैसे नित्य हो सकते हैं? इसलिये केवल आपही नित्य रहने वाली शक्ति हैं। कहिये पाठक! अब विष्णु के अनीश्वर होने में कोई सन्देह नहीं रहा। वेद तो परमात्मा को नित्य अचर बतलाता है—

भाग्यो भवद्थो अन्नमदद्बहु।

यो देवमुत्तरावतमुपासातै सनातनम्॥अ० १०।८।२२॥

अर्थ—जो आदमी अनेक गुण युक्त सनातन परमात्मा की उपासना करता है वह भाग्यशील है ईश्वर की कृपा से अनेक भोग्य पदार्थों को प्राप्त होता है। अन्त में विष्णु कहता है—

नमो देवि महाविद्ये नमामि चरणौ तव।

सदा ज्ञान प्रकाशं मे देहि सर्वार्थ दाशिवे ॥४९॥

अर्थ—हे महाविद्ये आपको नमस्कार है, आपके चरणों को नमस्कार करता हूँ। आप मुझको ज्ञान और प्रकाश दीजिये। जो दूसरे से ज्ञान प्रकाश मांगता है वह कभी भगवान् नहीं हो सकता।

शिवजी

जब इतना कह कर विष्णु जी बैठ गये तो रुद्र शिवजी खड़े हो गये और कहने लगे—

जननि देहि पदाम्बुजसेवनं

युवतीभावगतानपि नः सदा।

पुरुषतामधिगम्य पदाम्बुजाद्
विरहिता क्व लभेम सुखं स्फुटम् ॥अ० ५।१३॥

अर्थ—हे जननि स्त्री बने हुए भी हमको अपने चरणों का सेवन दीजिये। अगर हम आदमी भी बन जावें तो भी आपके चरण कमल से रहित होकर सुखी नहीं हो सकते।

तपनिंदा—तपसि ये मुनयो निरतामला-
स्तव विहाय पदाम्बुजसेवनं।
जननि ते विधिना किल वञ्चिताः
परिभवो विभवे परिकल्पितः ॥१६॥

अथ—जो ऋषि लोग आपके चरण कमल को छोड़कर तपश्चर्या में लगे रहते हैं। वे ठगे गए हैं, उन्होंने दुःख को ऐश्वर्य, निरादर को सत्कार समझा है। तप, इन्द्रिय दमन, समाधि अनेक यज्ञ आदि किसी से भी मुक्ति नहीं होती। आपके चरण सेवन से ही मुक्ति हो सकती है।

ब्रह्मा

शिवजी के पश्चात ब्रह्माजी कहने लगे—

अद्याहं तव पादपंकजपरागादानगर्वेण वै,
धन्योऽस्मीति यथार्थवादनिपुणस्ते जलः प्रसादाच्च ते।

याचे त्वां भवभीतिनाशचतुरां मुक्तिप्रदां चेश्वरीं,
हित्वा मोहमयं महार्तिनिगडं त्वद्भक्तियुक्तं कुरु॥२८॥

अर्थ—मैं आज आपके चरणकमल को देखकर आपकी कृपा से कृतकृत्य हो गया हूँ। हे मुक्ति प्रदे! संसार दुःख को दूर करने वाली! मेरी आपसे बार बार यही प्रार्थना है कि इस संसार के मोह जाल को छोड़ कर मैं आप ही की भक्ति में हमेशा लगा रहूँ। इस प्रकार महामोह में फँसा हुआ दूसरे से मुक्ति मांगने वाला कभी ईश्वर नहीं हो सकता। जगदीश नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्तस्वभाव है।

मैं प्रभु नहीं हूं—न जानन्ति ये मानवास्ते वदन्ति
प्रभुं मां तवाद्यं चरित्रं पवित्रम् ॥ ३० ॥

जो मनुष्य मुझको प्रभु परमात्मा कहता है वह अज्ञानी तेरे चरित्र को नहीं जानता। यहां साफ़ ब्रह्मा जी अपने मुख से कहते हैं कि मैं परमात्मा नहीं हूँ।

दास—अतोऽहं च जातो विमुक्तः कथं स्यां
सरोजादमेयात्त्वदाविष्कृताद् वै-
तवाज्ञाकरः किंकरोऽस्मीतिनूनं
शिवे पाहि मां मोहमग्नं भवाब्धौ ॥ २९ ॥

अर्थ—इस संसार से मैं मुक्त कैसे होऊँ? मैं आपका आज्ञाकारी

दास हूँ। हे शिवे! इस संसार रूपी समुद्र में मोह में मग्न मेरी रक्षा कीजिये।

योगनिन्दा—श्रमं येऽष्टधा योगमार्गे प्रवृत्ताः
प्रकुर्वन्ति मूढाः समाधौ स्थिता वै,
न जानंति ते नाम मोक्षप्रदं वा
समुच्चारितं जातु मातर्मिषेण ॥ ३२ ॥

अर्थ—जो मूर्ख आदमी अष्टांगयोग, आसन, प्राणायाम, ध्यान धारणा, समाधि आदि में परिश्रम करते हैं, वे बहाने से उच्चारण करने से मुक्ति देने वाले तेरे नाम को नहीं जानते।

जिस योग वा योगियों की प्रशंसा, योग दर्शन वा योगीराज कृष्ण ने स्थान २ पर गीता में की है उसकी इतनी निंदा! हम पौराणिकों से पूछते हैं कि क्या १६ कला पूर्ण आप के कृष्ण अवतार की बात सच्च है या ब्रह्मा की जो योग की निंदा करते हैं।

प्रायः इन्हीं तीन देवताओं की पूजा पौराणिक मन्दिरों में होती है। ये स्वयं अपने आप को परमात्मा नहीं बताते, इसलिये इनकी मूर्तियों की पूजा ईश्वर पूजा नहीं हो सकती।

कृष्ण

पौराणिक लोग केवल श्री कृष्ण को ही पूर्ण अवतार मानते हैं बाकी सब को अंशावतार मानते हैं। अब ज़रा उन की

कथा भी सुनिये। देवी भागवत स्कं० ४ अ० २४ में लिखा है कि श्री कृष्ण के घर लड़का पैदा हुआ और उस को कोई चुरा कर ले गया जब महाराज को उस का कुछ पता नहीं लगा तो विलाप के साथ कहने लगे—

मातर्मयाति तपसा परितोषिता त्वं,
प्राग् जन्मनि प्रसुमनादिभिरर्चितासि।
धर्मात्मजेन बदरीवनखंडमध्ये,
किं विस्मृतो जननि ते त्वयि भक्तिभावः ॥४८॥

अर्थ—हे मातः मैंने प्रथम जन्म में अत्यन्त उग्र तप किया था, और बदरीवन में फूल आदि से आप की पूजा करके आप को प्रसन्न किया था। हे जननि क्या आप मेरे उस भक्तिभाव को भूल गई हैं? आप मेरी सुध क्यों नहीं लेतीं?

सूतिगृहादपहृतः किमु बालको मे,
केनापि दुष्टमनसाप्यथ कौतुकाद्वा।
मानापहारकरणाय ममाद्य नूनं,
लज्जा तवाम्ब खलु भक्तजनस्य युक्ता ॥४९॥

अर्थ—प्रसूतागार से कोई दुष्ट मेरे बालक को उठा कर ले गया है, इस में मेरी कितनी मानहानि है। हे मातः यह मेरी हानि नहीं है किन्तु सब से अधिक आप की हानि है। मैं आप का

भक्त हूँ और भक्त का संकट दूर न किया तो आप को ही लज्जा आयगी।

अज्ञानी—नो वेद्म्यहं जननि ते चरितं सुगुप्तं,
को वेद मंदमतिरल्प विदेव देहि।
क्वासौ गतो मम भटैर्न च विच्चितः वा,
हर्तांबिके जवनिका तव कल्पितेयम् ॥५२॥

अर्थ—जननि मैं तेरे गुप्त चरित्र को नहीं जानता, जब मैं भी तेरे चरित्र को नहीं जानता तो दूसरा कौन जान सकता है। मेरे किसी भी योद्धा को बालक चोरने वाले का पता नहीं लगा, यह सब आप ही की लीला।

मातास्य रोदिति भृशं कुररीव बाला,
दुःखं तनोति मम सन्निधिगा सदैव।
कष्टं न वेत्सि ललिते प्रमितप्रभावे,
मातस्त्वमेव शरणं भव पीडितानाम् ॥५६॥

अर्थ—इस चुराये गये बालक की माता मेरे पास आकर रोज़ कूंज की तरह विलाप करती है। क्या आप इस महा कष्ट को नहीं जानती हैं। जननि! संसार के दुःखों से पीड़ित जनों का आप ही उद्धार करने हारी हैं। लीजिये पाठक! जिन कृष्ण जी को पौराणिक १६ कला पूर्ण अवतार मानते हैं, वे स्वयं

दुःखी वा अपने बालक का पता लगाने के लिये किसी दूसरे की स्तुति कर रहे हैं, फिर क्योंकर उन को परमात्मा मान सकते हैं। यहां तक ही नहीं बल्कि संतान के लिये शिवजी का तप किया और जब शिव जी ने दर्शन दिया तो लिखा है—

पपात पादयोस्तस्य दंडवत् प्रेम संयुतः।

अर्थ—कृष्ण प्रेम से युक्त होकर शिवजी के चरणों में गिर गये और प्रार्थना करने लगे—

लज्जा भवति देवेश प्रार्थनायां जगद्गुरो
सोऽहं माया विमूढात्मा याचे पुत्रसुखं विभो ॥

अर्थ—हे देव मुझको प्रार्थना करते शर्म आती है, मैं माया से मूर्ख हो कर आप से पुत्र की याचना करता हूं आप कृपया मुझको पुत्र दीजिये। इस बात को सुन कर शिवजी ने वर दिया—

बहवस्ते भविष्यन्ति पुत्रा शत्रुनिषूदना,
स्त्रीणां षोडशसाहस्रं भविष्यति शतार्धकम् ॥५७॥
तासु पुत्रा दश २ भविष्यन्ति महाबलाः ॥५९॥

अर्थ—अयि कृष्ण! तू चिन्ता मत कर तेरे १६ हज़ार स्त्रियें होंगी और एक २ में दश २ पुत्र होंगे। तुम्हारी यह कामना पूर्ण हो जावेगी। वेद कहता है—

अकामो धीरो अमृतः स्वयम्भूः,
रसेन तृप्तो न कुतश्च नोनः।
तमेव विद्वान् न बिभाय मृत्योरात्मानं,
धीरमजरं युवानम् ॥ अ० १।८।४४॥

परमात्मा अकाम निष्काम धैर्यवान् अमर स्वयंभू उत्पन्न न होनें वाला है। आनन्दमय, नित्यतृप्त, पूर्ण काम है, कहीं से भी न्यून नहीं, उसको इच्छा नहीं। उसी सर्वव्यापक परमात्मा को जानकर मनुष्य मृत्यु से बच सकता है और कोई रास्ता नहीं। प्रियपाठक ! इस मन्त्र में परमात्मा को पूर्ण काम बतलाया है और कृष्ण जी पुत्र के लिये विलाप वा तप, प्रार्थना करते हैं। वे कैसे परमात्मा हो सकते हैं ? जब वे ईश्वर नहीं तो उनकी मूर्ति को परमात्मा समझकर पूजना अज्ञानता नहीं तो और क्या है ?

वरुण आदि देवता

इन चार बड़े पौराणिक परमात्माओं को छोड़ कर जो बाकी वरुण आदि देवता रह गये हैं, उन की पूजा भी पौराणिक लोग करते हैं इस लिये इस विषय में भी लिखना आवश्यक है। उसी देवी भागवत के स्कं० ५ अ० १६ में लिखा है—

ये वा स्तुवन्ति मनुजा अमरान् विमूढाः,
मायागुणैस्तव चतुर्मुख विष्णुरुद्रान्।

शुभ्रांशु वह्नि यम वायुगणेशमुख्यान्,
किं त्वामृते जननि ते प्रभवन्ति कार्ये ॥ ६ ॥

अर्थ—जो आप के मायाजाल में फँसकर मूर्ख आदमी देवता आर्थत ब्रह्मा, विष्णु, शिव, चांद, आग, यम, वायु, गणेश जिनमें प्रधान हैं, उन देवताओं की पूजा करते हैं वे भी मूर्ख हैं। क्या तेरी शक्ति के विना ये कुछ कर सकते हैं ? यहां सम्पूर्ण देव पूजकों को मूढ़, अज्ञानी, मूर्ख बतलाया है।

अन्धकूप में गिरते हैं—ज्ञात्वा सुरांस्तव वशानसुरार्दितांश्च,
ये वै भजन्ति भुविभावयुता विभग्नान् ।
धृत्वा करे सुविपुलं खलु दीपकं ते,
कूपे पतंति मनुजा विमलेऽतिघोरे ॥ १३ ॥

अर्थ—जब जानते हैं कि सब देवता आपके वश में हैं, और प्राणों के ख़तरे में पड़कर आपकी शरण में आते हैं, फिर भी इन टूटे हुए देवताओं में परमात्मा की भावना करके इनको पूजते हैं वे हाथ में विमल दीवा लेकर जानकर अन्धकारमय अन्धेरे वाले जलरहित कुएं में गिरते हैं। करघा छोड़ तमाशे जाय नाहक चोट जुलाहा खाय। एक इन देवताओं की पूजा करें अपने तन मन धन समय को व्यर्थ नष्ट करें और इतना होने पर भी इनका फल यह मिले कि—अन्धेरे कुएं में गिरें।

इससे तो यही अच्छा है कि—इनकी पूजा ही न की जाय।

मूर्ति पूजकों को दुःख

हमने पुराण के प्रमाण देकर यह सिद्ध कर दिया है कि ब्रह्मा, शिव, विष्णु, कृष्ण आदि ख़ुद अपनी जुबान से यह मानते हैं कि हम परमात्मा नहीं जब वे स्वयं अपने आपको अनीश्वर कहते हैं तो फिर उनको ज़बरदस्ती परमात्मा अपने स्वार्थ के लिये बनाना क्या मुद्दई सुस्त गवाह चुस्त वाली कहावत को चरितार्थ नहीं करता? इनको अनीश्वर ही नहीं लिखा किन्तु जो इनकी पूजा करेंगे उनको दण्ड भी लिखा है। इस बात को सिद्ध करने के लिये नीचे प्रमाण दिये जाते हैं—

शप्तो हरिस्तु भृगुणा कुपितेन कामं,
मीनो बभूव कमठः खलु सूकरस्तु।
पश्चान्नृसिंह इति यश्छल कृद्धरायां,
तान् सेवतां जननि मृत्युभयं न किं स्यात्॥ दे० ५।१६॥

अर्थ—जिस हरि ने भृगु के शाप से मीन मछली, कमठ कछुआ, नृसिंह के अवतार धारण किये और पीछे वामनादि बनकर संसार में छल किया, उस विष्णु के अवतारों की भक्ति करेंगे उनको क्यों नहीं मृत्यु का भय होगा अर्थात् अवश्य होगा। वेद कहता है—

तमेव विद्वान् न बिभाय मृत्योः । उस भगवान् को जान कर उसका भक्त मौत से नहीं डरता किन्तु अवतारों के भक्त को अवश्य भय होगा ।

शंभो पपात भुवि लिंगमिदं प्रसिद्धं,
शापेन तेन च भृगोर्विपिने गतस्य ।
तं ये नराः भुवि भजन्ति कपालिनं तु,
तेषां सुखं कथमिहापि परत्र मातः ॥१९॥

अर्थ—जिस शिवजी का भृगु के शाप से.........गिर गया था और जो हाथ में मनुष्यों की खोपड़ियों रखता है। उस शिव जी की जो उपासना करते हैं उनको इस लोक वा परलोक में कहीं भी सुख नहीं मिलेगा। चढ़ा लो शिवजी पर पानी और बिल्व पत्तियें और जाओ नरक में। एक तो उनकी पूजा करें और इससे दोनों लोकों में दुःख मिले। प्रक्षालनाद्धि पंकस्य दूरादस्पर्शनं वरम्। कीचड़ के धोने से यही अच्छा है कि उसको छुआ ही न जाय।

योऽभूद्गजानन गणाधिपतिर्महेशात्,
तं ये भजन्ति मनुजा वितथप्रपन्नाः ।
जानंति ते न सकलाथ कलावदात्रीं,
त्वां देवी विश्व जननीं सुखसेवनीयाम् ॥ २० ॥

अर्थ---जो गणों के अधिपति शिवजी से पैदा हुआ है उस गणेश की जो मूर्ख आदमी पूजा करते हैं। वे भी सकल कला देने वाली आपको नहीं जानते इस लिये मूर्खता से गणेश की पूजा करते हैं।

> क्लिश्यन्ति तेऽपिसुनयस्तव दुर्विभाव्यं,
> पादांबुजं नहि भजन्ति विमूढचित्ताः।
> सूर्याग्निसेवनपराः परमार्थतत्त्वं,
> ज्ञातं न तैः श्रुतिशतैरपि वेदसारम्॥ ३३॥

अर्थ—वे मुनि भी नरक में जायेंगे जो आप के चरणामृत को छोड़ कर सूर्य, अग्नि की पूजा करते हैं। उन्होंने सैंकड़ों वेद मंत्र पढ़ कर भी उनके सार को नहीं जाना।

उपर्युक्त उदाहरणों से भली प्रकार सिद्ध हो गया कि जो गणेश, सूर्य, अग्नि आदि अवतारों की पूजा करेंगे वे नरक में जायेंगे और वे मूढ़ अज्ञानी हैं।

मूर्त्ति पूजकों को पद्वी

अब जो पद्वी मूर्तिपूजक को प्रदान की है वह भी ज़रा ध्यान से सुनिये। श्रीमद्भागवत, स्कं० १०। अ० ८४ में लिखा है—

> नाम्बमयानि तीर्थानि न देवाः मृच्छिलामयाः।

ते पुनन्त्युरु कालेन दर्शनादेव साधवः ॥ ११ ॥

अर्थ—पानी वाले तीर्थ नहीं होते, मही और पत्थरों की मूर्तियें देवता नहीं होतीं। वे बड़े लम्बे काल में भी पवित्र नहीं करते। साधु महात्मा दर्शन ही से पवित्र करते हैं। इस श्लोक में स्पष्ट यह बतलाया है कि तीर्थों में नहाने से और मूर्तिपूजा से मनुष्य पवित्र नहीं होता। कई पौराणिक इस के अर्थ में गड़बड़ करके यह कहते हैं कि इस का यह अर्थ नहीं जो तुम करते हो किन्तु यह है—

तीर्थ वा मूर्ति पूजा देर से पवित्र करती है और साधु लोग शीघ्र ही पवित्र कर देते हैं।

यह अर्थ इन का ठीक नहीं। **गंगा गंगेति यो ब्रूयाद्योजनानां शतैरपि।** जो आदमी चार सौ कोस से गंगा २ करता है वह सब दुःखों से छूट कर विष्णु लोक को जाता है। कहिये कहां तो इस श्लोक में गंगा का इतना माहात्म्य और तुम कहते हो कि—वह देर से पवित्र करती है।

यह श्लोक देवी भागवत में दूसरी प्रकार से आता है—

नह्यम्बमयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः।
ते पुनन्त्यपि कालेन विष्णु भक्ताक्षणादहो ॥

दे० भा० स्कं ९ अ० ७ श्लो० ४२ ॥

अर्थ—पानी के तीर्थ नहीं होते मट्टी और पत्थरों के देवता नहीं होते, वे किसी काल में भी पवित्र नहीं करते। अब कैसे श्लोक का अर्थ उलटा करोगे? यहां तो स्पष्ट ही लिख दिया है कि मूर्तिपूजा मनुष्य को पवित्र नहीं करती ॥

नाग्निर्न सूर्यो न च चन्द्रतारका:,
न भूर्जलं खं श्वसनोऽथ वाङ्मनः।
उपासिता भेदकृता हरन्त्यघं,
विपश्चितो घ्नन्ति मुहूर्तसेवया ॥ १२ ॥

अर्थ—अग्नि, सूर्य, चांद, तारा, भूमि, जल, आकाश, वायु वाणी मन आदि पदार्थ उपासना करने से पाप दूर नहीं होता क्यों कि यह परमात्मा से भेद करने वाले हैं। इन की उपासना करने से परमात्मा की उपासना नहीं होती। जो नवग्रह की पूजा करने वाले लोग हैं वे इस श्लोक पर भली प्रकार विचार करें इस श्लोक में स्पष्ट सूर्यादि ग्रहों की पूजा का निषेध। उनकी पूजा परमात्मा से अलग करने वाली बतलाई है।

गोखर:—यस्यात्मबुद्धि कुणपे त्रिधातुके,
स्वधी कलत्रादिषु भौम इज्यधीः।
यत्तीर्थबुद्धिः सलिलेन कर्हिचित्,
जनेष्वभिज्ञेषु स एव गोखरः ॥ १३ ॥

अर्थ—वात, पित्त, कफ तीन मलों से बने हुए शरीर में आत्मबुद्धि करता है। स्त्री आदि में स्वबुद्धि, पृथिवी से बनी हुई मूर्तियों में जो पूज्यबुद्धि और पानी में तीर्थबुद्धि कभी भी करता है वह गोखर अर्थात् गौओं का चारा ढोने वाला गधा है जो उपर्युक्त दो श्लोकों में मूर्तिपूजा का निषेध करने पर भी जो मूर्तिपूजा करता है, उसको भागवत ने गोखर की पदवी देदी है। इससे बढ़ कर मूर्तिपूजा का खण्डन वा उनका निरादर क्या हो सकता है; कई पौराणिक सलिल शब्द को सप्तमी विभक्ति मानकर जो यह अर्थ करते हैं कि पानी में जो तीर्थबुद्धि नहीं करता वह गोखर है। यह ठीक नहीं करते, क्योंकि इनका अर्थ मानने से श्लोक का यह अर्थ होगा कि जो शरीर को आत्मा नहीं मानता, स्त्री आदि में स्वबुद्धि नहीं करता वह गोखर है। अगर ऐसा अर्थ करोगे तो नास्तिक ठहरोगे क्योंकि शरीर को आत्मा मानने वाला नास्तिक होता है। अतः हमारा ही अर्थ ठीक है।

देवी

अब एक बात रह गई और वह यह कि अगर ब्रह्मादि ईश्वर नहीं तो नहीं सही देवी की मूर्ति तो परमात्मा है। इस की ही पूजा कर लेंगे फिर भी मूर्तिपूजा तो रह ही गई।

यह इनका कहना ठीक नहीं क्योंकि देवी भी परमात्मा नहीं

है। देवीभागवत स्कं ५ अ० १६ में लिखा है—

नाहं पतिवरानारी वर्तते मम पति प्रभु।
सर्वकर्ता सर्वसाक्षी ह्यकर्ता निःस्पृहास्थिरः ॥६॥
निर्गुणो निर्ममोनन्तो निरालम्बो निराश्रयः।
सर्वज्ञः सर्वगः साक्षी पूर्णपूर्णाशयाशिवः ॥७॥
स मां पश्यति विश्वात्मा तस्याहं प्रकृति शिवा।
तत् सांन्निध्यवशादेव चैतन्यं मयि शाश्वतम् ॥
जड़ाहं तस्य संयोगात् प्रभवामि सचेतना ॥३७॥
अयस्कांतस्य सान्निध्यात्
आयसश्चेतना यथा।

अर्थ—अयि राक्षस! मैं पति चुनने वाली स्त्री नहीं हूँ, मेरा पति सर्वकर्ता, सर्वसाक्षी, निष्काम, निर्गुण, अनन्त, सब का आश्रय-दाता, सर्वव्यापक पूर्ण मौजूद है। वही मेरा सच्चा पति है, मैं तो जड़ प्रकृति हूँ, उसी के संयोग से मुझ में चेतनता आती है। जैसे चुम्बक के संयोग से लोहे में हरकत आती है। वैसे ही मेरा हाल है, मैं स्वयं जड़ चीज़ हूँ।

यहां देवी स्वयं कहती है कि मैं परमात्मा नहीं, परमात्मा दूसरा है। वही मेरा मालिक है मैं तो जड़, बेजान चीज़ हूँ। अगर कोई शंका करे कि बेजान कैसे है, तो कहती है उसी के संयोग

से मैं चेतन हूँ स्वयं मुझ में कोई चेतनता नहीं।

जिस देवी के लिये सम्पूर्ण देवताओं की निन्दा की, अन्त में वह देवी भी जवाब दे गई और कहती है कि मैं भी परमात्मा नहीं हूँ।

मूर्तिपूजा किस ने चलाई

प्राप्ते कलावहह दुष्टतरे च काले
न त्वां भजन्ति मनुजा ननु वञ्चितास्ते।
धूर्तैः पुराणचतुरैर्हरिशंकराणां
सेवापराश्च वहितास्तव निर्मितानाम् ॥१२॥

अर्थ—इस घोर कलियुग में पुराणों के बनाने वाले धूर्त चतुर लोगों ने शिव, ब्रह्मा, विष्णु आदि की पूजा अपने पेट भरने के लिये चलाई है। लीजिये इस बात का भी फैसला कर दिया कि इन देवताओं की पूजा क्यों चलाई है।

परस्पर विरोध

पौराणिक लोग कहा करते हैं कि हम मूर्तियों में सर्वव्यापक एक परमात्मा की पूजा करते हैं, उनको इस प्रकरण का अध्ययन अच्छी प्रकार करना चाहिये। अगर ब्रह्मा, विष्णु आदि एक ही परमात्मा हैं तो शिवादि का इतना आपस में विरोध क्या

लड़ाई झगड़े क्यों हैं ? वास्तव में जब किसी देवता की भक्ति एक पुराण में बतलाई जाती है, तो बाकी सम्पूर्ण देवताओं की निंदा अनीश्वरत्व वा सब देवताओं से कथाऐं बनाकर उसकी स्तुति कराई जाती है। यही हाल सम्पूर्ण पुराणों का है।

भागवत में कृष्ण को परमात्मा बाकी सब देवताओं को नीच और कृष्ण का भक्त लिखा है।

भविष्य में सूर्य को परमात्मा ब्रह्मा, विष्णु और कृष्ण को उसके दास लिखा है। देवी भागवत में देवी को परमात्मा अन्य सब देवतओं को नीच वा अपूज्य लिखा है। इस बात को सिद्ध करने के लिये भी कुछ प्रमाण देता हूं।

शिवपुराण विद्येश्वरी संहिता अ० ६—

एक समय विष्णु जी लेटे हुए थे और (ब्रह्मा) जी आ गये। विष्णु ने उनका कोई आदर नहीं किया, तब (ब्रह्मा) बोले।

आगतं गुरुमाराध्यं दृष्ट्वा यो दृप्तवच्चरेत्।
द्रोहिणस्तस्य मूढस्य प्रायश्चित्तं विधीयते ॥ ४ ॥

अर्थ—जो दुष्ट आदमी गुरु को आता देख उसका आदर न करे, उस द्रोही के लिये शास्त्र में प्रायश्चित्त लिखा है। यह सुनकर विष्णु ने कहा—

मन्नाभिकमलाज्ञातः पुत्रस्त्वं भाषसे वृथा।
अहमेव वरो न त्वं अहं प्रभुरहं प्रभु परस्परं

हंतुकामौ चक्रतु समरोद्यमम् ॥ ६ ॥

अर्थ—तू मेरी नाभि से पैदा हुआ है मेरा बेटा होकर बकवास करता है। विष्णु कहता है मैं परमात्मा हूं ब्रह्मा कहता है, नहीं मैं परमात्मा हूं। एक दूसरे को मारने के लिये तैयार हो गये।

हथियार लेकर आपस में लड़ने लगे। इतने में उन दोनों के मध्य में ज्योतिर्मय लिंग पैदा हुआ, दोनों उसका अन्त लेने के लिये चले। जब अंत न मिला तो ब्रह्मा ने आकर विष्णु के आगे झूठ बोला कि मैं इस का अंत ले आया हूं। शिव जी को क्रोध आया। और भैरव को पैदा किया।

भैरव—स वै गृहीत्वैककरेण केशं
तत् पञ्चमं दृप्तमत्त्वसत्यभाषणं।
छित्वा शिरांस्यस्य निहन्तुमुद्यतः
प्रकंपयन् खड्गमति स्फूटं करैः ॥ ४ ॥

अर्थ—ब्रह्मा के बालों को हाथ से खैंच कर जिस मुँह से ब्रह्मा ने झूठ बोला था उस शिर को तलवार से काट डाला। और दूसरे शिर भी काटने के लिये तैयार हो गया। यह अवस्था देख कर ब्रह्मा गिड़गिड़ा कर भैरव के चरणों में गिर गया। विष्णु ने शिव से प्रार्थना करके बड़ी कठिनता

से ब्रह्मा की जान बचाई अंत में शाप दे करके कि तुमने झूठ बोला है इस लिये तुम्हारी पूजा नहीं होगी।

जिस ब्रह्मा को भविष्य पुराण के ब्राह्मपर्व में इतना बड़ा बतलाया था, उसे यहां झूठ बोलने वाला बतलाया है, उसका सिर काटा गया और शिव को सब से बड़ा बतलाया, लेकिन ज़रा भविष्य का ब्राह्मपर्व अ० १५१ को देखिये, शिवकी भी क्या गति होती है। एक बार शिव ब्रह्मा और विष्णु में आपस में झगड़ा हो गया। शिव कहने लगा मैं सब से बड़ा परमात्मा हूं, मैंने ही सारा संसार बनाया है। विष्णु कहने लगा मैंने बनाया है, ब्रह्मा ने कहा तुम दोनों झूठे हो मैंने ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड बनाया है।

एवं तेषां प्रवदन्तां क्रुद्धानां च परस्परं।
समाविशत्तदाज्ञानं तमो मोहात्मकं विभो ॥९॥

अर्थ—ऐसे जब वे आपस में क्रोध करके लड़ने लगे, तो उन को महामोह नाम वाला बड़ा अज्ञान हो गया और शिवजी कहने लगे—

कृष्ण कृष्ण महाबाहो क्व गतस्त्वं महामते
ब्रह्मा च क्व गतो वीर नाहं पश्यामि वां क्वचित् ॥

अर्थ—अयि महाबाहो ! कृष्ण तुम कहां गये और ब्रह्मा कहां गया। मैं तुम दोनों को नहीं देखता।

मोहेन महताहं वै तमसा च विमोहितः।

किं करोमि क्व गच्छामि क्व चाहमधुना स्थितः॥१६॥

अर्थ—मैं बड़े भारी मोह रूपी अज्ञान में डूब गया हूं, क्या करूं कहां जाऊं, मुझ को पता नहीं कि मैं इस वक्त कहां हूं। यह सुन कर कृष्ण जी कहने लगे—

भीम भीम न जानेऽहं क्व भगवान् वर्त्ततेऽधुना।
ममापि मोहितं चेतः तमसातीव शंकरः ॥२०॥

अर्थ—अयि शिव मैं नहीं जानता आप कहां हैं। मेरा चित्त भी अत्यन्त अज्ञान में डूब गया है।

मुझ को संसार में कुछ नहीं दीखता। यह सुनकर ब्रह्माजी बोले "न शृणोमि न पश्यामि निद्रावशमहं गतः।" मैं कुछ नहीं देखता न सुनता हूं, मोह के प्रभाव से निद्रा के वश में चला गया हूं। अन्त में तीनों ने मिल कर सूर्य की स्तुति की और सूर्य ने उनका अज्ञान दूर किया तथा वर दान दिया।

श्रीमद्भागवत् में देखिये—

यद्वाचि तंत्र्यां गुणकर्मदामभिः
सुदुस्तरे वत्स वयं सुयोजिताः।
सर्वे वहामो बलिमीश्वराय
प्रोतानसीव द्विपदे चतुष्पदः॥ स्कं० ६।अ १५॥

अर्थ—गुण कर्म रूपी रस्सी में बंधे हुए मैं, ब्रह्मा शिवादि सब

उसी की भक्ति करते हैं वा उसी के पीछे चलते हैं जैसे नाक में नकेल डाल कर किसी पशु को मनुष्य जिधर चाहे ले जावे, वही हमारी दशा है।

यहां विष्णु को पूज्य देव बाकी सब को उनका दास बतलाया है। और लीजिये—

लिङ्ग पुराण में लिखा है—

शिवलिङ्गं समुत्सृज्य योऽन्यां देवतामुपासते।
स राजा सह देशेन रौरवं नरकं व्रजेत्॥

अर्थ—जो शिवलिंग की पूजा छोड़ कर दूसरे देवता की पूजा करता है, वह राजा समय अपने देश के रौरव नरक में जाता है।

प्रिय पाठक! ज़रा विचार कर देखिये पौराणिक पण्डित कहा करते हैं कि हम मूर्ति की पूजा नहीं करते किन्तु ब्रह्मादि की मूर्तियों में सर्वव्यापक परमात्मा की पूजा करते हैं और वह सब मूर्तियों में एक ही है। अगर ब्रह्मा, विष्णु, शिव एक ही ईश्वर हैं तो आपस में लड़ाई झगड़ा और एक दूसरे को छोटा बड़ा कहना कैसे हो सकता है? इस से तो पता लगता है कि इन में कोई भी परमात्मा नहीं। अगर परमात्मा होते तो इतना विरोध आपस में न होता। शिव पूजक के सिवाय दूसरे देवताओं की पूजा करने वाले नरक में जायेंगे, यह क्यों लिखा जब कि आप सब मूर्तियों में सर्व-

व्यापक परमात्मा की पूजा करते हैं। यह निरा आपका ढकोसला है जो आपने आर्यसमाज की अकाट्य युक्तियों से डर कर बनाया है।

फूट ने आर्यों का राज्य, धन, दौलत, देश, यौवन आदि सम्पूर्ण सम्पत्तियों को नष्ट कर डाला। फिर आर्य लोग इस हत्यारी को छोड़ते नहीं, इसका क्या कारण है ? मुझ से कोई पूछे तो मैं यही कहूंगा कि जिन के उपास्य देवों में आपस में लड़ाई झगड़ा वा फूट हो, उनके उपासकों में क्यों ना फूट हो।

जब आर्यों ने एक परमात्मा की पूजा छोड़ कर अनेक उपास्य देव बनाये, तो उनको ईश्वर सिद्ध करने के लिये एक २ देवता के लिये अलग अलग पुराण बनाने पड़े। और उनकी शक्लें, कपड़े, भोग, मंदिर, पूजा की विधियें, तिलक, स्तुति, सवारी आदि भी सब अलग २ बनाने पड़े। यही आर्यों की फूट का सब से बड़ा कारण है। इस लिये आर्य समाज का यह कार्य है कि वह इन सब झूठे परमात्माओं की पूजा को छुड़ा कर एक ईश्वर की पूजा में प्रवृत्त करावे। जब तक एक उपास्य देव और पूजा का एक तरीका वेश, भाषा, भूषा आदि न हो तब तक इस फूट का आर्य जाति से निकलना कठिन है।

समर्थ को दोष और देवाचार

श्रीकृष्णचन्द्रजी महाराज के आचार के विषय में श्रीमद्भागवत में

जो मिथ्या दूषण लगाये हैं उनसे भी सिद्ध होता है कि श्रीकृष्णजी परमात्मा नहीं थे। स्वयं भागवतकार ने यह शंका उठाई है—

कथं स धर्मसेतूनां वक्ता कर्ताऽभिरक्षिता
प्रतीपमाचरद् ब्रह्मन् परदाराभिमर्शनम् ॥२८॥

अर्थ—राजा परीक्षित शुकदेव जी से बोले कि हे राजन्! जो धर्म-मर्यादा के बांधने वाले उसकी रक्षा करने वाले होकर इसका जो.........(धर्म के विरुद्ध आचरण) क्यों किया।

उत्तर जो भागवत में शुकदेवजी की ओर से दिया गया है वह पाठकों को विशेष ध्यान से पढ़ने के योग्य है। लिखा है—

धर्मव्यतिक्रमो दृष्ट ईश्वराणां च साहसं।
तेजीयसां न दोषाय वह्नेः सर्वभुजो यथा ।३३।३०॥

अर्थ—जो समर्थ पुरुष होते हैं वे धर्म से उलटे चलते हैं, इस से उनको कोई दोष नहीं होता, जैसे आग में सब कुछ डाला हुआ भस्म हो जाता है। जो पौराणिक लोग कहा करते हैं कि कृष्ण ने कोई रास लीला में अधर्म नहीं किया वे इन श्लोकों को ध्यान से पढ़ें। यहां स्पष्ट भागवतकार ने माना है कि उन्होंने (धर्म के विरुद्ध आचरण) किया जो लोग कहते हैं समर्थ को दोष नहीं, उनसे नीचे लिखे प्रश्न पूछने चाहियें-

(१) अवतार धर्म की रक्षा के लिये होता है वा उसको तोड़ने के लिये? अगर धर्म की रक्षा के लिये होता है तो यह पाप

क्यों किया ?

(२) जब पौराणिक पण्डित कहते हैं कि निराकार परमात्मा भी सब कुछ कर सकता है किन्तु अवतार इस लिये लेता है ताकि मर्यादा बांधने से लोग भी वैसाही करें, तो क्या जैसे अवतार पाप करते हैं वैसे लोग भी करें।

(३) जब कृष्ण परमात्मा के अवतार थे तो पाप क्यों किया परमात्मा तो पाप से रहित है।

(४) शास्त्र के नियम भंग का जितना दोष शास्त्रज्ञ को होता है उतना एक शास्त्र से अनभिज्ञ मूर्ख को नहीं। कानून के विरुद्ध चलने का जितना दण्ड एक वकील को होता है उतना एक ५ साल के बच्चे को नहीं होता, दोष तो होता ही समर्थ को है।

जूआ

वेद में लिखा है "अक्षैर्मा दीव्यः" जूआ मत खेलो लेकिन पद्म पुराण में शिव पारवती का जूआ खेलना, जूआ खेलने की विधि बताना आदि अनेक बातें पुराणों में ऐसी लिखी हैं जो अवतार वा देवताओं को आचार से भ्रष्ट सिद्ध करती हैं। जिसका स्वयं आचार भ्रष्ट हो उसकी मूर्ति की पूजा करने से कैसे मनुष्य पवित्र हो सकता है? हमने पांच युक्तियें सप्रमाण दे कर यह सिद्ध कर दिया कि पुराणों की रू से भी मूर्ति पूजा ठीक नहीं।

तीसरा अध्याय

शंका समाधान

परमात्मा का मुख आदि

प्रश्न—वेद में लिखा है—

मुखाय ते पशुपते यानि चक्षुषि ते भवा ।
याते रुद्र शिवा तनू अघोरा पापकाशिनी ॥

अर्थ—इत्यादि अथर्व कांड ११ अनेक वेद मन्त्रों में परमात्मा के मुंह नाक, आंख, हाथ, पांव, शरीर आदि का स्पष्ट वर्णन आता है। इन स्पष्ट

शरीर बताने वाले मंत्रों की मौजूदगी में कौन कह सकता है कि परमात्मा की मूर्ति नहीं है।

उत्तर—सनातन धर्मी पण्डितों को एक बीमारी है। वे जहां कहीं वेद मन्त्रों में मुख, कान, नाक आदि शब्दों को देखते हैं झट कह देते हैं कि इन मंत्रों में परमात्मा के मुखादि का विधान है। इन लोगों को इस बात का ध्यान नहीं रहता कि राजा, प्रजा, जीवात्मा प्रधान पुरुष आदि का वर्णन भी तो वेद में आता है। सर्व मंत्रों में केवल परमात्मा का ही वर्णन तो नहीं आता इस लिये वेद मन्त्रों का अर्थ करते समय इन बातों का अवश्य ध्यान रखना चाहिये जैसे मीमांसा में लिखा है—

श्रुतिलिङ्गवाक्यप्रकरणस्थानसमाख्यानां
समवाये पारदौर्बल्यमर्थविप्रकर्षात्।

अर्थ—जब श्रुति, मन्त्र, लिङ्ग, वाक्य, प्रकरण, स्थान, समाख्या आदि के समवाय में उत्तरोत्तर दुर्बल होता है। इस सूत्र के अनुसार प्रकरणादि का अवश्य ध्यान रखना चाहिये। जो मन्त्र पौराणिकों की ओर से पेश किये जाते हैं उनका अर्थ परमात्मा नहीं, किन्तु उनमें राजा को नमस्कार आदि करना लिखा है, कई पौराणिक कहा करते हैं कि यहां स्पष्ट पशुपति शब्द आता है, जिसका अर्थ महादेव होता है यह भी इनका

कहना ठीक नहीं। पशुपति नाम राजा का है जैसे अथर्ववेद में लिखा है "प्रियो गवामोषधीनां पशूनाम्" राजा गौ ओषधि आदि का प्रिय पति रक्षक है, इस लिये इन दोनों मन्त्रों में इन्द्र पशुपति आदि नाम परमात्मा के नहीं किन्तु राजा के हैं। जहां कहीं वेद में मुख कान नाक आदि का वर्णन आता है वहां सब जगह इन मन्त्रों में प्रधान पुरुष राजा प्रजा आदि जीवका वर्णन है न कि परमात्मा का।

चक्रपाणि और मूर्त्तिपूजा

प्रश्न—"नील ग्रीवाय नमः, चक्रपाणये नमः" आदि यजु. १६ मन्त्रों में स्पष्ट ही नील कण्ठ महादेव वा चक्रधारी विष्णु का वर्णन है, फिर समाजी मूर्ति पूजा क्यों नहीं मानते ?

उत्तर—यहां भी चक्रपाणि वा नील ग्रीव का अर्थ पौराणिकों के कल्पित बैल पर चढ़ने वाले महादेव का नहीं है। किन्तु राजा का है। जिस राजा के गले में नील मणियों का हार हो उसको नील ग्रीव कहते हैं। तथा शासनरूपी चक्र वा शत्रु-नाशक चक्र हथियार जिस राजा के हाथ में हो उसको चक्र-पाणि कहते हैं। चक्रवर्ती राज्य ऐसे ही चक्रधारी राजाओं की कृपा से कहलाता है। जो लोग चक्रपाणि शब्द का अर्थ परमात्मा करते हैं, वहां चक्र का अर्थ है संसार चक्र तथा पाणि का अर्थ है व्यापार वा व्यवहार साधक शक्ति अर्थात् परमात्मा

संसार चक्र की उत्पत्ति पालना संहार आदि व्यापार को अपनी शक्ति के अधीन रखने वाला होने से चक्रपाणि कहलाता है। "चक्रं संसारचक्रं पाणौ व्यवहारसाधिकायां शक्तौ यस्य स चक्रपाणि।" संसार चक्र है व्यवहार साधक शक्ति में जिसके वह चक्रपाणि है।

षड्विंश ब्राह्मण और मूर्त्तिपूजा

प्रश्न—षड्विंश ब्राह्मण में लिखा है—

यदा देवायतनानि कम्पन्ते दैवतप्रतिमा हसन्ति रुदन्ति नृत्यन्ति स्फुटन्ति स्विद्यन्ति निमिलंति इत्यादि ॥

अर्थ—जब देवताओं के स्थान कांपते हैं तो देवताओं की प्रतिमा हंसती हैं रोती हैं और नाचती हैं चमकती हैं प्रतिमाओं को पसीना आता है। या कि नेत्रों को तेज़ी से खोलती हैं या नेत्रों को वन्द करती हैं। उस समय में प्रायश्चित्त होता है ॥

ब्राह्मण वचन में कितना स्पष्ट लिखा है कि देवताओं की मूर्तियें हंसती हैं गाती हैं नाचती हैं। अगर देवताओं की मूर्तियें न होतीं तो उनकी पूजा न होती। इस पाठ की संगति कैसे हो सकती है।

उत्तर—मूर्तिपूजा के लिये पौराणिकों के विचार में यह अकाट्य प्रमाण है इस प्रमाण को देकर सनातनी

फूले नहीं समाते। किन्तु इससे भी मूर्तिपूजा सिद्ध नहीं होती। इस के विषय में नीचे लिखी युक्तियें हैं।

(१) इस प्रमाण में लिखा है कि देवताओं की प्रतिमायें मूर्तियें हंसती, नाचती, गाती, रोती हैं। बस जिस दिन पौराणिक इन मंदिरों में रखी हुई पीतल, लोहे, मट्टी, पत्थर आदि की मूर्तियों को हंसते रोते गाते नाचते दिखला देंगे उस समय हम मूर्ति पूजा को मान लेंगे। हम पुजारी वा दूसरे मूर्ति-पूजकों से पूछते हैं कि क्या कभी आपने इन मूर्तियों को ये काम करते देखा है? अगर नहीं देखा तो आपको भी इस प्रमाण के अनुसार मूर्ति पूजा छोड़ देनी चाहिये जब तक ये मूर्तियें हंसने आदि का कार्य न करें।

(२) इस प्रमाण में मूर्तियों का हंसना आदि लिखा है लेकिन मन्दिरों में रखी हुइ मूर्तियों में इन कामों में से कोई भी कार्य दिखाई नहीं देता। इस से पता लगता है कि वे मूर्तियें वा देवता जो हंसते रोते हैं कोई दूसरे ही हैं।

(३) अगर पौराणिक मूर्तियों में व्यापक परमात्मा की पूजा करते हैं जैसे कि उनकी बनाई मूर्ति पूजा मंडन की पुस्तकों में लिखा है तो फिर बतलायें कि परमात्मा किसके भय से रोता है वा कांपता है, यह रोना कांपना परमात्मा में नहीं हो सकता। टूटना, रोना, डरना आदि सांसारिक जीवों में हो

सकता है न कि परमात्मा में। वेद तो कहता है तमेव विद्वान् न बिभाय मृत्योः उस ईश्वर को जानने वाला मौत से नहीं डरता जब उसका भक्त भी डरता कांपता नहीं तो परमात्मा कैसे डर वा कांप सकता है।

विराट् स्वरूप

प्रश्न—वेद में लिखा है यस्य भूमि प्रमान्तरिक्षमुतोदरं दिवं यश्चक्र मूर्धानं तस्मै ज्योष्ठाय ब्रह्मणेनमः। परमात्मा की भूमि पैर अन्तरिक्ष पेट द्यु लोक शिर इत्यादि परमात्मा के मुँह कान नाक पेट आंख आदि सब अवयवों का वर्णन किया है फिर आर्य समाजी क्यों मूर्ति पूजा से इनकार करते हैं।

उत्तर—इस मंत्र में रूपक अलंकार है। मुझको इन पौराणिकों की बात पर बड़ा आश्चर्य होता है। ये शास्त्र को पढ़ते हुए भी अपने स्वार्थ के लिये उस पर लेपन फेरने की कोशिश करते हैं। अगर कोई आदमी किसी को शेर कहता है तो इस का यह अर्थ नहीं होता कि उसके पूंछ आदि भी हैं बल्कि उस का अर्थ यह है कि वह शेर की तरह बलवान् है। पैर की तरह चलने का साधन होने से पृथ्वी को पैर, पेट की तरह पोला होने से

अन्तरिक्ष को पेट, आंखों की तरह दिखाने वाले होने से सूर्य वा चांद को आंख कहा है। इस शास्त्र के मर्म को न समझ कर ये पौराणिक ऐसी ऊट पटांग बातें कहते हैं।

अग्नि और ईश्वर

प्रश्न —जैसे आग लकड़ी पत्थर कोयले आदि में प्रथम निराकार होता है पीछे साकार होजाता है वा सब को दिखाई देता है, इसी प्रकार परमात्मा पहले निराकार होता है पीछे साकार होजाता है।

उत्तर—शास्त्रों में लिखा है कि रूप अग्नि का स्वाभाविक गुण है, जिसका स्वाभाविक गुण रूप हो वह कभी निराकार नहीं हो सकता। शास्त्रों में अग्नि की दो अवस्थायें बतलाई हैं एक उद्भूत और दूसरी अनुद्भूत। जब अग्नि के अवयव अलग २ होते हैं तब वह दिखाई नहीं देती किन्तु जब रगड़ आदि से प्रकट होते हैं तब दिखाई देती है। इसका यह अर्थ नहीं है कि वह निराकार है यदि दूध में घी नहीं दीखता वा तिल में तेल नहीं दीखता तो इसका यह अर्थ नहीं है कि वह घी वा तेल पहले नहीं था और पीछे से आगया। जो चीज़ें निराकार हैं वे कभी साकार नहीं हो सकतीं। जीवात्मा निराकार है यह किसी अवस्था में भी

साकार नहीं होता आकाश निराकार है वह किसी भी अवस्था में साकार नहीं होता।

ब्रह्म के दो रूप

प्रश्न—"द्वेवाव ब्रह्मणो रूपे मूर्तश्चैवामूर्तञ्च" ब्रह्म के दो रूप हैं एक मूर्त और दूसरा अमूर्त जब श्रुति परमात्मा के दो रूप मुर्त वा अमूर्त अर्थात् साकार वा निराकार बतलाती है तो आप मूर्ति पूजा से क्यों घबराते हैं?

उत्तर—इस मंत्र का अर्थ यह नहीं है जो तुम करते हो किन्तु प्रकरण पढ़ने से यदि यह अर्थ होता है कि ब्रह्म के दो रूप हैं यहां स्वस्वामी भाव सम्बन्ध में षष्ठी विभक्ति है जैसे कोई कहता है रामदेव के दो लड़के हैं इसका यह अर्थ नहीं होता कि रामदेव या लड़के एक ही हैं। इसी श्रुति को आगे चलकर खोला है—अन्तरिक्ष वा वायु अमूर्त, वा पृथ्वी, जल, अग्नि, मूर्त हैं। परमात्मा इन दोनों प्रकार के भूतों का स्वामी है कई लोग कहते हैं कि रूप शब्द का अर्थ ब्रह्म का स्वरूप है, यह ठीक नहीं। रूप शब्द रूपवान् वा रूप दोनों का वाचक है। आगे चल कर जो रूपवानोंका रूप मूर्त अमूर्त भेद बतलाया है वह ब्रह्मका नहीं किन्तु भूतों का बतलाया है। कई पौराणिक पण्डित कहा करते हैं कि अग्नि, वायु, पृथ्वी आदि भी तो ब्रह्म ही है। इन पौराणिकों की बुद्धि भी विचित्र ही है भला अगर सब कुछ ब्रह्म है तो

मूर्तिपूजा कौन करेगा? भोग कौन लगावेगा? पूज्य, पूजा करने वाला, वा जिन साधनों से पूजा करते हैं सब ब्रह्म ही है।

अक्षर ज्ञान और मूर्तिपूजा

प्रश्न—जैसे ज्ञान निराकार है वा क, ख, ग आदि अक्षर निराकार हैं किन्तु उस निराकार ज्ञान तथा अक्षरों की प्राप्ति के लिये वेद की पुस्तक साकार वा निराकार अक्षरों की प्राप्ति के लिये साकार अक्षर होते हैं इसी प्रकार निराकार परमात्मा की प्राप्ति के लिये कल्पित बनावटी साकार मूर्तियें होती हैं।

उत्तर—यहां भी पौराणिकों का वदतो व्याघात दोष है, कभी तो ये कहते हैं निराकार परमात्मा स्वरूप से साकार हो जाता है इस लिये उसके शास्त्र में साकार वा निराकार दो रूप बतलाये हैं। कभी कहते हैं वह है तो निराकार किन्तु जैसे जीवात्मा निराकार होता हुआ भी जब शरीर धारण करता है तो उसके शरीर की मूर्ति बनाई जाती है। यहां इन दोनों बातों से विरुद्ध यह बात है कि न तो वह शरीर धारण करता है और न साकार है किन्तु जैसे अक्षर के निराकार होने पर भी उसकी प्राप्ति के लिये कल्पित बनावटी साकार अक्षर होते हैं इसी प्रकार परमात्मा की कल्पित साकार बनावटी मूर्तियें हैं। इसका उत्तर नीचे लिखा है—

(१) जो साकार अक्षर होते हैं वह निराकार अक्षरों की शकल नहीं हैं, अगर निराकार अक्षरों की शकल होती तो एक जैसी होनी चाहिये थी। किन्तु संस्कृत, फ़ारसी, अंगरेज़ी, अरबी, जापानी आदि भाषाओं में इन अक्षरों की शकलें अलग २ पाई जाती हैं इससे पता लगता है कि ये शकलें निराकार अक्षरों की नहीं।

(२) साकार अक्षरों से निराकार अक्षरों वा शब्दों का बोध नहीं होता किन्तु निराकार अक्षरों वा शब्दों से साकार का बोध होता है। जब तक किसी बालक को निराकार अक्षर वा शब्दों से साकार अक्षरों का ज्ञान बार २ न करा दिया जावे तब तक लिखे होने पर भी अक्षर वा शब्द बोध नहीं होता।

(३) यह बात ग़लत है कि साकार अक्षरों के बिना ज्ञान नहीं हो सकता। कई प्रज्ञाचक्षु जन्म के अन्धे बिना साकार अक्षरों के निराकार अक्षरों से ही बड़े २ पण्डित हो जाते हैं।

(४) अलग २ स्वरूप वाले अलग २ लक्षण वाले नित्य वा अनित्य साकार वा निराकार अक्षर भिन्न भिन्न होते हैं कोई किसी की मूर्ति वा शकल नहीं होता। स्याही से काग़ज़ पर लिखे अक्षर अलग होते हैं वा जो हम मुख से उच्चारण करते हैं वे अक्षर अलग होते हैं।

(५) अगर कहो, कि एक नहीं है तो साकार अक्षरों से निराकार

अक्षरों का बोध क्यों होता है?" इसका उत्तर यह हैं—किसी की शकल होना कुछ और बात है और बोध होना दूसरी बात है, जैसे देवदत्त का बूट देखकर कोई आदमी कहता है कि देवदत्त घर में है। यहां बूट को देखकर देवदत्त का बोध होने से यह नहीं सिद्ध होता कि बूट देवदत्त की शकल है।

(६) सम्पूर्ण संसार को देखकर भगवान् का ज्ञान वा बोध होता है इससे ईश्वर की मूर्ति वा शकल या संसार की पूजा सिद्ध नहीं होती।

(७) जितनी मूर्तियें पौराणिक लोगों ने मन्दिरों में रक्खी हैं उन में से निराकार परमात्मा की कल्पित मूर्ति कोई भी नहीं है; किन्तु सब साकार ब्रह्मा आदि की मूर्तियें हैं और उनको हम पुराण वा वेद के प्रमाण देकर सिद्ध कर चुके हैं कि वे परमात्मा नहीं थे।

योगदर्शन और मूर्तिपूजा

प्रश्न—योगदर्शन में लिखा है—'यथाभिमत ध्यानाद्वा' जो चीज़ किसी मनुष्य को अभिमत या विवांछित हो उसी का ध्यान कर लेना चाहिये इसमें कोई हानि नहीं। इस लिये इस सूत्र के अनुसार हम ब्रह्मा आदि मूर्तियों की पूजा करते हैं।

उत्तर—योगदर्शन को हम दो विभागों में बांट सकते हैं एक वह हिस्सा है जिसमें अनेक प्रकार की सिद्धियें बतलाई हैं, दूसरा

वह भाग जिसमें परमात्मा की प्राप्ति है। ईश्वर की प्राप्ति के लिये यह बतलाया है कि ये सम्पूर्ण अणिमा आदि सिद्धियें समाधी वा योग में बाधक हैं इनको परमात्मा की प्राप्ति के इच्छुक को छोड़ देना चाहिये। प्रमाण यह है—

"ते समाधावुपसर्गाः व्युत्थाने सिद्धयः ॥"

यो० पा० ३ ० ३६

ये समाधि में विघ्न हैं व्युत्थान में सिद्धियें हैं।

इसी लिये योग वा सांख्य में ध्यान के दो लक्षण किये हैं जो परमात्मा का ध्यान है उसके विषय में लिखा है—'ध्यानं निर्विषयं मनः' सम्पूर्ण सांसारिक विषयों से मन को हटा कर परमात्मा में लगाना ध्यान है। यह केवल ईश्वर विषयक ध्यान है दूसरा— 'तत्र प्रत्यैकतानता ध्यानम्' किसी एक देश में चित्त को बांधना और उसी विषय में एकाग्रता का नाम ध्यान है, इस ध्यान के द्वारा अनेक प्रकार की विद्याओं का साक्षात्कार किया जाता है इसी लिये योग में लिखा है "नाभिचक्रे काया-व्यूहज्ञानम्" नाभिचक्र में ध्यान धारणा समाधि करने से शरीर की बनावट का ज्ञान होता है। 'सूर्ये संयमात् भुवन ज्ञानं' सूर्य में संयम करने से भुवन का ज्ञान होता है। 'कंठकूपे क्षुत-पिपासानिवृत्तिः' कंठ कूप नाड़ी में संयम करने से भूख और प्यास की निवृत्ति होती है। इत्यादि अनेक सूत्रों में ध्यान

धारणा समाधि का फल परमात्मा की प्राप्ति नहीं लिखा किन्तु अनेक प्रकार की विद्या वा सिद्धियों का फल बतलाया है, जैसे आज कल के सांयसदान लोग आकाश में उड़ना दूर के शब्दों को सुनना आदि कार्य भौतिक यंत्रों के द्वारा करते हैं वैसे ही योगी भी अनेक भूतों में संयम करके उनके गुणों से लाभ उठा कर दूर के शब्दों को सुनना आदि अनेक कार्य कर सकता है किन्तु ये सब सिद्धियें परमात्मा प्राप्ति की साधक नहीं किन्तु बाधक हैं, इसी लिये इनके छोड़ने का योग में उपदेश है।

दूसरी बात यह है कि पौराणिक यह धोखा देते हैं कि हम मूर्ति का ध्यान करते हैं, किन्तु वे मूर्ति को परमात्मा मानकर उसकी पूजा करते हैं यह हम आगे चल कर लिखेंगें। जैसे मनुष्य अपने शरीर में के किसी हिस्से में मन को लगा कर उस २ हिस्से वा उस से पैदा होने वाली विद्या वा उस अङ्ग के फल को प्राप्त होता है। इसी प्रकार वनस्पतियों में ध्यान धारणा समाधि से मन को एकाग्र करने वाला वनस्पति विद्या वा पक्षियों में मन को लगाने वाला पक्षिविद्या, जल-जन्तुओं में ध्यान करने वाला जलजंतुविद्या वा पहाड़ धातु आदि में मन लगाने वाला सुवर्ण आदि धातुविद्या, आकाश में ध्यान लगाने वाला ज्योतिष् विद्या का साक्षात्कार करता है। इस ध्यान का फल अनेक प्रकार की विद्याओं का साक्षात-

कार है परमात्मा की प्राप्ति नहीं।

मूर्त्ति में व्यापक की पूजा

प्रश्न—हम मूर्ति की पूजा नहीं करते किन्तु उसमें व्यापक परमात्मा की पूजा करते हैं। यह नहीं कहते कि हे पत्थर! तुझको नमस्कार है वा तू परमात्मा है, बल्कि सर्वव्यापक भगवान् की ही स्तुति करते हैं।

उत्तर—यदि मूर्तियों की पूजा नहीं करते और सर्वव्यापक परमात्मा का ध्यान करते हो तो नीचे लिखी युक्तियों का उत्तर दो—

(१) भविष्य पुराण मध्यम पर्व अ० ७ में लिखा है—

> वासुदेवाग्रतश्चापि रुद्रमाहात्म्यवर्णनं
> रुद्राग्रे वासुदेवस्य कीर्तनं पुण्यवर्धनम्।
> दुर्गाग्रे शिवसूर्यस्य वैष्णवाख्यानमेव च
> यः करोति विमूढात्मा गार्दभीं योनिमाविशेत्॥२१॥

अर्थ—जो मनुष्य वासुदेव की मूर्ति के आगे शिवजी की स्तुति करता है शिवजी के आगे वासुदेव की स्तुति करता है, दुर्गा के आगे शिव सूर्य वा विष्णु की स्तुति करता है, वह मूर्ख आदमी गधे की योनि में जाता है। कहिये श्रीमान् जी! कैसी सर्वव्यापक की पूजा रही? अगर आप मूर्तियों में व्यापक परमात्मा

की पूजा करते हैं तो वह सब मूर्तियों में एक ही व्यापक है फिर यह सज़ा क्यों ? और सुनिये—

शिवलिङ्गं समुत्सृज्य योऽन्यां देवतामुपासते ।
स राजा सह देशेने रौरवं नरकं व्रजेत् ॥
३५ स्कं० लिं० पु० उ० अ० १२ ॥

अर्थ—जो राजा शिव लिङ्ग की पूजा छोड़ कर दूसरे देवताओं की पूजा करता है वह रौरव नरक में जाता है। क्या इन श्लोकों की मौजूदगी में भी आप यह कहने का साहस करेंगे कि आप मूर्ति में व्यापक परमात्मा की पूजा करते हैं ?

(२) देवालयेषु सर्वेषु वर्जयित्वा शिवालयं,
देवानां पूजनं राजन् अग्निकार्यं च वा विभो॥भविष्य,ब्राह्मपर्व
अ० २१० श्लोक ५६ ॥

अर्थ—हे राजन् शिवालय को छोड़कर बाकी सब मन्दिरों में देवताओं की पूजा वा हवन करना चाहिये। अगर मूर्तियों में सर्वव्यापक परमात्मा की पूजा करते हैं तो शिवालय की निन्दा क्यों की ?

(३) अगर आप सर्वव्यापक का ध्यान करते हैं तो नीचे लिखी बात का उत्तर देवें। नीचे लिखी बात से यह सिद्ध होगा कि आप मूर्ति में व्यापक परमात्मा का ध्यान नहीं करते किन्तु मूर्ति की पूजा करते हैं।

पुष्पं धूपं तथा दीपं नैवेद्यं सुमनोहरं ।
खंडलड्डूकश्रीवेष्टकासाराशोकवर्तिका
फलानिचैव विविधानि लग्नखंडगुडानि च ॥६४॥
भवि० ब्रा० प० अ० १७ !

अर्थ—फूल, दीवा, धूप, नैवेद्य, खांड, लड्डू, बत्ती, फल, गुड़ आदि से पूजा करे । इसमें फूलादि से पूजा है न कि ध्यान—

ब्रह्मणो दर्शनं पुण्यं दर्शनात् स्पर्शनं वरं
स्पर्शनादर्चनं श्रेष्ठं घृतस्नानमतःपरं ॥ ७० ॥

अर्थ—ब्रह्म का दर्शन पुण्य है, दर्शन से भी स्पर्शन पुण्य है, और छूने से भी पूजना श्रेष्ठ है, और घृत स्नान अति श्रेष्ठ है ।

नैरन्तर्येण यः कुर्यात् पक्षं संमार्जनार्चनम् ।
युगकोटिशतं साग्रं ब्रह्मलोके महीयते ॥भ० ब्रा०अ१७॥

अर्थ—एक पक्ष तक यदि कोई निरन्तर ब्रह्मा के मन्दिर में झाड़ु देवे तो एक अरब युग तक ब्रह्म लोक में रहता है ।

कई बार पौराणिक कह दिया करते हैं कि यह फल श्रद्धा से भक्ति करने से मिलता है । यह भी इनका कहना ठीक नहीं । अगले श्लोक में लिखा है—

कपटेनापि यः कुर्यात् ब्रह्मशालां सुमानद ।
संमार्जनादि वै कर्म सोऽपि तत् फलमाप्नुयात् ॥२७॥

अर्थ—जो कोई कपट छल से भी ब्रह्मा के मन्दिर में झाड़ु लेपन आदि देता है उसको भी वही फल मिलता है जो एक श्रद्धा से करने वाले को मिलता है। इससे यह पौराणिकों का कथन ग़लत है कि श्रद्धा वाले को ही मिलता है।

कल्पकोटिसहस्रैस्तु यत् पापं समुपार्जितं।
पितामहघृतस्नानं दहत्यग्निरिवेन्धनम् ॥५२॥

अर्थ—करोड़ों कल्पों में जो पाप संचित किया है वह ब्रह्मा को घी से स्नान कराने पर सब दूर होजाता है इसी प्रकार पुराणों में अनेक स्थान में स्नान, मार्जन, आचमन, धूप, दीप, नैवेद्य, मंदिर बनाना, दीवा जलाना आदि बातों का बड़ा माहात्म्य लिखा है। इन माहात्म्यों के होते हुए पौराणिकों का यह कहना कि हम मूर्ति की पूजा नहीं करते उसमें व्यापक परमात्मा की पूजा यानि ध्यान करते हैं ठीक नहीं। अगर ये मूर्ति का ध्यान करते तो लेपन आदि का इतना माहात्म्य नहीं लिखना चाहिये था, किन्तु ध्यान का लिखना था।

(४) यदि आप सर्वव्यापक परमात्मा की पूजा करते हैं तो फूल आदि में भी परमात्मा है, फिर ईश्वर को प्रसन्न करने के लिये फूल मूर्ति पर क्यों चढ़ाते हैं? हाथ, मत्थे आदि में भी ईश्वर है उस को क्यों जोड़ते वा झुकाते हैं। इस पर कई पौराणिक कहा करते हैं कि रोटी में भी परमात्मा है और दांतों में भी, फिर

दांत से रोटी क्यों चबाते हैं सामग्री में भी परमात्मा है, ऊखल मूसल में भी फिर उसको क्यों कूटते हैं। यहां भी पौराणिक लोग छल से काम लेते हैं। जैसे पौराणिक मूर्ति के परमात्मा को प्रसन्न करने के लिये उस पर फूल चढ़ाना आदि कार्य करते हैं। यदि आर्य समाजी भी रोटी को दांत पर दांतों के परमात्मा को प्रसन्न करने के लिये चढ़ावें, तब उनके लिये यह शंका हो सकती है कि जब रोटी वा दांत दोनों में परमात्मा है तो तुम रोटी को दांतों पर क्यों चढ़ाते हो ? उपर्युक्त युक्तियों से सिद्ध है कि पौराणिक मूर्ति में व्यापक ईश्वर का ध्यान वा पूजा नहीं करते, किन्तु मूर्ति की पूजा करते हैं।

प्रश्न—ईश्वर के सर्वव्यापक होने से मूर्ति में भी है फिर मूर्तिपूजा से आर्यसमाजी क्यों घबड़ाते हैं ?

उत्तर—जब हमारे सम्पूर्ण शरीर वा हृदय में भगवान् विद्यमान् है तो हमको क्या आवश्यकता है कि हम मूर्ति की पूजा करें ? दूसरी बात यह है कि मूर्ति में परमात्मा होने पर भी ईश्वर का साक्षात्कार करने वाला हमारा आत्मा उसमें नहीं है इस लिये मूर्तिपूजा ठीक नहीं।

करैन्सी नोट और मूर्तिपूजा

प्रश्न—जैसे एक कागज़ के टुकड़े पर किसी राजा महाराजा की

मुहर यानि उसकी तस्वीर आदि देने से वह कीमती नोट हो जाता है। इसी प्रकार मूर्ति पर परमात्मा की मुहर होने से वह पूजनीय होजाता है।

उत्तर–(१)जितने काग़ज के नोट निकाले जाते हैं उतना ही सोना चांदी सरकार को जमा करना पड़ता है जब कोई चाहे उन काग़ज़ों का सोना चांदी लें सकता है। इस लिये वह काग़ज़ों की कीमत नहीं किन्तु सोने चांदी की है। इतने पर भी लोग इनका विरोध करते हैं।

(२) आपके पास इस बात का क्या प्रमाण है कि मन्दिर में रक्खी हुई मूर्तियों पर परमात्मा की मुहर लगी हुई है जब तक आप यह सिद्ध नहीं करते कि परमात्मा ने इन मूर्तियों पर मोहर लगाई है तब तक आपकी बात मानने के योग्य नहीं।

(३) जाली नोट बनाने वाला जेलख़ाने में डाल दिया जाता है। पौराणिक लोगों ने भी देवी भागवत के कथनानुसार ये सब जाली नोट मूर्तियें अपने पेट भरने के लिये बनाई हैं इसलिये अवश्य जेलख़ाने में डाले जावेंगे।

—(देखो पृष्ठ, पुराण प्रकरण)

बादशाही के बदलने से उनके काग़ज के नोट नहीं चलते जैसे टांगानिका से जर्मन का राज्य जाने पर दस्ते के दस्ते काग़ज़ों के नोट निकम्मे हो गये।

परमात्मा के शरीर की पूजा

प्रश्न—मूर्ति परमात्मा का शरीर है देह की पूजा से देही प्रसन्न होता है इसलिये मूर्ति पूजा ठीक है।

उत्तर—न्याय दर्शन में लिखा है—**चेष्टेन्द्रियार्थाश्रयः शरीरम्।** जिसमें चेष्टा करना, न करना, उलटा करने की हरकत, इन्द्रिय वा विषयों के ग्रहण करने की शक्ति का जो अधिष्ठान हो उस को शरीर कहते हैं मूर्तियों में कोई भी शरीर का लक्षण नहीं पाया जाता इसलिये वह शरीर नहीं। और मूर्ति परमात्मा का शरीर है इसके लिये तुम्हारे पास क्या प्रमाण है? कई कह दिया करते हैं **पृथिवी यस्य शरीरं** पृथिवी परमात्मा का शरीर है। हम सिद्ध कर आये हैं कि जहां पृथिवी आदि परमात्मा का शरीर बतलाया वहां रूपकालंकार है। दूसरी बात यह है कि यहां पृथिवी को शरीर कहा है न कि मूर्ति को। यदि कहो मूर्ति भी तो पृथिवी है तो इससे सर्व पूजा का प्रसंग आयगा। जितने संसार में पार्थिव पदार्थ भले बुरे हैं उन सब की पूजा क्यों नहीं करते? इस लिये यह निरा ढकोसला है।

सर्वव्यापक परमात्मा और चूहे

प्रश्न—आर्य समाजी जो यह कहते हैं कि अगर मूर्ति परमात्मा

का शरीर है तो उस पर चूहे आदि जब चढ़ते हैं तो उनको मारती क्यों नहीं ? जब आर्य समाजियों के सर्वव्यापक परमात्मा में सब कुछ होता है और वह किसी को कुछ नहीं कहता तो मूर्तियों के विषय में यह शंका क्यों ?

उत्तर—आर्यसमाजियों का परमात्मा पौराणिक शिवकी तरह कहीं किसी राक्षस को वर दान देना, वही राक्षस पार्वती के लेने का आग्रह करता है तो उस से लड़ाई करना, डरके मारे भाग कर नैपाल में छिपना, जब स्वयं उसको न मार सके तो विष्णु की सहायता लेना, कभी प्रसन्न होकर वर देना, कभी बैल पर चढ़कर हाथ में त्रिशूल लेकर लड़ना आदि कार्य नहीं करता इस लिये आर्यों की यह शंका ठीक है कि जब वह अपने शत्रुओं को मारता है तो उन चोरों को जो मूर्तियों वा मूर्तियों के ज़ेवरों को चुराते हैं क्यों नहीं मारता? चूहे कौन से योगीराज हैं जो उन को कुछ नहीं कहता।

निराकार का ध्यान

प्रश्न—जब परमात्मा निराकार है उस की कोई मूर्ति नहीं तो ध्यान कैसे कर सकते हैं ?

उत्तर—ध्यान नाम है चिन्तन का। चिन्तन निराकार चीज़ों का भी होता है। शब्द निराकार है किन्तु उस को सुनकर सब मनुष्य चिन्तन करते हैं जितने भी सांसारिक पदार्थ हैं उनके

द्वारा जो आनन्द सुख वा दुःख मिलता है वह निराकार होता है किन्तु सम्पूर्ण संसार उसका चिन्तन करता है। परमात्मा आनन्द स्वरूप है तो वह भी निराकार ही होगा और उसका चिन्तन भी हो सकेगा।

स्वामी जी का फ़ोटो

प्रश्न—यदि आर्यसमाजी मूर्ति पूजा नहीं मानते तो दयानन्द जी की मूर्तियें क्यों समाज मन्दिरों में लगाते हैं, क्या यह मूर्ति पूजा नहीं?

उत्तर—आर्य समाज जड़ मूर्ति पूजा का विरोधी है न कि चित्र-कला वा मूर्ति निर्माणविद्या का। कहीं आर्यसमाज की पुस्तकों में यह नहीं लिखा कि स्वामी दयानन्द आदि महा-पुरुषों की मूर्तियों पर धूप दीपादि चढ़ाने से मुक्ति हो जाती है।

प्रश्न—यदि स्वामीजी की मूर्ति नहीं पूजते तो उसकी बेइज्जती करने से क्यों घबराते हैं?

उत्तर—जो महापुरुषों की मूर्तियें होती हैं वह हमारी सम्पत्ति हैं, अगर कोई मनुष्य हमारी किसी चीज़ को बिगाड़ता है तो स्वाभाविक ही है, हम उस पर क्रोधित होते हैं यदि कहें कि यदि कोई दूसरा आदमी करे तो उसकी भी मूर्खता है

जो अपनी सम्पत्ति को व्यर्थ नष्ट करता है ऐसे मूर्ख को शिक्षा देना भी हमारा काम है। दूसरी बात यह है कि जब घर में रक्खी किसी महापुरुष की मूर्ति वा चित्र को बालक देखेंगे तो उसके जीवन चरित्र पढ़ने वा उसकी बनाई पुस्तकों को देखने से उन को लाभ होगा।

नकशा और मूर्त्तिपूजा

प्रश्न—जैसे नकशे को देखकर असली पहाड़ वा नदी आदि का ज्ञान बालकों को हो जाता है इसी प्रकार मूर्ति को देख कर परमात्मा का ज्ञान होता है।

उत्तर—पहाड़ नदी जंगल आदि सब चीज़ें साकार हैं इस लिये उनका चित्र, नकशा बन सकता है किन्तु परमात्मा के निराकार होने से उस का चित्र नहीं बना सकते।

काल और मूर्त्तिपूजा

प्रश्न—जैसे काल के निराकार होने पर भी साकार घड़ी से निराकार काल का ज्ञान होता है इसी प्रकार मूर्ति से परमात्मा का ज्ञान होता है।

उत्तर—सम्पूर्ण संसार की विचित्र रचना को देखकर यह ज्ञान होता है कि इस संसार के बनाने वाला सर्वज्ञ परमात्मा है

इस से मूर्ति पूजा वा परमात्मा की मूर्ति सिद्ध नहीं होती। ईश्वर की कृति को देख कर परमात्मा का ज्ञान होता है मूर्ति को देखकर जिस साकार ब्रह्मा आदि मनुष्य की मूर्ति है उसका वा कारीगर का ज्ञान होता है परमात्मा का नहीं। दूसरी बात यह है कि जैसे टकटक करके घड़ी काल का ज्ञान कराती है वैसे मूर्ति नहीं। बन्द घड़ी से काल का ज्ञान नहीं होता।

साकार की मूर्ति

प्रश्न—हम साकार परमात्मा की मूर्ति बनाते हैं निराकार की नहीं।

उत्तर—मूर्ति दो ही अवस्थाओं में हो सकती है।

(१) किसी चीज़ के अणु (ज़र्रे) पहले अलग २ हों, फिर उनको इकट्ठा कर दिया जावे तो उसकी स्थूल शकल बन जाती है।

(२) जीवकी तरह अगर परमात्मा शरीर धारण करे तो उसकी मूर्ति बन सकती है। अगर परमात्मा के अणु माने जावें जब वह अणु मिल कर साकार परमात्मा बना, तब उन ज़र्रों को किसने मिलाया ? ज़र्रे मिलकर साकार परमात्मा बनने से पहले परमात्मा नहीं था। बनी हुई चीज़ बिगड़ती है, जब अणु अलग २ होजावेंगे तब भी परमात्मा नहीं रहेगा। इत्यादि युक्तियों से अणुओं से परमात्मा का बनना सिद्ध नहीं होता। शरीर धारण वही करता है जिसके शुभ अशुभ

कर्म हों, तब फल भोगने के लिये शरीर मिलता है परमात्मा के ऐसे कर्म नहीं होते जिनके लिये उसको शरीर धारण करके उसका फल भोगना पड़े और उसको फल कौन भुगतावेगा? वेद में स्पष्ट लिखा है कि वह कर्मों के फल को नहीं भोगता। जो शरीर धारी होगा वह हमारी तरह सुख दुःख भोगने वाला होने से परमात्मा नहीं हो सकता इस बात को अधिक विस्तार से अवतार मीमासां पुस्तक में लिखूंगा। प्रायः यही युक्तियें पौराणिक पेश किया करते हैं जिनका उत्तर मैंने दे दिया है।

चौथा अध्याय

वेद और मूर्त्तिपूजा

परमात्मा के नाम

शास्त्रार्थों में पौराणिक पण्डित कह दिया करते हैं कि आर्यसमाजियों को पुराण के प्रमाण न देकर वेद के प्रमाण मूर्तिपूजा के खण्डन करने के लिये देने चाहियें इस लिये मैं इस प्रकरण में वेद के प्रमाण देकर यह सिद्ध करूंगा कि वेद में कहीं भी जड़ मूर्तिपूजा के प्रमाण नहीं मिलते इससे विरुद्ध अर्थात् मूर्तिपूजा खण्डन के बहुत प्रमाण नीचे उद्धृत किये जाते हैं।

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमा ।
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः॥य॰ अ॰ ३२ मं॰ १॥

अर्थ—वही ब्रह्म ज्ञान स्वरूप होने से अग्नि, प्रलय काल में सब का ग्रहण करने वाला होने से आदित्य, अनन्तवल वा सब का धारण करने वाला होने से वायु, आनन्द स्वरूप होने से चन्द्रमा, शुद्ध होने से शुक्र, सब से बड़ा होने से ब्रह्म, सर्वव्यापक होने से आपः सब प्रजाओं का स्वामी होने से प्रजापति है। अग्नि आदि नाम मुख्यतया परमात्मा के हैं तथा गौणतया अग्नि आदि जड़ पदार्थों के हैं क्योंकि जैसा प्रकाशादि परमात्मा कर सकता है वैसा भौतिक अग्नि आदि का नहीं। इसी बात को ऋग्वेद में स्पष्ट किया है—

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद्विप्राः बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः॥
ऋ॰ १। १४६ ॥

अर्थ—एक होने पर भी विद्वान लोग इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, सुपर्ण, दिव्य आदि अनेक नामों से परमात्मा को पुकारते हैं। इस लिये इस मन्त्र में भौतिक अग्नि आदि को परमात्मा नहीं बतलाया किन्तु अग्नि आदि ईश्वर के नाम हैं। वेदान्त दर्शन के प्रथम अध्याय में इस बात को भली प्रकार से सिद्ध किया है कि आकाशादि परमात्मा के नाम हैं। कुछ

उदाहरण नीचे देता हूं—

"आकाशस्तल्लिंगात्"—जिन श्रुतियों में यह लिखा है कि आकाश से सम्पूर्ण संसार की उत्पत्ति हुई है वही आनन्दमय है, वहां आकाश का अर्थ जड़ आकाश नहीं किन्तु परमात्मा है। क्योंकि यह लक्षण ईश्वर में ही घट सकता है। "अत एव च प्राणः" वे० अ० १ पा १ जहां प्राण को सृष्टिकर्ता कहा हो वहां उसका अर्थ जड़ प्राण नहीं किन्तु परमात्मा है। इसी प्रकार इस प्रकरण में सिद्ध किया है कि जहां २ अग्नि वायु आदि को सृष्टि का कर्ता, हर्ता, आनन्दमय आदि बतलाया है वहां २ इन नामों से परमात्मा का ग्रहण होता है अग्नि आदि जड़ पदार्थों का नहीं। इस लिये पौराणिक लोगों का यह कथन ठीक नहीं कि इस मंत्र में भौतिक अग्नि आदि परमात्मा के साकार रूप का वर्णन किया है।

परमात्मा का स्वरूप

अब यह प्रश्न होता है कि अग्नि आदि नाम वाले परमात्मा का स्वरूप क्या है? अतः दूसरे मंत्र में कहा है—

उस को पकड़ा नहीं जासकता—

सर्वे निमेषा जज्ञिरे विद्युतः पुरुषादधि।

नैनमूर्ध्वं न मध्ये परिजग्रभत ॥ य० ३२।२॥

अर्थ—प्रकाशमान परमात्मा से कालावयव प्रकट होते हैं, ऊपर नीचे वा बीच में कोई भी उसको पकड़ नहीं सकता। अब प्रश्न पैदा होता है कि उसको ऊपर नीचे बीच में से क्यों नहीं पकड़ सकते? इस बात का उत्तर तीसरे मंत्र में दिया है—
उसकी मूर्ति नहीं है।

न तस्य प्रतिमास्ति यस्य नाम महद्यशः।
हिरण्यगर्भ इत्येष मा मा हिंसीदित्येषा
यस्मान्न जात इत्येषः ॥ य० ३२। ३ ॥

अर्थ—जिस परमात्मा का नाम सब से बड़ा वा यश स्वरूप है उसकी कोई प्रतिमा मूर्ति शकल वा तोलने का साधन नहीं है। इस बात को सिद्ध करने के लिये इसी मंत्र में य० अ० २५। १०—१३ वा य० अ० १२। १०२ तथा य० अ० ८ मं० ३६। ३७ के प्रमाण प्रतीक रूप से दिये हैं जिनका पूर्ण मंत्र देकर नीचे व्याख्या की जाती है।

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥
य० २५। १० ॥

अर्थ—जो सम्पूर्ण कार्य जगत् के उत्पन्न होने से प्रथम एक ही संसार का पति विद्यमान था, जिसमें सूर्य विद्युत् आदि सम्पूर्ण पदार्थ मौजूद हैं जो पृथिवी वा द्युलोक को धारण

करता है, उस भगवान् की हम भक्ति करें।

यजुर्वेद के तीसरे मंत्र में इस मंत्र का प्रतीकरूप से प्रमाण देकर यह सिद्ध किया है कि परमात्मा की मूर्ति नहीं होती। यदि परमात्मा की मूर्ति होती तो उसको स्थूल साकार, भार वाली होने से किसी न किसी आधार की अवश्य आवश्यकता होगी। वह द्युलोक वा पृथिवी लोक को धारण नहीं कर सकती, किन्तु जितनी मूर्तियें मन्दिरों में रक्खी हैं वे सब पृथिवी के आश्रित हैं। इस मंत्र में परमात्मा को पृथिवी आदि लोकों के धारण करने वाला बतलाया है। मूर्ति किसी समय में उत्पन्न होती है, उत्पन्न होने से प्रथम नहीं होती, इस मन्त्र में परमात्मा को सब भौतिक पदार्थों से प्रथम विद्यमान् बतलाया है इस से सिद्ध है कि परमात्मा मूर्ति नहीं।

तीसरी बात इस मंत्र में यह कही है कि सूर्यादि पदार्थ परमात्मा के अन्दर हैं। १३ लाख हमारी पृथिवी जैसे गोले बनें तब एक सूर्य बनता है। ऐसे अनन्त सूर्य जिस परमात्मा में विद्यमान् हैं उसकी मूर्ति नहीं हो सकती।

> मा मा हिंꣳसीज्जनिता यः पृथिव्या
> यो वा दिवꣳ सत्यधर्मा व्यानट्।
> यश्चापश्चन्द्राः प्रथमो जजान
> कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ य० १२।१०२ ॥

अर्थ—जिसने द्युलोक वा पृथिवी लोक को उत्पन्न किया है, जिसके नियम अटल हैं जो चन्द्रादि लोकों को उत्पन्न करके उनमें व्याप्त हो रहा है उस भगवान् की हम भक्ति करें वह हम को अपने से पृथक् न करे।

इस मन्त्र में यह बतलाया है कि परमात्मा सब लोक लोकान्तरों में व्यापक है। उसी ने सब लोक उत्पन्न किये हैं। मूर्ति वा मूर्तिमान् सम्पूर्ण लोकों में व्यापक नहीं हो सकता, इस लिये परमात्मा की कोई प्रतिमा नहीं।

> यस्मान्न जातः परोऽन्योऽस्ति
> य आविवेश भुवनानि विश्वा।
> प्रजापतिं प्रजयासꣳरराणस्-
> त्रीणि ज्योतींषि सचते स षोडशी॥ य० ८।३६॥

अर्थ—जो किसी कारण से उत्पन्न नहीं हुआ अथवा जिससे उत्तम कोई वस्तु नहीं है, जो सम्पूर्ण लोकों में व्यापक है, जो सम्पूर्ण संसार को अनेक प्रकार के पदार्थ दान देता है, इच्छा, प्राण, श्रद्धा, पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, इन्द्रिय, मन, अन्न, वीर्य, तप, मन्त्र, लोक, नाम ये १६ कलायें उसी परमात्मा में विद्यमान हैं।

इस मन्त्र में यह बतलाया है कि वह परमेश्वर पैदा नहीं हुआ, उससे उत्तम और उत्कृष्ट कोई पदार्थ नहीं है।

वर्ण-व्यवस्था

का

भण्डा फोड़

(वर्ण-व्यवस्था विध्वंस.)

यह वर्णव्यवस्था तो हिन्दुओं के लिये मरण-व्यवस्था हो रही है। (ऋषि दयानन्द.)

ब्राह्मण क्षत्रिय आदि के स्थान पर सबको आर्य ही कहना चाहिये। (स्वामी श्रद्धानन्द.)

शास्त्रों में प्रतिपादित वर्णाश्रम-व्यवस्था आजकल कहीं नहीं है। (महात्मा गांधी.)

मनुस्मृति की 'वर्ण-व्यवस्था' वैदिक नहीं है।

(आचार्य देवशर्मा 'अभय')

मूल्य आठ आना

नवयुवकों के निर्भीक नेता-
श्रीयुत डा० बी. आर. अम्बेदकर,
M. A., Ph. D., D. Sc.,

की सेवा में समर्पण

श्रीमन् ! आप के पुरुषार्थ और प्रभाव से देश में वर्ण-व्यवस्था को विध्वंस करने के लिये जो बढ़िया वायुमण्डल बन गया है—उसी की स्मृति में यह पुस्तक आप के कर कमलों में सादर समर्पित है।

मेधार्थी-मणिमाला की चतुर्थमणि—

वर्ण-व्यवस्था का भंडाफोड़

वर्ण-व्यवस्था विध्वंस.

—:o:—

ग़ैर मुमकिन को तो मुमकिन ही बना देते हैं।
अपनी आवाज़ से दुनियां को हिला देते हैं॥

(मेधार्थी)

लेखक मंडल—

भिषगाचार्य श्री ईश्वरदत्त मेधार्थी, विद्यालंकार.

श्री देवीदत्त आर्य, टैम्परेन्सप्रीचर (फ़तेहपुर.)

आर्यकवि श्री सिद्धगोपाल, सिद्धान्तरत्न (देहली.)

प्रकाशक—

डाक्टर फ़कीरेराम आई० एम० डी०

संस्थापक, श्री दयानन्द भारती विद्यालय, कानपुर.

—:*:—

प्रथम संस्करण दो हज़ार } मार्गशीर्ष पूर्णिमा सं० १९९० वि० { मूल्य आठ आना

प्रसिद्ध वैदिक विद्वान् और आर्य-कुमारों के पथ-दर्शक—
भिषगाचार्य श्री ईश्वरदत्त मेधार्थी विद्यालंकार कृत
नवयुवकों में नवीन ज्योति जगमगाने वाली—

मेधार्थी-मणिमाला की मणियां—

(१) आर्यकुमार-गीता (गीता के १०० श्लोक भावग्राही अनुवाद सहित) ।)
(२) आर्यकुमार-स्मृति (मनुस्मृति के मननीय सौ श्लोक भावार्थ सहित) ।)
(३) आर्यकुमार-श्रुति (ऋषिकृत आर्योद्देश्यरत्न माला की वेद प्रमाण पूर्वक व्याख्या) ।≈)
[आर्यमन्तव्य-दर्पण के नाम से भी यह प्रसिद्ध है]
(४) वर्णव्यवस्था का भंडाफोड़ (वर्णव्यवस्था-विध्वंस) ॥)
(५) वर्णव्यवस्था उर्फ जातपांत (शर्मा वर्मा गुप्त दास-विवेचन सहित) ।≈)
(६) वैदिक वर्ग-व्यवस्था (वेद प्रमाण सहित) ॥)
(७) सार्वदेशिक संस्कार-विधि (वेद मंत्रों के आधार पर) ।≈)
(८) आर्यकुमार-वैद्यक (आरोग्य शतक) ॥)
(९) आर्यकुमार-नीति (सुभाषित-शतक) ।≈)

नोट—पिछली पांच पुस्तकें अभी अप्रकाशित हैं। शीघ्र ही प्रकाशित होंगी। पुस्तकें प्राप्त करने का पता—

—धर्मेन्द्रपाल, प्रबन्धकर्ता—
आर्यकुमार पुस्तकालय,
मेस्टनरोड, कानपुर U. P.

श्रीमान् परमपूज्य १०८ श्री स्वामी बोधानन्द जी महास्थविर

सभापति—

युक्तप्रान्तीय वर्ण-व्यवस्थाविध्वंसक संघ,

की

शुभसम्मति और शुभाशीर्वाद

मैं 'वर्ण-व्यवस्था का भंडाफोड़' नामक पुस्तक को इस समय भारत के लिये अत्यन्त आवश्यक समझता हूँ। इस पुस्तक में भारतवासियों की अवनति के मूल कारण पर कुठाराघात किया है। वास्तव में प्रचलित जन्ममूलक वर्ण-व्यवस्था के रहते न तो इस देश की सच्ची उन्नति ही हो सकती है और न हिन्दू-संगठन। दलितोद्धार और स्वराज्य की आशा करना तो दुराशा-मात्र है।

यह सच है कि थोड़े से उच्च जातीय हिन्दुओं का मान, मर्यादा, प्रतिष्ठा, अधिकार, सम्पत्ति और रोब इस जन्ममूलक वर्ण-व्यवस्था के भीतर ही निहित है तथा यह बात भी ध्रुव सत्य है कि पन्द्रह कोटि शूद्र और अछूत कहलाने वाले हिन्दुओं की अवनति, अप्रतिष्ठा, कायरता और आत्मविस्मरण इत्यादि का कारण भी इसी जन्ममूलक वर्ण-व्यवस्था के भीतर सन्निहित है। मेरे विचार में तो यही निगूढ़ समस्या वर्तमान युग को हल करना पड़ेगी; क्यों कि इस के बिना भारतवर्ष

की सम्यक् उन्नति कभी नहीं हो सकती है। इस द्विजातिहित-साधिनी, कुटिला वर्ण-व्यवस्था ने ही इन पन्द्रह कोटि शूद्र और अछूत कहलाने वाले हिन्दुओं की मानवीय उच्चाकाँक्षा को कुचलकर उनको चिरदासत्व की शृङ्खला में जकड़ दिया है। इस पिशाचिनी वर्ण-व्यवस्था का जब तक भंडा फोड़ न किया जायगा तब तक भारतवासी अपनी वास्तविक उन्नति नहीं कर सकेंगे। यह बात 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' है।

मैं इस 'वर्णव्यवस्था का भंडाफोड़' नामक पुस्तक के लेखकों को आशीर्वाद देता हूँ। जिन्हों ने इस पुस्तक में निर्भयता पूर्वक एक वीर सुधारक की भांति बिल्कुल निष्पक्ष दृष्टि से विचार प्रस्तुत किये हैं। इस की भाषा इतनी रोचक और मनोहर है कि पढ़ने में बहुत आनन्द आता है।

शूद्रों और अछूतों के लिये तो यह पुस्तक बड़े काम की है।

आशा है कि भारत का प्रत्येक सनातनी, आर्य-समाजी, बौद्ध, जैन, सिक्ख, और सुधारक वृद्ध तथा नवयुवक इस पुस्तक को अपना कर लाभ उठायेंगे। अन्त में मैं लेखकों की विद्वत्ता और लेखन शैली को सराहना करता हुवा अपने हृदय से पुनः आशीर्वाद और साधुवाद देता हूँ। जिन्होंने इस उपादेय पुस्तक को लिखकर भारत का महान् उपकार किया है।

* किमधिकम् *

हस्ताक्षर—बोधानन्द महास्थविर

बुद्धविहार, रिसालदार-पार्क, लखनऊ.

विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

प्रकाशक के दो शब्द

मैं इस पुस्तक को भारत के उत्थान के लिये परम आवश्यक समझता हूँ; क्यों कि शूद्रों और अछूतों की समस्यां हल हुवे बिना भारत की उन्नति नहीं हो सकती है। यह पुस्तक अपने ढंग की एक ही है। भारतीय नवयुवकों के नेता डाक्टर अम्बेदकर और महात्मा गांधी ने भी इस तथ्य को स्वीकार कर लिया है कि अस्पृश्यता हिन्दुओं के विनाश का मुख्य कारण है। इस पुस्तक में प्रचलित वर्णाश्रम-धर्म की विषमता को विनष्ट करने के लिये वड़े ऊँचे विचार प्रस्तुत किये गये हैं। अन्तर्जातीय विवाह और खान पान के विना हिन्दू समाज का सच्चा संगठन नहीं हो सकता है— इस सिद्धान्त को वड़े रोचक और विशद शब्दों में प्रतिपादित किया है। मुझे यह लिखने हुवे महान् हर्ष होता है कि यह पुस्तक लेखकों ने बरसों के अनुभव के बाद वेद के उच्च सिद्धान्तों के आधार पर लिखी है और मनुस्मृति आदि जाल ग्रन्थों की प्रचलित वर्ण-व्यवस्था को जड़ से उखाड़ने में सफल प्रयास किया है।

मैं लेखकों को अन्तस्तल से साधुवाद देता हूँ कि उन्होंने निर्भयता पूर्वक छिपे हुवे सत्य को प्रकट किया है। मेरा पूर्ण विश्वास है कि भारत की वर्तमान प्रगति के लिये यह पुस्तक परम उपयोगी है। एक बात विशेष हर्ष की यह है कि इस पुस्तक से जो कुछ भी आमदनी होगी वह सब कानपुर के श्रीदयानन्द भारती विद्यालय को भेंट की जावेगी।

हितकारी मेडिकल हाल,
मेस्टन रोड, कानपुर (यू.पी.) } (डा०) फ़क़ीरेराम,
I. M. D.

* ओ३म् *

प्रारम्भिक-वक्तव्य

——:*:——

निन्दन्तु नीति निपुणा यदि वा स्तुवन्तु,
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम् ।
अद्यैव वा मरणमस्तु दिनान्तरे वा,
सत्यात् पथः प्रविचलामि पदं न पूषन् !

इस पुस्तक को प्रकाशित करने की क्यों आवश्यकता हुई, यह तो सारी पुस्तक पढ़ने के बाद ही पूरा पूरा पता लग सकेगा। यहां तो हम संक्षेप से 'वर्ण-व्यवस्था' के वास्तविक अर्थों का दिग्दर्शन करा देना चाहते हैं। 'वर्ण-व्यवस्था' के तीन अर्थ आजकल प्रचलित हैं। वर्ण का अर्थ रंग है, वर्ण का अर्थ अक्षर है, और वर्ण का अर्थ ज़ात भी किया जाता है। रंग के अर्थों में वर्ण व्यवस्था, काले या गोरे रंग के झगड़े में पड़ी है। आज समस्त संसार में यह कुप्रवृत्ति बढ़ रही है कि गोरे लोग कालों पर कब्जा करना चाहते हैं। बेचारे काले लोगों को दुनियां में जीना तक कठिन हो रहा है। भारत में भी पहिले दस्यु (काले) और आर्य (गोरे) लोगों का बड़ा घन-घोर युद्ध हुवा करता था, ऐसा सभी ऐतिहासिक मानते हैं। यह रंग की 'वर्ण-व्यवस्था' भी बड़ी भयंकर है, इसका विनाश भी तुरन्त होना ही चाहिये। अब रहीं—वर्णों (अक्षरों) की

व्यवस्था, सो यह भी एक बड़ा रोचक संग्राम है। कोई हिन्दी के अक्षरों (वर्णों) को बढ़िया बताता है, कोई उर्दू के और कोई अंग्रेज़ी, फ्रेञ्च, जर्मन, आदि के। प्रयोजन यह है कि इस अक्षरों वाली 'वर्ण-व्यवस्था' में भी अभी शान्ति नहीं है। कोई कोई तो हिन्दी के अति प्राचीन वर्णों में परिवर्तन करके उनकी सूरत ही बदल देना चाहते हैं। इस क्रान्ति के सिल-सिले का तो हम स्वागत करते हैं—परन्तु कहीं ऐसा न हो जाय कि "न खुदा ही मिला न विसाले सनम—न इधर के रहे न उधर के रहे" कहीं इस क्रान्ति में नागरी-लिपि का ही सत्यानाश न हो जावे। हम यहां कानपुर के सुलेखाचार्य श्रीयुत गौरीशंकर जी (भट्ट) को नहीं भुला सकते, जिन्होंने नागरी-लिपि को सुन्दर जामा पहिनाने में कमाल कर दिया है। उनकी सारी ज़िन्दगी का निचोड़ 'नागरी-लिपि पुस्तकों' का निर्माण है—जो दुनियां में अपना सानी नहीं रखतीं। अस्तु-इस प्रकार अक्षरों वाली वर्ण-व्यवस्था भी अभी क्रान्ति के मैदान में हैं। अब आइये अपनी उस 'वर्ण-व्यवस्था' पर जिसका न सिर है और न पैर, न जड़ है और न पत्ते। यह तो अमर बेल की तरह हिन्दू समाज रूपी वृक्ष पर अपना जाल फैलाये है। हिन्दू समाज इससे अकाल मौत का शिकार हो रहा है। तो भी कोई साहस नहीं करता कि इस विष-बेल को उतार कर सहारा के रेतीले मैदानों में दफ़ना दे या अटलांटिक महासागर की खाड़ियों में बहा दे। हम ने इसी प्रचलित वर्ण-व्यवस्था का भण्डाफोड़ इस पुस्तक में किया है। प्रत्येक पहलू से पुष्ट किया है कि इस विध्वंसकारिणी

अब यहां यह बता देना भी नितांत आवश्यक है कि हम अभी तक अपने को सच्ची आर्यसमाज का सदस्य समझते हैं। हमारी वेदों पर पूर्ण प्रीति और अटूट श्रद्धा है। हम स्वामी दयानन्द को इस शताब्दी का सब से महान् नेता मानते हैं। यद्यपि स्वामी श्रद्धानन्द और महात्मा गांधी भी अपने ढंग के एक ही रहे हैं—तो भी वेदों के अपूर्व पाण्डित्य, अखण्ड-ब्रह्मचर्य और अप्रतिम प्रतिभा में स्वामी दयानन्द को कोई नहीं पा सका। हम तो उनके समक्ष तृणवत् हैं। हां! ऊंचे आदमी के कन्धे पर चढ़ कर एक नाटा जैसे दूर तक देख सकता है उसी प्रकार हम स्वामी जी के भाष्यों के आधार पर अधिक लिख रहे हैं। तभी तो हम सदैव इस प्रकार स्मरण किया करते हैं कि—

दयानन्द का जन्म हुवा था सबको आर्य बनाने को।
वेदों की चौरंग पताका दुनियां में फहराने को ॥१॥
महावीर थे क्यों न फूंकते कुल शंकाओं की लंका।
भूमण्डल पर बजा २ कर दिग्विजयी वैदिक डंका ॥२॥
उनकी परम दया से आर्यो! वह विशाल दिन आवेगा।
अखिल विश्व जब भारत भू के सम्मुख सीस झुकावेगा ॥३॥

प्रयोजन यह है कि स्वामी दयानन्द और स्वामी श्रद्धानन्द हमारे ज्ञान और कर्म के प्रेरक प्रतिनिधि हैं। परन्तु हम आर्य-समाजियों से अब ऊब गये हैं। बात यह है कि वर्तमान आर्य समाजी अधिकांश में ढोंगी हो गये हैं। इसी कारण जहां चार समझदार व्यक्ति बैठ जाते हैं—वहां ही यह

सुनने को मिल सकता है कि आर्य समाजी पक्के ठग और धूर्त हैं। इन कठोर शब्दों को सुनने सुनते हम अब हैरान हो गये हैं। सैकड़ों से लड़ाई लड़ी कि आर्यसमाज को क्यों बुरा बताते हो—परन्तु जब चारों तरफ़ से आर्यसमाजियों का ढोंग ढचरा ढीला होने के स्थान पर सुदृढ़ ही होता पाया तब तो हम ने भी अपनी कठिन कठिनी (क़लम) को कुंठित करने के लिये कमर कसली। हमारा हृदय बिलकुल शुद्ध है जो कुछ भी लिखेंगे या बोलेंगे बिलकुल सत्यता, सरलता और साधुता से—यदि विश्वास न हो तो कोई भी चतुर चिकित्सक हमारे हृदय पर हाथ रख कर देख सकता है। हमने वेदों के आधार पर इस पुस्तक में परशुराम की तरह प्रचलित वर्ण-व्यवस्था पर कुठाराघात किया है—ताकि वर्णव्यवस्था की विष बेल मुरझा जावे। कोई बात द्वेष वश नहीं लिखी है। द्वेष तो हमारे पास फटकने भी नहीं पाया है। हमारे दिल में जो दर्द है और हमारे जिगर में जो जीवन है उसका उबलता हुवा फ़व्वारा स्वतः फूट निकला है। हम यह भी जानते हैं कि वर्णव्यवस्था के महारोग में फ़ीसदी ९९ हिन्दू और आर्य-समाजियों के सभी मुल्ला पण्डित फँसे हुवे हैं और हमारे लेख तीर की तरह उनकी छाती में छेद करेंगे। यहां तक उनका खून गर्मायेगा कि वे कभी अर्जुन की तरह गाण्डीव उठायेंगे और कभी श्रीकृष्ण की तरह सुदर्शनचक्र-परन्तु हमारा तो अटल विश्वास है कि—

जाको राखे है साइयां मार सकै नहिं कोय।
बाल न बांका कर सकै जो जग बैरी होय॥

वर्ण-व्यवस्था का समूलोच्छेद हो जाना चाहिये सोचिये—इस व्यवस्था में 'वर्ण' का अर्थ क्या है? न रंग है और न अक्षर—तब फिर वर्ण का अर्थ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र कैसे हो गया! कोई मिलान नहीं, कोई मेलान नहीं और कोई प्रमाण नहीं—यों ही ज़बरदस्त का ठेंगा सिर पर। हाँ! मनुस्मृति में ज़रूर लिखा है कि—'त्रयो वर्णाः द्विजातयः, चतुर्थ एकजातिः' अर्थात् पहिले तीनों वर्ण द्विज हैं और शूद्र एकज है—परन्तु यह विश्वास के योग्य नहीं है, क्योंकि वेदों में 'आर्य-वर्ण' और दस्यु-वर्ण' ये दो ही वर्ण माने गये हैं। इसलिये इस वेद विरोधी मनुस्मृति के वचन को जल या अग्नि में अर्पण कर देना चाहिये। धन्य हैं—डाक्टर अम्बेदकर और उनके साहसी सिपाही, जिन्होंने मनुस्मृति आदि कपोल कल्पित शास्त्रों की होली की—हमारी इन देश के नौनिहालों के साथ पूरी सहानुभूति है। इसीलिये यह हमारी क्रान्तिकारी कृति नवयुवकों के सामाजिक नेता श्रीयुत डा॰ अम्बेदकर के कर-कमलों में सादर समर्पित है। सच मानिये—जब तक हमारे देश में इस प्रचलित वर्ण-व्यवस्था (जांत-पांत) का बोल बाला रहेगा, तब तक हिन्दुओं की कोई शक्ति नहीं है जो कि अपने जिगर के टुकड़ों अर्थात् इन सात करोड़ अछूत कहे जाने वाले सीधे और सच्चे भारत के मूल निवासियों को अपने अन्दर रख सकें। अछूतोद्धार का तो एक सीधा सादा उपाय है कि भारत में प्रचलित वर्ण-व्यवस्था का विध्वंस कर दिया जावे। हिन्दू लोग जन्म से ब्राह्मण और शूद्र मानते हैं। सो अछूत तभी हिन्दुओं में ऊंचा स्थान पा सकते हैं जब

वे दूसरे जन्म में द्विज कुलों में पैदा हों। अब रही—आर्यसमाजियों की गुण कर्म वाली गाड़ी, सो बिना राज्याश्रय के वह एक क़दम भी हिलने वाली नहीं। तभी तो आर्यसमाजी लोग अभी तक शुक्ल, मिश्र, शारदा, तिवारी, अग्रवाल, सक्सेना और खन्ना बने हुये हैं। इनसे पूछिये कि क्या आप इन अछूतों को भी शुक्ल, शारदा और वाजपेई बना लेंगे? यदि नहीं— तो सिर्फ़ महाशय जी कहलाने के लिये अछूत लोग भला अब आर्य समाज में क्यों नाम लिखाने लगे??? अब तो अछूत लोग भी सब दांव पेंच समझ गये। हम तो दावे के साथ कहते हैं कि यदि आर्य समाज निम्नलिखित तीन संशोधनों को तुरंत स्वीकार न कर लेगा तो सदा के लिये सो जायगा और अपनी सत्ता को समाप्त कर देगा।

वे तीन संशोधन यह हैं—

(१) वर्ण-व्यवस्था एक दम उड़ा दी जाय; क्यों कि राज्याश्रय के बिना गुण कर्म का निर्णय नहीं हो सकता।

(२) नामों के साथ लगे हुवे जन्मजाति—सूचक पुछल्ले एक दम साफ़ कर दिये जावें।

(३) विवाह—सम्बन्ध बहुतायत से अछूतों में यथायोग्य देखकर किये जावें। नहीं तो दुनियां कहेगी कि—

बुज़दिलों की तरह ये मुँह हैं छिपाये बैठे।
सबको बहकाने को हैं ढोंग बनाये बैठे॥

पाठकगण ! यह वर्ण-व्यवस्था की महामारी चिरकाल से भारत देश को तहस नहस कर रही है, परन्तु न जाने हिन्दुओं ने कौन सी मोहमयी मदिरा (मनुस्मृति की) पी ली है कि जिसका नशा उतरने ही नहीं पाता। देखिये—आज से लगभग ८०० वर्ष पूर्व शहाबुद्दीन ग़ोरी ने भारत में प्रचलित फूट का संदेशा पाकर जब आक्रमण करने की ठानी, तब उसने दो चतुर फ़क़ीरों को यहां इसलिये भेजा कि भारत की असली अवस्था का पता घर घर घूम कर लें। फलतः उन्होंने भारत का दौरा करके शहाबुद्दीन को लिखा कि यहां के राजपूत बड़े बहादुर हैं। जाट भी बड़े वीर बांकुरे हैं और पूरब के लोग तो बहादुरी के पुतले हैं—परन्तु आप इसकी ज़रा भी चिन्ता न कीजिये। सिर्फ़ ५०० सवारों को लेकर आजाइये और हिन्दुस्तान को फ़तह कर जाइये; क्योंकि इस देश के निवासी अपने ही देश के भाइयों से परस्पर सताये जा रहे हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र परस्पर ऊंचनीच और छूतछात के झगड़ों में इस क़दर फंसे हुये हैं कि कोई मिसाल नहीं है। यह लोग 'वरन विवसथा' को मानते हैं—इसी से ये लोग तीन तेरह हो रहे हैं; क्योंकि—"इस घर में आग लग रही घर के चिराग़ से"। भारत की ऐसी दयनीय दशा को जानकर शहाबुद्दीन ग़ोरी ने हमला बोल दिया और इस सोने की चिड़िया को ख़ूब लूटा खसोटा और बरबाद किया। इतिहास पढ़ने वाले ख़ूब जानते हैं कि कौन सा ऐसा अत्याचार है जो ग़ोरी ने यहां नहीं किया। काश ! यह वर्ण-व्यवस्था का धर्म

न होता तो आज हमारे देश में हमारा राज्य होता। परन्तु अभी तक हम हिन्दुओं को अक़ल नहीं आई है। वर्ण-धर्म की दुहाई देते ही चले जा रहे हैं। तभी तो—

ज़ुल्म से भाई हमारे सैकड़ों, नित मुसल्मां और इसाई होरहे।
ज़ुल्म होते हैं धरमके नाम पर, क़ौम के मिटने के ये आसार हैं॥

इसलिये भारत के उत्थान के लिये सबसे पहिला काम जो अनिवार्य है—वह यह है कि प्रचलित वर्ण-व्यवस्था (जातपांत) का भण्डाफोड़ कर अपने इन अछूत कहे जाने वाले ७ करोड़ धर्म भाइयों को साथ मिलाकर—एवं यवनों और म्लेच्छों में से भी श्रेष्ठ गुण कर्म सम्पन्न नर-नारियों को प्रेम पूर्वक गले लगा कर एक विशाल 'आर्य जाति' (Aryan-nation) का निर्माण किया जावे। तभी भारतवर्ष में पुनः सच्चा संगठन, सदाचार और स्वराज्य स्थापित हो सकेगा। अब रहा—धर्म के विषय में सो सब स्वतन्त्र रहें। चाहे सिक्ख और बौद्ध बनें। चाहे आर्य और वैष्णव बनें। बस—हमारी सब की जाति (nation) एक ही होनी चाहिये।

इसी लिये हमने कनौजिओं के गढ़ कानपुर में युक्त-प्रान्तीय "वर्ण-व्यवस्था विध्वंसक संघ" की स्थापना में सहयोग दिया है। इसके सभापति स्वनामधन्य पूज्य श्री १०८ स्वामी बोधानन्द जी महास्थविर (लखनऊ) हैं। आपकी छत्रछाया में यह संघ सफलता प्राप्त करेगा, यह सौ फ़ी सदी आशा है। इस लिये प्रत्येक नवयुवक को चार आना वार्षिक चन्दा 'प्रबन्ध-मंत्री' के पास भेजकर तुरन्त ही इस 'संघ' का सदस्य हो जाना चाहिये।

वर्णव्यवस्था का भण्डाफोड़

प्रचलित वर्णव्यवस्था का वेदों में अभाव

I believe in Varnashram of the Vedas which in my opinion, is based on absolute equality of status, notwithstanding passages to the contrary in the Smrities and elsewhere. (महात्मा गांधी)

भारतीय संस्कृति का सब से प्राचीन आधार ग्रन्थ वेद है। वेद ही सब सभ्यताओं की जननी और व्यवस्थाओं का स्रोत है। आर्य धर्म के तो प्राण ही वेद हैं 'वेदोऽखिलो धर्ममूलम्' अर्थात् वेद ही सब धर्मों के मूल हैं ऐसा सर्व सम्मत सिद्धान्त है। इसी आधार पर हम यह भी विवेचना पूर्वक खोज करना चाहते हैं कि भारत को विध्वंस करने वाली इस वर्णव्यवस्था का भी कहीं वेदों में पता है या नहीं? यदि निष्पक्ष दृष्टि से देखा जावे तो यह वर्णव्यवस्था ही हिन्दुओं के लिए मरण-व्यवस्था बन रही है। कोई इसको जातपांत का रोग कह देते हैं

और कोई इस को बिरादरिओं की बीमारी पुकारते हैं। वास्तव में इस का सारा श्रेय इस वर्त्तमान वर्णव्यवस्था को ही है। हां! आर्य-समाजियों ने गुण कर्म स्वभाव का एक नया आडम्बर खड़ा करके इस वर्णव्यवस्था के गिरते क़िले को दृढ़ करने का विफल प्रयास अवश्य किया है। परन्तु कालचक्र के प्रभाव से तथा आर्य-समाजियों की पोप प्रियता से गुण कर्म स्वभाव का जामा अब विशीर्ण प्राय हो गया है। अब आर्यसमाजियों की भी वर्णव्यवस्था उसी घोरतम रूप में उपस्थित हो चुकी है-जिसके लिये हिन्दुओं को खूब कोसा जाता था। ऐसी दशा में वर्णव्यवस्था का बावेला मचाने वालों को समझ लेना चाहिये कि भारतवर्ष में प्रचलित वर्णव्यवस्था (जात पांत) का हम भंडाफोड़ करना चाहते हैं। यही प्रचलित वर्णव्यवस्था भारतीयों के लिये एक हौव्वा बनी हुई है। महात्मा गांधीने भी लिखा है कि–The present cast-system is the very antithesis of Varnashra सबसे बड़ी त्रुटि तो यह है कि इस प्रचलित वर्णव्यवस्था का मूल स्वार्थी लोग वेदों में भी बताते हैं और शास्त्रों की दुहाई देकर तमाम हिन्दू जनता के मुख पर ताला लगाना चाहते हैं कि कोई भी इस वर्त्तमान विघातिनी वर्णव्यवस्था के विरुद्ध एक शब्द भी न बोल सके। ऐसे सभी स्वार्थी पण्डितम्मन्यों का मुखमर्दन करने के लिये हम एकबार ही बता देते हैं कि चारों वेदों में इस वर्णव्यवस्था का कोई पता नहीं है, कोई वर्णन नहीं है और कोई चर्चा तक नहीं है। वेदों में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र शब्दों के साथ वर्ण

शब्द का कहीं संयोग नहीं है। वेदों में आर्य वर्ण और दस्यु वर्ण यह दो ही वर्ण माने गये हैं। स्वयं स्वामी दयानन्द ने ऋग्वेद के १।४।१०।८ मंत्र को प्रमाण रूप से पेश करते हुवे सिद्ध किया है कि वैदिक कालीन सभ्यता में मनुष्यों के दो ही वर्ण थे।
आर्य और दस्यु। मंत्र इस प्रकार है—

विजानीहि आर्यान् ये च दस्यवः,
बर्हिष्मते रन्धया शासत् अव्रतान्।

अर्थात्—हे मनुष्यो! तुम लोग भली प्रकार जानलो कि आर्य कौन हैं और दस्यु कौन हैं। इस मंत्र में स्पष्ट प्रतिपादन है कि आर्य और दस्यु ये दो ही मनुष्यों के वेद प्रतिपादित भेद हैं। यहां कई लोग यह बहकाते हैं कि मुख्य तो दो भेद वेदमें हैं ही-परन्तु आर्यों के अवान्तर चार भेद हैं—जिनको ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र नाम से पुकारा जाता है। परन्तु इनकी बहकावट में वे ही लोग आ सकते हैं जिन्होंने वेदों की पंक्ति पंक्ति का पर्यालोचन न किया हो। हमने लगातार १२ वर्ष तक वेदोंका स्वाध्याय किया है हम बताते हैं कि इनकी इस चाल का जवाब क्या है? वेद में जहां 'आर्य और दस्यु' दो भेद बताये हैं वहां अनेक स्थलों पर 'उत शूद्रे उतआर्ये' ऐसा भी आया है। इसका प्रयोजन यह है कि शूद्र और आर्य यह मनुष्यों के दो विभाग हैं। मनुस्मृति में भी आया है **अनार्यायां समुत्पन्नो ब्राह्मणात्तु यदृच्छया।** इत्यादि—तथा

स्वामीदयानन्द जी ने भी सत्यार्थ प्रकाश के १० वें समुल्लास में स्वीकार कर लिया है कि शूद्र आर्य नहीं हैं। प्रमाणार्थ स्वामी जी का यह लेख पर्याप्त है—

आर्याधिष्ठिताः शूद्राः संस्कर्त्तारःस्युः अर्थात् आर्य लोगों के यहां शूद्र रसोई बनावें। बस सिद्ध हो गया कि आर्यों में शूद्रों की गणना नहीं है। कितना अंधेर है? अब विचारणीय यह है कि जब आर्यों के अन्दर शूद्रोंका समावेश हो ही चुका है तो फिर ये शूद्र शब्द पृथक् क्यों हैं? इससे यही सिद्ध होता है कि आर्यों में शूद्र नहीं हैं। देखो मनुस्मृति में **जातोऽपि अनार्यात् आर्यायां अनार्यइति निश्चयः** ।१०।६। इस प्रकार **आर्य और दस्यु** यह दो वर्णही मनुष्यों के वेद में प्रतिपादित हैं। वेद में आया भी है। **आर्य वर्ण मावत्** और **उभौवर्णौ** इत्यादि जिसका स्पष्ट प्रयोजन यह है कि दो ही वर्ण मनुष्यों के होते हैं। अब इस वर्ण शब्दकी छानबीन कीजिये। वर्ण का मुख्य अर्थ है रंग (Colour) इस आधार पर भी मनुष्या के दो रंग (वर्ण) स्वयं सिद्ध हैं। काला (Black) और गोरा (White) यही दो रंग मनुष्यों में पाये जाते हैं। इस प्रकार भी चातुर्वर्ण्य की सिद्धि वेदों से नहीं होती है। यह चातुर्वर्ण्य का ढकोसला मनुस्मृति की मनमानी है।

वेदों में वर्णव्यवस्था के प्रतिपादक तीन मंत्र मुख्यरूप से प्रस्तुत किये जाते हैं। पहिला मंत्र इस प्रकार है—

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद् वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत॥
यजु० ३१।११

यह मंत्र सामवेद को छोड़ कर शेष तीनों वेदों में कुछ कुछ परिवर्तन पूर्वक पाया जाता है। सर्वप्रथम ऋग्वेद के दशम मण्डल में यह मंत्र मिलता है। यहां यह बता देना भी अप्रासंगिक न होगा कि ऋग्वेद के दशम मण्डल को पुरातत्वविशारद (Historians) बहुत पीछे का बना हुआ बताते हैं। अष्टाध्यायी के भाष्यकर्त्ता, प्रकाण्ड पण्डित मेजर बी० डी० वसु (प्रयाग) ने यह सिद्ध करके दिखा दिया है कि इस मण्डल की रचना अर्वाचीन है। जितने भी पाश्चात्य स्कॉलर हुये हैं सभी ने ऋग्वेद के ९ मण्डलों को ही सर्व प्राचीन (The oldest book) माना है।

फिर एक बात विचारणीय यह भी है कि जब वेद ईश्वरीय वाणी है तो यजुर्वेद और अथर्ववेद में यह मंत्र कुछ परिवर्तन के साथ क्यों पाया जाता है। क्या यह परिवर्तन ऋषि (ब्राह्मण) कृत है ? या प्रभु (ब्रह्म) कृत। जब अर्थ में कोई भेद नहीं तो ईश्वरीय वाणी में इस प्रकार का घोटाला करने से क्या मतलब ? मालूम ऐसा होता है कि जब मुग़लकाल में वेद आदि ग्रन्थ जलाये गये और उस समय के पूज्य ब्राह्मणों ने वेद कंठस्थ कर लिये तब इन वेदों के अनेक पाठभेद हो गये जो बिलकुल स्वाभाविक हैं। ऐसी दशा में वेदोंके बिलकुल विशुद्ध मौलिक स्वरूप का पता पाना

दुरूह है। इसलिये वर्णव्यवस्था के परमपोषक इस मंत्र का भी शुद्ध रूप लुप्तप्राय है। यह जो स्वरूप मिलता है वह ब्राह्मणों की स्मृति का शेष है। इस मंत्र में ब्राह्मण आदि चार शब्दों का समावेश तो अवश्य है—परन्तु ये वर्ण हैं या समाज शरीर के अवयव, यह बात बुद्धि से सोचने की वस्तु है। यदि इस मंत्र का ही वास्तविक रूप समझ लिया जावे तो वर्णव्यवस्था की समस्या हल हो जावे। देखिये—सारे शरीर के चार विभाग किये गये सिर, हाथ, पैर और पेट—इसी प्रकार सारे मनुष्य समुदाय के चार विभाग किये गये ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। जिस प्रकार सिर से हाथ नीच नहीं और पैर से पेट नीच नहीं इसी प्रकार ब्राह्मण से क्षत्रिय नीच नहीं और शूद्र से वैश्य नीच नहीं। ये तो मनुष्य समाज रूप शरीर के चार अवयव (हिस्से) हो गये। इसी को दूसरे शब्दों में यों कहा जा सकता है कि मनुष्यों के मुख्य चार विभाग हैं जो कर्म-विभाग (Division of labour) के सिद्धान्त के आधार पर हैं। **कर्मविभाग या श्रमविभाग** में कोई नीच ऊंच का प्रश्न नहीं है। सभी की उपादेयता (Utility) समान रूप से अनिवार्य है। इसके लिये वर्णव्यवस्था का प्रतिपादक दूसरा मंत्र जो प्रस्तुत किया जाता है वह यह है—

'ब्रह्मणे ब्राह्मणं, क्षत्रायराजन्यं, मरुद्भ्यो वैश्यं, तपसे शूद्रम्-तमसे तस्करं, नारकाय वीरहणं, पाप्मने क्लीबं, आक्रयाय अयोगूं, कामाय पुंश्चलूं, अतिक्रुष्टाय मागधम् ॥

यजु० ३०।५॥

इस मंत्र का वास्तविक अभिप्राय समझने के लिये इससे पहिला मंत्र विशेष रूप से मननीय है। मंत्र इस प्रकार है—

विभक्तारं हवामहे वसोश्चित्रस्य राधसः।
सवितारं नृचक्षसम् ॥ यजु० ३०।४॥

इस मंत्र में परमेश्वर से प्रार्थना की गई है कि हम ऐसे राजा को चाहते हैं जो हमारे कर्मों (Duties) को यथा नियम विभक्त कर दे। और फिर राज्य में होने वाले सभी आवश्यक पेशों की चर्चा इस अध्यायमें की गई है। उसी सिलसिलेमें ब्राह्मणे ब्राह्मणं आदि बताया है। अर्थात् वेद ज्ञान के प्रचार के लिये ब्राह्मण का कर्म, राज्यरक्षा के लिये क्षत्रियका कार्य, प्रजाओं के साधारण व्यवहार के लिये वैश्यका कार्य और विशेषकर कष्ट साध्य तापस कार्यों के लिये शूद्र का कर्म है। अभी यह मन्त्र अधूरा हुआ। आगे भी इसी प्रकार पेशों का वर्णन है, जिनमें तस्कर, क्लीव और पुंश्चलू भी हैं–परन्तु सर्व तो मुख्य चार कर्म विभक्त करके इन्हीं के अन्तर्गत सबका समावेश है। ये वर्ण नहीं हैं–नहीं तो (नपुंसक) क्लीब भी वर्ण हो जायगा। इसी को कर्म-विभाग या श्रम विभाग (Divisin of labour) का सिद्धान्त कहते हैं। आज कल योरप में भी माना जाता है कि—

Four Ms make the monarchy—as
Missionary, Military, Merchants & Menials.

इन सब का आधार भूत सिद्धान्त श्रम विभाग

या कर्म-विभाग है। इतना और स्मरण रखना चाहिए कि उक्त मंत्र द्वारा वेद की यह भी साथ साथ आज्ञा है कि राजा को ही यह अधिकार है कि इस कर्मविभाग को न्यायपूर्वक प्रचलित करे। स्वामी दयानन्द भी वर्तमान वर्णव्यवस्था को मरण व्यवस्था सिद्ध करते हुवे यह लिखा है कि गुण कर्म स्वभावानुकूल यह कर्म विभाग (वर्ण-व्यवस्था) राजा ही व्यवस्थित रूप से कर सकता है। ऐसी दशा में आर्यसमाज का वर्णव्यवस्था केलिये ढोल पीटना निरा ढोंग और दम्भ नहीं तो क्या है ? वास्तविक दशा तो यह है कि हिन्दुओं का यह घातक रोग आर्यसमाजियों की नस नस में घुसा हुआ है, क्योंकि आर्यसमाजी हैं तो बने हिन्दुओं में से ही-तो फिर सहसा कैसे उन्हें इस राजरोग से मुक्ति प्राप्त हो सकती है ? अस्तु। यहां तक हमने संक्षेप से यह प्रतिपादन करने का प्रयत्न किया है कि (वर्ण-व्यवस्था) का वास्तविक स्वरूप, जो वेदोक्त है वह **कर्म-विभाग** है और इसका नियन्त्रण (Control) राजा ही कर सकता है। इस लिये एक गुलाम देश का निवासी वर्ण-व्यवस्था का ढोंग रचकर अपने पैरों पर कुठाराघात ही कर सकता है और कुछ नहीं। फलतः हमारा देश रसातल को चला जा रहा है और हिंदू लोग वर्ण-व्यवस्था की बेहूदी बिलबिलाहट मचाये हुये हैं। इसी लिये न दलितोद्धार होता है और न देशोद्धार। हो भी कैसे जब हिन्दू लोग जन्म से ही अपना पैतृक अधिकार जमाये हुये दलितों को दाल की तरह दलने के लिये दनदना रहे हैं। अब हम तीसरा

मन्त्र प्रस्तुत करते हैं जो वर्ण व्यवस्था के पोषक प्रायः पेश किया करते हैं। मन्त्र इस प्रकार है—

प्रियं मा कृणु देवेषु प्रियं राजसु नस्कृधि ।
प्रियं विश्येषु शूद्रेषु मयि धेहि रुचारुचम् ॥

इस मन्त्र में राजा परमेश्वर से प्रार्थना कर रहा है कि मेरे शूद्र आदि सभी जनों का मंगल सदा होवे। और मेरी शोभा इसी से होवे। इस में राजा ने अपने को सब से अलग कर लिया और अपने अधीन देव आदि जनों का कल्याण और मंगल चाहा है। इससे स्पष्ट यह सिद्ध होता है कि राजा ही इन कार्य-विभाग को व्यवस्थित कर सकता है। फिर एक ध्यान देने योग्य बात यह भी है कि इस मन्त्र में ब्राह्मण क्षत्रिय आदि शब्द नहीं हैं। इससे यह पता लगता है कि ब्राह्मण आदि शब्दों पर ही कोई बात नहीं है। विद्यासमिति, राजसमिति, अर्थसमिति और सेवा समिति ही राज्य कार्य के चार मुख्य कर्म विभाग हैं। जिन में विद्यासमिति का अध्यक्ष तो राजा नहीं होता था। कोई देव, विद्वान्, वेदज्ञ ही विद्या समिति का सभापति होता है। शेष तीन समितियों का अध्यक्ष राजा स्वयं होता था। तभी वेद में आया है—

"त्रीणि राजाना विदथे पुरूणि परि
विश्वानि भूषथः सदांसि ।"

अर्थात्—राजा तीन सभाओं को सुशोभित करे।

देखिये—वर्ण-व्यवस्था शब्दका अर्थ ही यह है कि कोई वर्णों की

व्यवस्था करता है। जैसे परिडतों से व्यवस्था लेना। इसीप्रकार राजा से व्यवस्था लेकर काम चलता है। तभी रघुवंश ५। १७ में रघुराजा को वर्णाश्रम का गुरु बताया है। देखिये--

वर्णाश्रमाणां गुरवे स वर्णी, विचक्षणः प्रस्तुतमाचचक्षे ॥

इस प्रकार वेदों में वर्तमान वर्णव्यवस्था का कोई स्थान नहीं यह सिद्ध होगया। अब विचारणीय यह है कि फिर स्वामी दयानन्द जैसे वेदों के प्रकाण्ड परिडत ने वर्णव्यवस्था को क्यों स्वीकार कर लिया? बात यह है कि स्वामीदयानन्द ने वर्तमान वर्णव्यवस्था का तो ज़ोरदार खण्डन किया है और वैदिक (कर्म-विभाग) वर्णव्यवस्था का ही प्रतिपादन किया है-जिसकी चर्चा हमने पूर्व के पृष्ठों में संक्षेप से की है-परन्तु स्वामीजी ने प्राचीनता के प्रवाह में बह कर 'वर्णव्यवस्था' शब्द का खण्डन नहीं किया—यही उनकी एक भ्रामोत्पादक स्थिति होगई है। देखिये—स्वामी जी ने सत्यार्थप्रकाश के चतुर्थसमुल्लास में इस बात की पुष्टि में कि एक शूद्र कुलोत्पन्न मनुष्य भी ब्राह्मण हो सकता है—दो ही प्रमाण प्रस्तुत किये हैं एक तो मनुस्मृति का **'शूद्रो ब्राह्मणतामेति'** इत्यादि श्लोक तथा दूसरा आपस्तम्ब सूत्र का निम्न प्रमाण—

धर्म चर्यया जघन्यो वर्णः
पूर्वं पूर्वं वर्ण मापद्यते-जाति परिवृत्तौ ॥

अर्थात्—धर्माचरण से नीच वर्ण भी उच्च वर्णों को प्राप्त हो

जाता है। इस प्रमाण में **'जाति परिवृत्तौ'** का अर्थ स्वमी दया-नन्द ने नहीं किया। क्यों ! इसका उत्तर आज तक किसी ने हमारे समक्ष स्पष्ट नहीं दिया। बात यह है कि **'जातिपरिवृत्तौ'** का अर्थ है—दूसरे जन्म में; क्योंकि इस प्रमाण में वर्ण और जाति दोनों शब्द आये हैं। वर्ण का अर्थ तो ब्राह्मण क्षत्रिय आदि होगया और जाति का अर्थ जन्म है ही। देखिये—

समान प्रसवात्मिका जातिः इस सूत्र के अनुसार जाति पैदायशी होती है। अब बताइये स्वामी जी के पेश किये हुवे प्रमाण में क्या बल रहा ? फिर मनुस्मृति का श्लोक तो विलकुल पोच है, क्योंकि सारी मनुस्मृति जन्म मूलक वर्ण व्यवस्था की परिपोषक है। मनुस्मृति का निर्माण ही जन्म मूलक वर्णव्यवस्था के आधार पर है। देखिए—

उत्कृष्टां जातिमश्नुते, श्रुतं देशं च जातिं च, एवं ब्राह्मणो जायमानो हि पृथिव्यामधिजायते।

इत्यादि वचनों में सर्वत्र जाति शब्द का व्यवहार है, वर्ण नहीं। प्रयोजन यह है कि वर्ण-व्यवस्था का सारा प्रपञ्च मनुस्मृति ने खड़ा किया है। यदि वेदों की कर्म-विभाग पद्धति प्रचलित होती तो यह सब आडम्बर न होता—परन्तु जब तक स्वराज्य न होगा वैदिक कर्म विभाग (वर्ग-व्यवस्था) की स्थापना संभव नहीं और जब तक वर्तमान जन्म-मूलक वर्ण-व्यवस्था रहेगी तब तक

स्वराज्य की स्थापना संभव नहीं इस प्रकार इतरेतराश्रय दोष में फंसे हुये भारतवासी अपना अमूल्य समय वृथा गवां रहे हैं और सुधार प्रिय आर्य समाज भी व्यर्थ ही वर्णव्यवस्था का ववंडर खड़ा किये हैं। कल्याण इसी में है कि इस वेद विरुद्ध वर्ण व्यवस्था का विध्वंस एक स्वर से कर दिया जावे और श्रेष्ठकर्म-सम्पन्न दलितों, यवनों और म्लेच्छों के साथ मिलकर एक विशाल आर्य जाति (Aryan Nation) का निर्माण किया जावे! यही वेदाज्ञा है—

विजानीहि आर्यान्, ये च दस्यवः ।

तभी हम कहा करते हैं कि--

रास्ता सीधा पड़ा है इसमें कुछ खटका नहीं ।
आज तक इस राह में रहबर कोई भटका नहीं ॥
सबै भूमि गोपाल की या में अटक कहां ।
जाके मन में अटक है, सो ही अटक रहा ॥

———

वर्ण और आश्रम

Varnashram of the shastras to day is not existance in practice (महात्मा गांधी)

महात्मा गांधी आदि सभी नेता एक स्वर से कह रहे हैं कि वेद प्रतिपादित वर्णव्यवस्था की सत्ता अब नहीं रही है तो भी भारतवर्ष में सबसे अधिक शोर यदि किसी बात का सुन पड़ता है तो वह 'वर्णाश्रम' का है। लोग मुंह से चिल्लाते अवश्य हैं परन्तु इसकी गहराई और बुराई को समझते नहीं हैं। न इन लोगों को यह पता है कि यह है क्या बला ??? यों ही सनातन से सुनते चले आये हैं-वही बराबर रटते चले जाते हैं। सुनिये-वर्ण और आश्रम दो चीजें हैं। जितना जोर वर्ण-व्यवस्था पर दिया जाता है यदि उसका एक चौथाई भी 'आश्रम-व्यवस्था' पर दिया जावे तो भारत को 'स्वर्ग' बनते देर न लगे परन्तु हिन्दुओं को तो बुरी लत पड़ गई है कि हरेक बात की दुम पकड़ते हैं। जो वर्ण पीछे थे उन्हें पहिले पकड़ लिया और आश्रमों पर जरा भी श्रम न किया। भाई! 'आश्रमों' का नाम ही श्रम है अर्थात् मेहनत। जब तक आश्रम-व्यवस्था के लिये भगीरथ परिश्रम न किया जावेगा तब तक हिन्दुओं की बाल बराबर भी कोई उन्नति नहीं हो सकती। का श ब्दार्थ है आ=समान्तात् (चारों ओर) श्रम=परिश्रम ।अर्थात् चारों

ओर से चौकन्ने हो कर श्रमपूर्वक जीवन बिताना। लीजिये पहिला आश्रम—ब्रह्मचर्य आश्रम। भारतमें ब्रह्मचर्य की जो भयंकर दशा है वह किसी से छिपी नहीं। भारतका वच्चा २ आज अब्रह्मचर्य का अभ्यासी है। बालविवाह उसी की एक शाखा है और वृद्धविवाह उसी का निचोड़ है। प्रयोजन यह है भारत की तमाम उन्नति 'ब्रह्मचर्य' विनाश के कारण रुकी पड़ी है। आजकल स्कूलों और कालेजों के छात्र 'ब्रह्मचर्य' पर ज़रा भी ध्यान नहीं देते। घर के दूषित वातावरण में भ्रष्ट आचार और नष्ट विचार के हो रहे हैं। हां! इनको भी एक चिन्ता अवश्य है कि अभी से अपने नाम के पीछे शर्मा वर्मा और सक्सेना लगा लूँ तो फलाने की तरह मैं भी बड़ी नौकरी पा जाऊँगा इसी उम्मीद पर ये लोग सिगरेट, बीड़ी पीते—फैशन लगाते और ड्रामा खेलते हैं। पर मेरे भाई ? ये अंगूर खट्टे हैं। अब इन वर्णव्यवस्था के पुछल्लों की भी पार नहीं जाती। No Vacancy का तख्ता गेट पर ही लटका है। इधर ब्रह्मचर्य नहीं पाला उधर नौकरी नहीं मिली। दीन से भी गये और दुनियां से भी। यदि हमारे देश में केवल 'ब्रह्मचर्य आश्रम' की ही पूर्ण व्यवस्था हो जावे तो सहज में ही देशोन्नति का बिगुल बजने लगे। अखंड ब्रह्मचारी स्वामी दयानन्द ने इस मर्म को समझा था। उसकी सबसे बड़ी दया हम पर यही हुई कि ब्रह्मचर्य की जीती जागती ज्योति जगमगा दी। फिर ऐसे कराल कलिकाल में

जब वाममार्गियों के भ्रष्ट विचारों का प्रचार था। बालविवाह का प्रसार और पुराणपन्थ का प्रभाव था। देखिये-यदि सच्चे ब्रह्मचारी इस देश में पैदा हों तभी तो सच्चे ब्राह्मण, क्षत्रिय बन सकते हैं। विना ब्रह्मचर्य के वेदविद्या पल्ले नहीं पड़ती, क्या हुवा यदि सिद्धान्त और मनोरमा रटरट कर वैय्याकरणखसूची बन गये। भाई! ब्राह्मण तो जब तक वेद न पढ़े, बन ही नहीं सकता। बतलाइये-कितने ब्राह्मण वेद जानते हैं। सौ में पांच भी नहीं, तो भी अकड़े अकड़े फिरते हैं। यही तो इनकी महामूर्खता है। जब ब्रह्मचर्य ही न रहा तब वेदाधिगम कैसे हो और जब वेद में पारगंत न हुवे तब ब्राह्मण कैसे? क्या कभी हिजड़े भी धनुवद पढ़ कर धनुषधारी हुवे हैं? नहीं तो फिर वर्ण-व्यवस्था का इतना बवडंर क्यों उठाया है? स्वयं कानून बनाते हैं कि **'ब्रह्म जानाति ब्राह्मणः'** अर्थात् ब्रह्म (वेद और ईश्वर) को जो जाने वह ब्राह्मण होता है-और स्वयं अपने बनाये कानून को रद्दी की टोकरी में डाल कर मानते हैं कि **'पानी पिलावे सो ब्राह्मण और वेश्या पुजावे सो क्षत्रिय"** कहिये कैसा घोर अन्धेर है!!! वास्तव में पहिले आश्रमों की व्यवस्था ठीक होनी चाहिये। इधर इन आर्यसमाजियों को हम क्या कहें जो स्वामी 'दयानन्द' जैसे अखण्ड ब्रह्मचारी और वेदज्ञ नेता के अनुयायी हैं। ये लोग छोटी आयु में बच्चे बच्चिओं के विवाह करते और स्वामी दयानन्द की आज्ञा की कोई परवाह

न करके अपने बच्चों का 'वेदारम्भ संस्कार' तक नहीं कराते। हां ! कहने को बड़े संस्कार विधि को मानने वाले हैं परन्तु संस्कार कोई न करेंगे संस्कार विधि के अनुसार; और हमको बतायेंगे कि नास्तिक हैं क्योंकि हमने संस्कार विधि के अनुसार अपना जीवन बिताया है। फिर 'वानप्रस्थ' गया चूल्हे में अ 'संन्यास' गया मोहरी में। कितने हैं वानप्रस्थी और संन्यासी ? इन्हें शर्म भी तो नहीं आती कि ५० वर्ष की आयु के बाद भी बच्चे पैदा करते चले जाते हैं और कट्टर आर्यसमाजी बने, संस्कारविधि पर चमड़े की जल्द चढ़ाये घूमते हैं। ऐसे छद्मवेशी आर्यसमाजियों को क्या हक़ है जो हमारे सामने एक हरफ़ भी बोल सकें। करते हैं वेदों का स्वाध्याय एवं न पालते संस्कार विधि का कोई अध्याय और बने फिरते हैं महामहोपाध्याय !!!

इसलिये--

अब उठो ! सोते ही तुमको इक ज़माना हो गया।
इस गज़ब की नींद में अपना बिराना हो गया॥
वर्ण आश्रम धर्म सारा मिल गया मिट्टी में आज।
वेद का स्वाध्याय तो अब अख़बार पढ़ना हो गया॥

वर्ण व्यवस्था और स्वामी श्रद्धानन्द

स्वामी दयानन्द के बाद आर्य समाज का प्रभावशाली और दूर दर्शी कोई नेता यदि हुवा है तो वे अमर शहीद श्रद्धेय स्वामी श्रद्धानन्द थे। स्वामी श्रद्धानन्द समझते थे कि आर्य समाज वर्तमान प्रगति का नेता और अग्रणी तभी हो सकता है जब वह बुद्धि-पूर्वक समय की आवश्यकता को अनुभव करता हुवा अपने सिद्धान्तों की व्याख्या करे। स्वामी दयानन्द के सच्चे भावों को समझने वाले श्रद्धेय श्रद्धानन्द समय गति को खूब परखते थे। वर्ण व्यवस्था के पहलू पर भी उनके विचार एक दूरदर्शी नेता के समान थे। स्वामी श्रद्धानन्द ने मथुरा में दयानन्द जन्म शताब्दी के सुअवसर पर एक महत्वपूर्ण प्रस्ताव आर्य विद्वत् परिषत् के विशाल पंडाल में रखा था—जिसका अभिप्राय यह था कि भारत में प्रचलित

वर्ण-व्यवस्था को नष्ट करने के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र आदि शब्दों का भी व्यवहार बन्द कर दिया जावे और समस्त आर्य-समाजी अपने को 'आर्य' कहा या लिखा करें। उस समय घोर वाद विवाद खड़ा हुवा। शास्त्री मंडल ने वर्ण व्यवस्था नष्ट भ्रष्ट हो जाने की विभीषिका उपस्थित की। सब ने स्वामी

दयानन्द की लेखमाला की दुहाई दी कि देखो ! स्वामी दयानन्द ने भी वर्ण व्यवस्था को मानते हुवे ब्राह्मण क्षत्रिय आदि शब्दों का व्यवहार स्वीकार किया है। उस समय उस दूरदर्शी महान् नेता ने सिंह गर्जना पूर्वक कहा था कि **देखो ! आर्यो स्वामी दयानन्द के लेखों का दुरुपयोग मत करो।** "मैं भी स्वामी दयानन्द का उतना ही भक्त हूँ जितने आप सब उपस्थित विद्वद्वृन्द—परन्तु मैं स्वामी जी की सच्ची स्पिरिट को स्वीकार करता हूँ। स्वामी दयानन्द ने वर्ण व्यवस्था के सम्बन्ध में सब लिखकर उस में यह भी स्वीकार कर लिया है कि जब तक अपनी राज्य व्यवस्था न होगी यह गुण कर्म की वर्ण-व्यवस्था प्रचलित नहीं हो सकती। जब तक राज्य की छाप न लगेगी यह नवीन प्रथा चल नहीं सकती। स्वामी दयानन्द ने तो हमारे समक्ष एक आदर्श रख दिया है। परन्तु हम लोग अभी उस आदर्श पर राज्य सत्ता के अभाव में चल नहीं सकते। देखिये—स्वामी जी ने नियोग के लिये भी आज्ञा दी है परन्तु वर्तमान राज्य नियमों के अनुसार नियोग को क्रियात्मक रूप देने वाला ताजीरात हिन्द की धारा के अनुसार सजा पायेगा उस पर Adultary का मुक़दमा चलेगा। ऐसी दशा में नियोग के स्थान में विधवा विवाह ही सामयिक है। यद्यपि स्वामी दयानन्द ने विधवा विवाह को वेद विरुद्ध बताया है तो भी हम आर्यों ने बुद्धिमत्ता पूर्वक देशकाल की दशानुसार विधवा विवाह को व्यवहारिक रूप दे दिया है। इसी प्रकार वर्णव्यवस्था का आदर्श

अर्थात् यदि शूद्र वेद मंत्रों को सुने तो उसके कानों में सीसा पिघला कर डाल दे। पढ़े तो जीभ काट ले, और यदि वैदिक आज्ञाओं के अनुसार अपना जीवन बितावे तो फांसी लगा दे। क्या संसार के इतिहास में कहीं ऐसे अन्धेरगर्दी क़ानून का नमूना है? यह हैं वर्ण-व्यवस्था से विध्वंस। यदि अब भी किसी की समझ में न आवे तो हमारे पास उसका इलाज नहीं है।

हम तो सदैव यही कहेंगे कि—

तिनका कबहूं न निन्दिये जो पावन तर होय।
कबहूं उड़ि आंखिन परै, पीर घनेरी होय॥
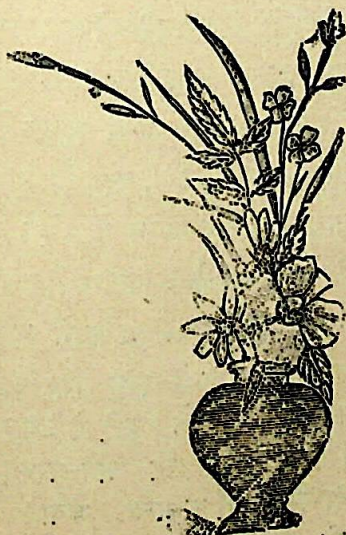
वर्ण व्यवस्था के दो सन्तरी

प्रचलित वर्ण-व्यवस्था की रक्षा के लिये ख़ासी मोर्चा बन्दी से काम लिया गया है। मनुस्मृति का निर्माण करने वाले ब्राह्मणों के मस्तिष्क की महिमा तो हम किये बिना नहीं रहेंगे। ऐसी ज़बरदस्त क़िलेबन्दी की है कि बड़े से बड़े सुधारक माथा फोड़कर मर मिटे, लेकिन आज भी मनुस्मृति का साम्राज्य सर्वत्र छाया हुआ है। आश्चर्य तो तब होता है जब स्वामी दयानन्द जैसे वेदों के परम भक्त, प्रकाण्ड पण्डित और प्रभावशाली विद्वान् भी अपने सत्यार्थप्रकाश आदि क्रान्तिकारी ग्रन्थों में वेदों की अपेक्षा मनुस्मृति को ही अधिक उद्धृत कर गए। फलतः सत्यार्थप्रकाश की क़ीमत प्रतिदिन घटती जाती है। यदि सत्यार्थप्रकाश में से मनुस्मृति के श्लोक निकाल दिये जावें तो फिर उसमें रहता ही क्या है; क्योंकि वेदों के प्रमाण तो यत्र तत्र नाममात्र ही उपलब्ध होते हैं। चाहिये तो यह था कि स्वामी दयानंद जैसे वेदों के अद्वितीय विश्वासी पंडित थे वैसे ही वेदों के प्रमाण पद पद पर प्रस्तुत करते हुवे वेदों के आधार पर वैदिक धर्म की प्रतिष्ठा करते—परंतु खेद है कि स्वामी दयानन्द मनुस्मृति का मोह छोड़ न सके। यदि वे प्रयत्न करते तो वैदिक धर्म की नींव वेदों पर प्रतिष्ठित कर जाते—परन्तु मनुस्मृति की मादकता ने मोह लिया और वेदों के मन्त्र बेचारे यों ही पड़े पड़े सड़ रहे हैं—कोई पूछने वाला नहीं है। उदाहरणार्थ—

यज्ञोपवीत (उपनयन) के विषय को लीजिए वेदों में अनेक मंत्र

यज्ञोपवीत (जनेऊ) विषयक मिलते हैं—परन्तु स्वामी दयानन्द ने पारस्कर के 'यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं' आदि प्रचलित श्लोक को ही मन्त्र मान कर अपनी संकलित संस्कार विधि में अङ्कित कर दिया और साथ ही मनुस्मृति के सब ढकोसले को यज्ञोपवीत के गले मढ़ लिया। जैसे बसन्त ऋतु में ब्राह्मण का यज्ञोपवीत ५ वर्ष की आयु में हो, ग्रीष्म ऋतु में क्षत्रिय का ६ में, और शरद ऋतु में वैश्य का ८ में। लीजिये—शूद्र बेचारा बिना जनेऊ के ही रहा। हो भी कैसे जब कोई ऋतु ही शेष न रही। कुदरत को ही शूद्रों के विरुद्ध कर डाला। जब जनेऊ का ही ज़िक्र नहीं, तो विद्या कैसे पढ़ें। जब विद्या ही न पढ़ेगा तो ब्राह्मण कैसे बनेगा? देखा न आपने कैसा जाल विछाया गया है। और लिख दिया—'शूद्रो ब्राह्मणतामेति' क्या खूब ठग विद्या है!

बात यह है कि वेदों में जहां यज्ञोपवीत की आज्ञा है वहां मनुष्य मात्र के लिये है। कोई भेदभाव नहीं है। परन्तु वर्ण व्यवस्था के ठेकेदारों को यह कब सह्य था कि वेद के उच्च सिद्धांत व्यवहार में आ सकें। इस प्रकार वर्ण व्यवस्था की रक्षा के लिये उन लोगों ने पहिला संतरी तो जनेऊ को बनाया। आज भारत के कोने २ में कोलाहल हो रहा है कि देखो! आर्य्य समाजी लोग चमारों को भी जनेऊ पहिना रहे हैं। इसमें सन्देह नहीं कि जनेऊ पहिनाने में आर्य-

समाजियों ने वर्ण व्यवस्था के प्रतिपादक स्वामी दयानन्द की भी कोई परवाह नहीं की है; क्योंकि स्वामी दयानन्द की आज्ञानुसार एक ३० वर्ष का चमार जनेऊ नहीं पहिन सकता, परन्तु कुछ क्रांतिकारी आर्य्य पण्डितों ने स्वामी दयानन्द को ताक़ पर रख दिया और समय की गति विधि को देख कर जनेऊ का जादू सबके ऊपर चढ़ा ही दिया। फलतः हिन्दुओं की 'वर्ण-व्यवस्था' ख़तरे में पड़ी है। इसलिये :—

हमारी भी सम्मति है कि जब तक हमारे देश में एक भी ईसाई या मुसलमान है तब तक प्रत्येक भारतीय के सिर पर चोटी, गले में जनेऊ और कमर में कटारी अवश्य होनी चाहिये।

वर्ण व्यवस्था का दूसरा सन्तरी जातिनाम अर्थात् जन्म जाति सूचक नाम के पीछे पुछल्ला है। इन पुछल्लों ने भारतीयों के घर घर में वर्ण व्यवस्था को पुष्ट कर रखा है। चाहे आर्य्यसमाजी हो या पुराण समाजी, सभी इस पुछल्ला पाखण्ड की पकड़ में हैं। आश्चर्य्य तो तब होता है जब स्वामी दयानन्द के ग्रन्थों में कहीं भी इस पुछल्ला महामारी के विरुद्ध एक पंक्ति भी ढूंढ़े नहीं मिलती है। क्या स्वामी दयानन्द को ज्ञात नहीं था कि देश में प्रचलित वर्ण व्यवस्था (जातपांत) का पूरा ज़ोर है? फिर उन्होंने इन पुछल्लों का

पाखण्ड मिटाने के लिये क्यों नहीं लिखा ? वास्तव में बात यह है कि स्वामी दयानन्द भी वैदिक वर्ण-व्यवस्था की स्थापना में इतने लवलीन हुए कि इस आवश्यक दृष्टि कोण को अछूता ही रख गये। साथ ही नामकरण संस्कार के प्रकरण में एक पंक्ति ऐसी लिख गये कि जन्म जाति मानने वालों को पूरा सहारा मिल गया। यद्यपि स्वामी दयानन्द का अभिप्राय वहां वह नहीं है जो स्वार्थी लोग लेते हैं; क्योंकि जब स्वामी दयानन्द ने यजुर्वेद भाष्य में यह घोषणा स्पष्ट रूप से कर दी है कि हमारे ग्रन्थों में जो मनुस्मृति और पास्कर गृह्यसूत्र आदि के प्रमाण हैं वे उन ग्रन्थों के मत दर्शाने के लिये हैं। मेरा मत तो वेदोक्त है। इसीलिये सत्यार्थ-प्रकाश के तीसरे समुल्लास में स्वामी जी ने किसी के यह पूछने पर कि तुम्हारा मत क्या है ? लिखा है कि— "हमारा मत वेद है। वेद में जो करने और छोड़ने की शिक्षा की है उसका हम यथावत् करना छोड़ना मानते हैं। जिसलिये वेद ही हमको मान्य है इसलिये हमारा मत वेद है। ऐसा ही मान कर सब मनुष्यों और विशेष रूप से आर्यों को ऐक्य मत्य होकर रहना चाहिये।" इतना लिखने के बाद भी स्वामी जी पर मनुस्मृति का बोझ लादना नितांत स्वार्थ का नमूना है।

देखिये—स्वामी जी ने कहीं संस्कार विधि में पारस्कर के

अनुसार गौण रूप से यह लिख दिया है कि ब्राह्मण हो तो देवशर्मा, क्षत्रिय देववर्मा, वैश्य देवगुप्त और शूद्र देवदास ऐसा नाम रखें, बस स्वार्थियों की बन आई है। इसका प्रयोजन तो सिर्फ़ इतना है कि यह शर्मा वर्मा यदि प्रयुक्त हो सकता है तो समस्त नामों में अर्थात् देव और शर्मा का समास जहां हो जावे वहीं इसका प्रयोग हो। परन्तु हो क्या रहा है। हज़ारीलाल शर्मा (एक अढ़तिया) बनवारीलाल शर्मा (एक हलवाई) और छोटेलाल शर्मा (एक जूते का दूकानदार) महेन्द्रपालसिंह शर्मा (एक सट्टेबाज़) ऐसे नामों के पीछे शर्मा का प्रयोग स्वामी दयानन्द को सर्वथा इष्ट न था। परन्तु यहां तो चलती का नाम गाड़ी हो रहा है। एक बात और ध्यान देने योग्य है। स्वामी दयानन्द ने मनुस्मृति का मत दिखाते हुये देवदास लिख तो दिया—परन्तु फुटनोट् (टिप्पणी) में लिख दिया है 'दासान्त' नाम नहीं रखने चाहिये। अब बताइये इस परस्पर विरोधी लेख का सारांश क्या यह नहीं हुआ कि देवदास आदि नाम भी नहीं रखना चाहिये; क्योंकि दास का अर्थ गुलाम है। इस प्रकार वर्ण-व्यवस्था के इन दोनों सन्तरियों का सदुपयोग जब तक न हो सके तब तक इनका बहिष्कार ही भारत के कल्याण के लिये अभीष्ट है। हाँ! नवीन आर्य्य-राष्ट्रीय पद्धति के अनुसार जनेऊ और उपनामों का प्रयोग अवश्य करना चाहिये।

वर्णव्यवस्था और उपजातियां।

पौराणिक काल में केवल एक ही वर्ण था। जैसा कि महाभारत में लिखा भी है— "एक वर्ण मिदं पूर्वं विश्वमासीद् युधिष्ठिर!" इसी प्रकार भागवत में आया है 'एक वर्ण एव च' पीछे वेदों के प्रचार होने पर आर्य और दस्यु दो वर्ण मनुष्य समाज के वेदाज्ञानुसार प्रचलित हुए। मध्ययुग में जब मनुस्मृति का महत्व विशेष रूप से बढ़ गया तब ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र यह जन्ममूलक चार वर्ण माने जाने लगे और सम्राट् चन्द्रगुप्त के समय पांचवा वर्ण बनाया गया। जिसको अछूत कहा जा सकता है। इन लोगों को नगरों और ग्रामों से बाहर बसाया गया। पश्चात् पुराणों की सृष्टि हुई और वर्णसंकर की कल्पना करके सैकड़ों उपजातियां हिन्दू धर्म में बन गईं। इस समय तो ८७४५ उपजातियां हैं। जिसमें दो हज़ार तो सिर्फ़ ब्राह्मणों में ही हैं। इसी प्रकार ९५० उपजातियां क्षत्रियों में है। फिर इस पर तुर्रा यह कि इन उपजातिओं में भी सूक्ष्म बीसों भेद हैं। सचमुच हिन्दू जाति तो प्याज की तरह छिलका उतरते २ निराकार स्वरूप हो रही है। इतने पर भी बस नहीं है। ये सारी उपजातियां परस्पर रोटीबेटी का व्यवहार नहीं करतीं। फलतः विवाहों में बड़ी कठिनाई होती है। और सुनिये— ७२ लाख जरायम पेशा लोग तो बिलकुल अनाथों की तरह लुटरहे हैं। ये लोग अभी तक चोटी रखते

हैं इसीलिये हिंदुओं की वर्णव्यवस्था के अनुसार अछूत समझे जाते हैं।

परन्तु प्रति दिन ईसाई और मुसलमान इन्हें अपने अन्दर मिला रहे हैं। तो भी हिन्दू लोग 'भगवान् रामचन्द्र की जय' और आर्य समाजी लोग 'दयानन्द की जय' के नारे लगा कर अपने आपको धोखा दे रहे हैं। इन उपजातियों का निर्माण मुसलमानी राज्य में बहुत हुवा। ज़रा ज़रा सी बात पर हिन्दू लोग जात बिरादरी से बाहर कर देते थे। परिणाम स्वरूप नदिओं के नाम पर जैसे सारस्वत, गंगोपारी, जमनापारी, कुछ ग्रामों के नाम पर जैसे लखनऊ के वाजपेयी, कुछ मुसलमानों के सम्पर्क से फत्तू के तिवारी, इमामखोर के शुक्ल कुछ पशुओं के नाम से भेड़ी और बकरुवा शुक्ल और कुछ पेशों के नाम से जैसे तेली तमोली आदि। फिर ब्राह्मणों में ही गौड़, सनाढय, झिझोतिया, उत्कल, मैथिल, काश्मीरी और दक्षिणी न जाने कितने विभेद हैं। इतने भेद होने पर भी अरब के मुसलमान और इङ्गलैण्ड के ईसाई शुद्ध होने के बाद प्रचलित वर्णव्यवस्था के अनुसार किसी भी कोने में स्थान नहीं पा सकते ? तो क्या लण्डन का शुक्ल और अदन का वाजपेयी बनाने से काम चलेगा ? कदापि नहीं। तो क्या शुद्ध शुदा कन्नौजिया होंगे या सरवरिया, चंद्रवंशी होंगे या सूर्यवंशी, अग्रवाल वैश्य होंगे या खण्डेलवाल ? नहीं होंगे—तो रोटी बेटी व्यवहार परस्पर न होने के कारण शुद्ध करना व्यर्थ है। भारतवर्ष

में तो दो ही जाल बिछे हैं। एक तो रेलवे लाइन का जाल और दूसरा वर्णव्यवस्था के जंजाल का जाल। रेलवे का जाल तो समझ में आता है, लेकिन वर्ण व्यवस्था का जाल तो शरद् ऋतु के आकाश में तारों की तरह विस्तृत हो रहा है। इस जाल का जादू लड़के लड़कियों के विवाह समय पूरे ज़ोर पर आ जाता है। प्रचलित वर्ण व्यवस्था के ही कारण सन्तानों के विवाह समय लेन देन की विनाशकारी कुप्रथा चल निकली है। कहीं दहेज है, कहीं ठहरौनी और रिश्वत भी चलती है। हिन्दुओं के विवाह समय सबसे बड़ा सिद्धांत यह रहता है कि चाहे वेदों की आज्ञा का उल्लङ्घन हो जावे, चाहे लड़के लड़कियों का जीवन नष्ट हो जावे, चाहे रोगी के साथ लड़की चली जावे— लेकिन प्रचलित वर्ण-व्यवस्था (जातपांत) न टूटने पावे। वास्तव में वर्ण व्यवस्था मनुष्यों के लिये बनाई गई थी, न कि मनुष्य वर्ण व्यवस्था के लिये। यहां तो 'वर्ण व्यवस्था' की रक्षा मनुष्यों के विनाश पर की जा रही है। कैसा घाटे का सौदा है। देखिये— मनुष्य के लिये भोजन हैं, परन्तु जब उसी भोजन से मनुष्य के शरीर को हानि होने लगती है तो भोजन छोड़ दिया जाता है और तभी आरोग्यता प्राप्त होती है। इसी भांति मनुष्य समाज के लिये वर्ण व्यवस्था बनाई गई थी। अब जब प्रत्यक्ष रूप में उससे हानि हो रही है, और हानि भी बड़ी भारी, यहां तक कि वर्ण व्यवस्था देश को मृत्यु की ओर ले जा

रही है— तब भी इस पिशाचिनी वर्ण व्यवस्था का विध्वंस न करना कहां की बुद्धिमत्ता है ? आज इसी वर्णव्यवस्था के कारण एक चौथाई हिन्दू मिट गये हैं अर्थात् ३२ करोड़ के २४ करोड़ ही रह गये, जिनमें ७ करोड़ अछूत कहे जाते हैं। यही कारण है कि इन २४ करोड़ पर १ लाख २० हजार विदेशी राज्य कर रहे हैं। तो भी हिन्दू लोग कहते हैं कि :—

नासाह ! कर न नसीहत मुझे दिल मेरा घबरावे है।
मैं उसे समझूं हूँ दुश्मन, जो मुझे समझावे है।।

पंजाब में गुरु नानक ने समझाया, युक्तप्रांत में दादू और कबीर ने समझाया, बंगाल में राजा राममोहनराय ने समझाया, दक्षिण में रामानुजाचार्य्य नेसमझाया और गुजरात में महात्मा गांधी ने समझाया—परन्तु आज तक हिन्दुओं की समझ में नहीं आया। देखिये— जापान ने वर्ण व्यवस्था मिटा कर अपनी एक कौम (Nation) बना ली। परन्तु हम लोग अभी तक कक्कड़, चोपड़ा, भल्ला, नेवटिया, अहूजा, आलूवालिया, ओसवाल, जायसवाल, अग्रवाल, पंचौली, पाठक, और पाण्डे बने हुए हैं। कहते हैं कि ये गोत्र हैं— परन्तु इन नासमझों को पता नहीं कि गोत्र तो केवल ७ हैं। जिनको सप्तऋषि कहते हैं। पश्चात् ऋषियों के स्थान पर न जाने कौन २ गोत्र गिना बैठे ! देखो भाइयो ! मद्रास में प्रतिदिन एक हजार हिन्दू ईसाई हो रहे हैं। आसाम में ३६ फी सदी मुसलमान हो गये हैं

जहां ४० वर्ष पूर्व एक भी न था। इसी प्रकार वंगाल में ६० फ़ीसदी हो गये। क्या अब भी घोर निद्रा को छोड़ कर वर्ण व्यवस्था का विध्वंस न करोगे ???

शर्मा वर्मा विवेचन

सचाई छिप नहीं सकती बनावट के उसूलों से,
कि खुशबू आ नहीं सकती कभी कागज़ के फूलों से॥

आज कल वर्णव्यवस्था के ठेकेदारों ने चारों तरफ शर्मा वर्मा की धूम मचा रक्खी है। आधार के लिये वही स्वामी जी का भ्रमोत्पादक लेख पेश कर दिया जाता है। परंतु यह काम अब पोची दलीलों से पूर्ण नहीं हो सकता। शर्मा वर्मा की सिद्धि के लिये वेद, इतिहास और पुराणों के प्रमाणों को प्रस्तुत करना पड़ेगा। कहा भी है—"इतिहास पुराणाभ्यां वेदार्थं उपवृंहयेत्" इसलिये इतिहास पुराण को सर्व प्रथम लीजिये। महाभारत तक इतिहास और पुराण इस बात की साक्षी नहीं देते हैं कि किसी भी ऋषि मुनि ने या ब्रह्मर्षि राजर्षि ने अपने नाम के साथ वर्णव्यस्था का प्रकाश करने के लिये शर्मा वर्मा का प्रयोग किया हो। सृष्टि के आदि में जिन चार ऋषियों पर वेद प्रकट हुवे—वे भी कोरे अग्नि, वायु, आदित्य और अङ्गिरा कहलाये। अग्निशर्मा, वायुवर्मा, अदित्यगुप्त और अङ्गिरादास का प्रयोग आज तक सुना या देखा नहीं गया। गौतम कपिल कणाद शर्मा नहीं लिखते थे। राजा

अश्वपति, जनक और राम वर्मा नहीं लिखते थे। कहीं रामायण में राम वर्मा या हनूमान वर्मा की चर्चा नहीं। हां! महाभारत में कृतवर्मा और महाभाष्य में इन्द्रवर्मा मिलता है सो भी समस्त नामों में वर्मा वर्णव्यवस्था का द्योतक नहीं अपितु वह नाम ही हो जाता है। आज जैसे श्रीकृष्ण में श्री, रामजी-लाल में जी और भगवानदास में भगवान नाम ही हैं। जब इति-हास और पुराण से शर्मा वर्मा पुष्ट नहीं हुवे तो फिर वेदों में इनका पता पाना आकाश के फूलों और बन्ध्या के पुत्रों के समान असम्भव है। चारों वेदों में कहीं 'शर्मा' शब्द नहीं आया है। हमने कई वार पोप पण्डितों को चैलेंज दिया कि कोई भी चारों वेदों में शर्मा शब्द दिखलावे। इस पर कई पण्डितम्मन्यों ने वृथा प्रयास भी किया कि वेदों में शर्मा शब्द है, क्यों कि 'शर्म मे यच्छ' ऐसा अनके स्थानों पर वेद में आया है। इन वेचारों को पता नहीं कि 'शर्म' नपुंसक लिंगी है। हम पुलिंग वाची शर्मा शब्द के लिये चैलेंज देते हैं। तव 'सुशर्मा' दिखादिया। जैसे रोटी मांगी तो डवल रोटी ले आये। फिर वात तो वही रही। यहां भी वही भूल करते हैं। सुशर्मा में भी सु—शर्म है। हमारा तो चैलेंज यह है 'शर्मा' शब्द पुलिंग वाची स्वतन्त्ररूप से चारों वेदों में कहीं नहीं। जब वेदों में शर्मा शब्द ही नहीं तो वेचारी वर्ण-व्यवस्था को इस शब्द से कैसे पुष्टि मिल सकती है? इस लिये नामों के साथ शर्मा शब्द स्वतन्त्ररूप से प्रयोग नहीं

हो सकता। जैसे—क्षेत्रपाल शर्मा, ठाकुरदत्त शर्मा और देवेन्द्र-नाथ शर्मा। हां! देवशर्मा, विष्णुशर्मा और भद्रशर्मा नाम ठीक हैं; क्योंकि इन नामों में शर्मा शब्द नहीं हैं 'शर्म' है और संस्कृत व्याकरणके नियमानुसार दीर्घ होकर शर्मा बनगया है। ऐसे ही नामों के लिये महा पण्डित स्वामी दयानन्द जी ने गौणरूप से आज्ञा दी है परन्तु यहां तो मनचले स्वार्थी लोग रणछोड़दास शर्मा, शेरसिंह शर्मा (डवलशेर) कूड़ामल वर्मा (डवल कूड़ा) घीसूलाल गुप्ता आदि बने हुवे हैं।

एक और बड़े मज़े की बात—एक विकट शास्त्री कोरी संस्कृत बोलते हुवे मैसूर से सीधे हमारे पास पहुँचे। कहने लगे कि हम वेदों में 'शर्मा' शब्द दिखायेंगे। मैंने कहा दिखा-इये। बोले 'शर्मासि मे शर्म यच्छ' में शर्मा+असि है। मैंने कहा कि शर्म+असि है। बोले नहीं; क्योंकि शर्मन्+ असि था-और न का लोप असिद्ध होगा। अतः दीर्घ न हो सकेगा। इसलिये 'शर्मा असि' ऐसा ही मानना पड़ेगा। हमने झट उससे अगला सूत्र बतादिया कि 'न लोपः सुप्स्वर संज्ञा तुग् विधिषु कृति' बस चुप हो गये। प्रयोजन यह है किसी भी प्रकार 'शर्मा' शब्द वेदों में दिखाने के लिये वेद मंत्रों के नाक कान मरोड़ने का भी प्रयत्न करने में ये मनचले नहीं चूकते। फिर भला शर्मा-बूटहाउस, शर्माटेलरिंग-हाउस और शर्मावाशिङ्कम्पनी लिखने में इन अज्ञों को क्यों संकोच होवे? 'शर्मा होटल' तो एक जन्म सिद्ध अधिकार ही माना जाता है।

इन बेचारों को यह तो पता ही नहीं कि शर्मा शब्द का अर्थ हिंसक (मारने वाला) है। ये लोग धातुपाठ तो पढ़े ही नहीं—नहीं तो पोप परिडतों के पाखराड में क्यों पड़ते? 'शर्मा' शब्द की सिद्धि के लिये आज तक कोई भी परिडत 'शृहिंसायाम्' के सिवाय दूसरी धातु नहीं खोज सका। 'शर्मा' शब्द शृहिंसायाम् से बना है। स्वामी दयानन्द ने स्वयं लिख दिया है कि—

'सुष्ठ शृणाति इति सुशर्मा राजा विशेषः' अर्थात् जो भली प्रकार दुष्टों को दराड दे (मारे) वही सुशर्मा राजा है। यहां सुशर्मा ब्राह्मण नहीं है। क्षत्रिय है—तब शर्मा ब्राह्मण वाची क्यों होगा। इसी प्रकार यजु०८।८ में स्वामी दयानन्द ने सुशर्मा का अर्थ किया है कि—

'सुष्ठु शोभनं शर्म गृहं यस्य स सुशर्मा' अर्थात्—जिसका घर अच्छा बना हो वह 'सुशर्मा' हुआ। अब सोचिये घर किसका अच्छा बना हो सकता है? क्या वैश्य 'सुशर्मा' नहीं कहला सकता है? अवश्य— तो फिर 'शर्मा' ब्राह्मणवाची कैसे हुवा !!! नहीं हो सकता।

कई लोग 'सुशर्मा' में मनिन् प्रत्यय सिद्ध किया करते हैं। यहाँ अब हम यह एक बार ही बता देना चाहते हैं कि 'सुशर्मा' में मनिन् प्रत्यय नहीं है। प्रत्युत 'मनिः' प्रत्यय है। यह सूक्ष्म भेद है—परन्तु पोप परिडतों की परिडताई का परिचय कराने के लिये यहाँ हम लिखते हैं। औणादिक सूत्र है—

'मिथुनेमनिः' इससे सुशर्मा, सुधर्मा, सुकर्मा में 'मनिः' प्रत्यय होता है। स्वामी दयानन्द ने स्वयं लिखा है—

यत्रोपसर्गो धातु क्रियया सम्बद्धस्तत् मिथुनम्।

तस्मिन् सति उक्तेभ्यो वक्ष्यमाणेभ्यश्च धातुभ्यः मनिः प्रत्ययः स्यात्। न तु मनिन्। स्वरभेदार्थो नियमः।

जब स्वामी दयानन्द ने भी स्पष्ट लिख दिया कि 'मनिन्' प्रत्यय नहीं है— तो आज तक 'सुशर्मा' में 'मनिन्' प्रत्यय लिखने वाले परास्त हो गये। यहां इतने शब्द लिखने का प्रयोजन यही है कि यदि पाण्डित्य का अभिमान हो तो उसके लिये भी हम सदैव सन्नद्ध हैं। हम तो कहते हैं कि—

"नखानां पाण्डित्यं प्रकटयतु कस्मिन् धृतमतिः॥

एक बात विचारणीय और है—वह यह कि 'शर्मा' शब्द का प्रयोग किया भी कैसे जावे ? यदि स्वयं अपने गुण कर्मों का निश्चय प्रत्येक करने लगे तो व्यवस्था न रहेगी और दूसरी कोई सभा या समिति यह अधिकार नहीं रखती कि 'शर्मा वर्मा' की उपाधियां—दे और यदि देवे भी तो बिना राज्य सत्ता के कौन स्वीकार करे करायेगा। हां ! जन्मना ब्राह्मण शर्मा बने रहें और क्षत्रिय वर्मा तो फिर प्रचलित वर्ण व्यवस्था (जात पांत) का महान् रोग सताये बिना नहीं रहेगा। यह हो ही रहा है। आर्यसमाज में भी यही हो रहा है। एक लखपती भी शर्मा है। एक व्यापारी भी शर्मा है, एक होटल धारी भी शर्मा है, एक सट्टेबाज़ दलाल भी शर्मा है। फलतः नाई शर्मा, खाती

शर्मा, लोहार शर्मा भी सिद्ध हो चुके हैं। इनका यह 'होलसेल' शर्मा एक बड़ा भद्दा मज़ाक़ हो रहा है। इस लिये इस शर्मा वर्मा के प्रपंच में भारत के हितैषियों को नहीं फँसना चाहिये। यह शर्मा वर्मा का प्रपंच मनुस्मृति से ही प्रारम्भ हुआ है। यद्यपि 'शर्मवत् ब्राह्मणस्य स्यात्' ऐसा ही मनुस्मृति में है। जिसका अर्थ यह होता है कि मंगलवाची नाम ब्राह्मण का होना चाहिये। जैसी कि वेद में आज्ञा है कि 'शिवोनामासि' अर्थात् हे उपदेशक! (ब्राह्मण) तेरा नाम शिव है। तो भी लोगों ने वेद विरुद्ध शिवशर्मा बना दिया है। भला इस डवल कल्याण से क्या प्रयोजन!!! शिव का अर्थ भी कल्याण और शर्मा भी इनके मत में कल्याणवाची है। देखिये—

शर्मवत् ब्राह्मणस्य स्यात्, राज्ञो रक्षा समन्वितम्।
वैश्यस्य धन संयुक्तं, शूद्रस्य तु जुगुप्सितम्॥

यह मनुस्मृति का श्लोक ही मनुष्य समाज में विषमता फैलाये है और विशेषरूप से शूद्रों को दलित और अछूत बनाये है। मनुस्मृति ने इस श्लोक द्वारा आज्ञा दी है कि शूद्र का नाम बड़ा घृणित रखना चाहिये। जैसे घसीटाराम, कूड़ाराम, कूड़ामल (डवल कूड़ा) गरीबदास इत्यादि। शूद्र को 'दास' बनाने वाली इस मनुस्मृति के विरुद्ध जितना भी आन्दोलन किया जावे कम है। खेद तो तब होता है जब हम स्वामी दयानन्द के लेखों में भी 'देवदास' आदि नाम पाते हैं यद्यपि स्वामी जी ने टिप्पणी में लिख दिया है कि 'दास' वाले

नाम निषिद्ध हैं—तो भी मूल में ऐसे भ्रमोत्पादक लेख का पाया जाना स्वामी जी जैसे आदर्श सुधारक के लिये शोभा नहीं देता। यदि स्वामी जी यह लेख न लिखते तो शायद आज आर्य-समाज में से वर्ण व्यवस्था की मुसीबत को मिटाने में हम लोगों को इतना भगीरथ-प्रयास न करना पड़ता। वास्तव में वह लेख है गौण रूप में—तो भी स्वार्थी लोग मुख्य रूप से उसको ग्रहण करते हैं और वर्ण व्यवस्था का बोझा आर्य-समाज पर बुरी तरह लादना चाहते हैं। हमारी सम्मति में तो शर्मा और वर्मा बिलकुल भद्दे और बेहूदे शब्द हैं। इनका बहिष्कार सबको मिल कर करना चाहिये। नहीं तो शनैः शनैः यह 'शर्मा' का शोर ज़ोर पकड़ जायगा और भारतवासियों में लगभग आधे लोग शर्मा (हिंसक) बन जायेंगे। शर्मा के सम्बन्ध में अब हम यह भी बता देना चाहते हैं कि यह शर्मा शब्द का प्रयोग बौद्ध काल में प्रारम्भ हुआ है। बौद्ध-काल के प्रारम्भ में भारत के ब्राह्मण यज्ञों में पशुओं का बलिदान खूब किया किया करते थे। भगवान् बुद्ध ने जब ऐसे कराल काल में 'अहिंसा परमो धर्मः' का प्रचार किया—तब भी ये लोग जिह्वा के वशीभूत हो कर मांस खाने के लिये यज्ञों में पशुवध करते ही रहे। उन्हीं दिनों अन्य श्रेष्ठ ब्राह्मणों ने इन हिंसक ब्राह्मणों का नाम छेड़ के तौर पर 'शर्मा' रख दिया; क्योंकि शर्मा शब्द का अर्थ हिंसक भी होता है। इस प्रकार न तो इतिहास शर्मा का साथ देता है और न पुराण और नांहीं कहीं

वेदों में इस का पता पाया गया। फिर न जाने यह एक आफ़त किधर से आकर भारतीयों के गले पड़ गई। इस शब्द का प्रयोग पहले कम होता था–परन्तु स्वामी दयानन्द के आन्दोलन के बाद लोगों ने अन्य सब शब्दों का परित्याग कर के परिमार्जित परिपाटी के अनुसार शर्मा-वर्मा लिखना शुरू कर दिया। अब इस का इतना अधिक दुरुपयोग हो रहा है कि शर्मा की मट्टी पलाद हो गई है। शायद यह हमारी समझ में आ भी जाता, यदि जन्म मूलक जात पांत के आधार पर इन शब्दों का प्रयोग न होता—परन्तु हुआ वही जो अन्य शब्दों के साथ था। जन्ममूलक ही शर्मा वर्मा बन बैठे। इस लिये ये निकम्मे शब्द अब हमारे किसी काम के नहीं रहे। इन से हमारा जितना शीघ्र पिण्ड छूटे उतना ही शीघ्र कल्याण हो जावे। भगवान् भारत की भव्य भावना को भरपूर रखने के लिये भारतीयों को इन भ्रम की भंवरों से शीघ्र निकाल देवे।

इस सम्बन्ध में अखिल भारतीय श्रद्धानन्द-दल, देहरादून के विद्वान् दलपति श्री पं० धर्मदेव जी शास्त्री सांख्य–योग–वेदांततीर्थ, दर्शनकेसरी का लेख भी हम उदधृत करते हैं—ताकि आर्यजनता उक्त प्रशंसित पंडित जी के विचारों से लाभान्वित हो सके।

"आर्यसमाज की सर्वतोमुखी प्रवृत्ति को रोकने का कारण जन्ममूलक वर्णव्यवस्था (जात पाँत) है, अतः उसे स्वयं तोड़ना तथा दूसरों को तोड़ने की प्रेरणा करना, तथा भविष्य में अपने तथा अपने सम्बन्धियों का विवाह जन्म-

मूलक जात पांत की उपेक्षा पूर्वक ही करना चाहिये । यहां इस बात का निर्देश करना भी अनुचित न होगा कि वर्तमान शर्मा, वर्मा, गुप्त आदि उपाधियां तथा वाजपेयी, शुक्ल, सिन्हा, पाठक, सेठ, सेठी आदि उप-उपाधियां भी जन्ममूलक जात-पांत की पोषक हैं । अतः इन का प्रयोग करना उचित नहीं । साथ ही जब तक ब्राह्मणादि न होने पर भी शर्मा आदि उपाधियाँ लगाने वाले को हम नियमानुसार प्रयोग न करने पर बाधित नहीं कर सकते अथवा छीन नहीं सकते तब तक इन का प्रयोग और अप्रयोग बराबर है । जो आर्य लोग जन्ममूलक जातियों को महत्व नहीं देते उन्हें भी लोक संग्रह का विचार कर के सेठ, सेठी, वाजपेयी आदि उपाधियां त्याग देनी चाहियें; क्योंकि इन से जन्म की भावनाओं को पुष्टि मिलती है ।

कान्यकुब्ज का अर्थ

Kanauj, which is traditionaly said to be derived from Kanya-Kubja (the Croocked maiden) has given its name to an important division of Brahmans in northern India. (इन्साइक्लो पीडिया)

कान्यकुब्ज, गौड़, वाजपेयी विवेचन

वर्ण व्यवस्था के समर्थकों का एक यह भी मत है कि जितने भी जन्म जाति सूचक पुछल्ले हैं ये हमारे गोत्र हैं, इनकी रक्षा करनी ही चाहिये। जिनमें शुक्ल, मिश्र, तिवारी, चौबे, दुबे, त्यागी, सेठी, पाठक, कपूर, खन्ना, पुरी, टण्डन, शारदा, अग्रवाल आदि प्रसिद्ध हैं। इन शब्दों के प्रयोगमात्र से यह ज्ञान हो जाता है कि अमुक व्यक्ति जन्म से ब्राह्मण है, क्षत्रिय है या वैश्य अथवा शूद्र है; क्योंकि गोत्रों के बहाने ये वर्ण-व्यवस्था के पक्के सन्तरी बने हुये हैं। इनमें अनेक तो विकृत हैं और अनेक शब्द शुद्ध कर लिये गये हैं। यथा—तगे से त्यागी, सारड़ा से शारदा, और मिस्र से मिश्र ! बात यह है कि विवाहों के अवसर रप इनसे खूब काम लिया जाता है। इनमें अनेक गोत्र नहीं हैं—यों हीं गोत्रों की श्रेणी में गिने जाते हैं। फिर गोत्र का सवाल भी इतना पेचीदा है कि इसको हल करने के लिये बड़े साहस की आवश्यकता है। प्राचीन ऋषियों की आज्ञानुसार तो गोत्र वही है—जो 'अपत्यं पौत्र प्रभृति गोत्रम्" में प्रतिपादित है। अबतो सारे वर्णसंकर हो गये हैं। देखिये—महाभारत में वनपर्व १८०।३१

'संकरात् सर्ववर्णानां दुष्परीक्ष्येति मे मतिः' अर्थात् वर्णतो दुष्परीक्ष्य हैं भाई ! विवाह में तो विशेष बात ध्यान देनेकी इतनीही

होती है कि अत्यन्त समीपके रिश्ते न होजावें—बाकी यथायोग्य देखकर सम्बन्ध कर दिया जाता है। एक बात और—'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' को मानने वाले मुसलमानों को शुद्ध करके किस गोत्र में रक्खेंगे, ईसाइयों को किस गोत्र में डालेंगे और इसी प्रकार डच, यहूदी, पारसी किस गोत्र में गिने जायेंगे। वहां पुरी खन्ना तिवारी कहां मिलेंगे। सारे संसार में धर्मध्वजा फहराने का स्वप्न लेने वाले गोत्र की गणना में कबतक गाफ़िल रहेंगे? स्वामी दयानन्द के सिद्धान्तानुसार गुण कर्म से जब वर्ण व्यवस्था होगी तो पुरी खन्ना से, तिवारी अग्रवाल से और शुक्ल कपूर से सम्बन्धित हो जायगा—तब इन गोत्रों की कितनी कीमत रह जायेगी। तभी स्वामी दयानन्द ने संस्कार विधि में लिख दिया है कि कन्या माता की छः पीढ़ी के भीतर भी हो तथापि उसी को देना अन्य को कभी न देना। इसलिये वर्ण व्यवस्था के ठेकेदारों को यह मिथ्याप्रलाप छोड़ देना चाहिये और तुरन्त इन तमाम पुछल्लों पर पोचा फेर कर एक विशाल 'आर्य जाति' का निर्माण करना चाहिये। हां! उद्देश्य सूचक और भावोद्बोधक उपनाम रखने में कोई हानि नहीं है। जैसे अभय, त्रिशूल, हितैषी, सनेही, विद्यार्थी मेधार्थी और सत्यार्थी आदि। इस प्रकार नाम भेद भी हो जाता है और वर्ण व्यवस्थाका दिग्दर्शन भी नहीं होता। अब इसी सिलसिले में कान्यकुब्ज, गौड़ और वाजपेयी का भी हाल सुन लीजिये। ये कैसे गोत्र हैं???

(१) ब्राह्मणों में सर्व श्रेष्ठ ब्राह्मण 'कान्यकुब्ज' माने जाते हैं। कान्यकुब्ज में दो शब्द हैं। कन्या और कुब्ज अर्थात् सौ कुबड़ी कन्याओं से जिनकी उत्पन्न हुई वे कान्यकुब्ज कहलाये।

सुप्रसिद्ध आप्टे के विशाल कोष में भी लिखा है कि कन्नौज का नाम 'कन्याकुब्ज' है।

यह कोई कपोल कल्पित किस्सा नहीं है। प्रत्युत बाल्मीकीय रामायण के बालकाण्ड अ० ३२,३३ और ३४ में इस विषय का विस्तृत वर्णन मिलता है। जब राम और लक्ष्मण को विश्वामित्र साथ लेकर सिद्धाश्रम से लौटे हैं तब कुश राजाके राज्य में पहुँचकर राम ने विश्वामित्र से पूछा है कि—

'भगवन्! कोन्वयं देशः ?' अर्थात् इस देशका क्या नाम है? तब विश्वामित्र ने बताया है कि मेरा जन्म देश यही है और यह देश ब्राह्मणों की उत्पत्ति का केन्द्र है। ये सारे ब्राह्मण क्षत्रियों की संतान हैं। इस प्रकार 'वर्णसंकर' का दोषारोपण भी कर दिया। प्रमाण इस प्रकार है—

> ब्रह्मयोनिर्महा नासीत् कुशोनाम महातपाः।
> अक्लिष्टव्रतधर्मज्ञः सज्जन प्रतिपूजकः ॥

अर्थात् कुश नाम का महातपस्वी राजा 'ब्रह्मयोनि' था। उसके वैदर्भी नाम की स्त्री से कुशाम्ब, कुशनाभ आदि चार पुत्र पैदा हुये। कुशाम्ब ने कौशाम्बी बसाया जिसको आजकल 'कोसम' कहते हैं—और कुशनाभ क्षत्रिय राजा ने घृताची नाम की स्त्री में सौ सुन्दर कन्यायें पैदा कीं। श्लोक इस प्रकार है—

कुशनाभस्तु राजर्षिः कन्याशत मनुत्तमम् ।
जनयामास धर्मात्मा घृताच्यां रघुनन्दन ॥

ये कन्यायें वायु दोष से कुबड़ीं हो गईं । इन कुबड़ी सौ कन्याओं का विवाह चूली के पुत्र ब्रह्मदत्त से हुआ । ब्रह्मदत्त ब्राह्मण था । उसके स्पर्श मात्र से सभी कन्याओं का कुवड़ापन दूर होगया ।

स्पृष्ट मात्रे तदा पाणौ विकुब्जाः विगत ज्वराः ।
युक्तं परमया लक्ष्म्या वभौ कन्याशतं तदा ॥

अब स्वयं सोच लीजिये कि इन सर्व श्रेष्ठ ब्राह्मणों की उत्पत्ति कहां से हुई ? हम तो इन वातों को विलकुल नहीं मानते परन्तु हमारे कान्यकुब्ज भाई जब जब अपना 'कान्यकुब्ज' गोत्र वतायेंगे, तव तव हम भी वाल्मीकीय रामायण का किस्सा सामने रख देंगे । शांतं पापम्

कान्यकुब्ज लोग अपने को सर्व श्रेष्ठ ब्राह्मण मानते हैं। प्रमाण रूप से प्रस्तुत करते हैं कि "कान्यकुब्जाः द्विजाः श्रेष्ठाः" न जाने कहां का यह प्रमाण है । यह संस्कृत में है इस लिये लोग इसे मान अवश्य लेते हैं । परन्तु वास्तव में कान्यकुब्ज लोगों में मांस भक्षण का विशेष प्रचार है । शुद्ध इतने बनते हैं कि 'नौ कनौजिया दश चूल्हे' । इनमें ऐसे लोग भी हैं जो अपनी स्त्री के हाथ से भी भोजन बनवा कर नहीं खाते । वे लोग हस्तपाकी कहलाते हैं । परम पवित्र होते हैं । आर्य समाज में भी इस टाइप के उपदेशक होते हैं । भला हो इनका ???

जब मांसभक्षण में कनौजिये निपुण हैं तब शराब को क्यों छोड़ते होंगे। कहावत है—

"बाला पियें पियाला, फिर बाला के बाला"

बाला के शुक्ल मशहूर हैं। फिर वर्णव्यवस्था पक्के ठेकेदार हैं। आधा अछूतपन इन्हीं के कारण देश में है। इन्हीं में शुक्ल, तिवारी, मिश्र, पांडे सब शामिल हैं। अछूतोद्धार के मार्ग में इनके ये पुछल्ले बड़े बाधक हैं।

(२) अब 'गौड़' की कथा सुनिये। वेद में 'गौर' आया है उस का विवेचन तो फिर होगा। अभी तो देखिये—बंगाल देश का नाम गौड़ है। बंगाल में खजूर का गुड़ बहुतायत से होता है। खजूर की शराब भी वहां खूब बनती है-जिसका पान प्रायः सौ में नब्बे बंगाली काम करते हैं। इन में चटर्जी, मुकर्जी, और बनर्जी सभी हैं। ये लोग उच्च कोटि के ब्राह्मण माने जाते हैं। मछली को तो ये लोग जल तोरी मानते हैं-और अण्डे को रसगुल्ला समझ कर खाते हैं।

ऐसे ब्राह्मणों को राक्षस कहा जाय या पिशाच? परन्तु 'गौड़' ब्राह्मणों की उत्पत्ति का श्रेय इनको अवश्य है। इसीलिये 'सुश्रुत' जैसे सुप्रसिद्ध आयुर्वेद ग्रन्थ में लिखा है कि 'गौड़ः पाचन दीपनः' अर्थात् गुड़ की शराब हाज़मा बढ़ाती है। बात यह है कि गुड़ की हाज़िम शराब को पीने

वाले गौड़ लोग कहलाये। जिसके लिये मनुस्मृति जैसी पुस्तक ने भी मुक्तकंठ से निंदा की। मनुस्मृति में लिखा है—

गौडी पैष्टी च माध्वी च विज्ञेया त्रिविधा सुरा।
यथैवैका तथैवान्या न पातव्या द्विजोत्तमैः॥

अर्थात् गुड़ की बनी शराब, पिट्ठी की बनी शराब और महुवे की शराब तीनों खराब हैं। ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य शराब न पीवें। सो उसी गुड़ की निषिद्ध शराब को पीने वाले गोत्र के गौड़ बड़े शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव बने हुये हैं। एक बात मनुस्मृति के श्लोक में पाई जानी स्वाभाविक है—क्योंकि शूद्रों के लिये तो मनुस्मति का बनाने वाला खार खाये बठा था। मनुस्मृति है ही क्या? शूद्रों के विरुद्ध द्विजों का एक षड़यन्त्र?? और पुरोहित शाही का पोषक एक प्रपञ्च !!! उक्त श्लोक में लिखा है कि द्विज शराब न पीवे। बेचारा शूद्र क्यों पीवे? क्या धर्मशास्त्र इसीलिये है कि शूद्रों को शराब पीने की आज्ञा देवे। अब समझ में आया कि शूद्र लोग मनुस्मृति को जलाने के लिये मशाल लिये क्यों अड़े हैं। हम तो मनुस्मृति को जला देने के लिये तय्यार हैं; चाहे आर्य्यसमाजी बिगड़ें या धर्म समाजी? क्यों कि हम तो वेद को ही अपना धर्मशास्त्र समझते हैं।

इसी प्रकार एक दूसरा श्लोक भी शूद्रों को शराब पीने के लिये उत्तेजित करता है।

सुरा वै मल मन्नानां पाप्मा च मल मुच्यते।
तस्माद् ब्राह्मणराजन्यौ वैश्यश्च न सुरां पिबेत्॥

अर्थात् शराब अन्नों का मैल है इसलिये द्विज लोग शराब न पीवें। क्यों भाई! शूद्र तो पीवे। फिर मज़ा यह है कि ब्राह्मण लोगों ने खुद क़ानून बनाया और आज शूद्रों को भी विस्की पीने में मात कर गये। परन्तु हैं अभी शर्मा जी। इस शर्मा की छाप ने शराब को शरबत बना दिया और मांस को सेव का गूदा। कुछ न पूछिये। द्विजों के इस पाखण्ड ने वर्ण व्यवस्था को खूब मांजा है।

(३) अब तीसरे श्रेष्ठशिरोमणि ब्राह्मण देवता का हाल सुनिये। आप वाजपेयी बने हैं। मध्यकाल में जब ब्राह्मण लोग मांस शराब के खूब अभ्यासी हो गये तो यज्ञ करके सब उसी के नाम समेटने लगे। बकरा काटा यज्ञ के नाम पर और कर दिया पेट के हवाले। शराब का छींटा दिया यज्ञाग्नि में और उड़ेल गये गले की गटर में। पाप तो हुआ ही नहीं; क्योंकि 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति।' यह भी इनका बनाया कानून है। उसी सिलसिले में 'वाजपायी' प्रसिद्ध हो गये। 'वाज' नाम अन्न का भी है। यज्ञों में अन्न की बनी हुई शराब को पीने वाले 'वाजपायी' कहलाते थे। वाल्मीकीय रामायण में साफ़ है—"वाजयेयान् दशगुणान् तथा बहु सुवर्णकान्" (उत्तर काण्ड) सो बिगड़ते २ अब 'वाजपेई' बन गये। हैं ये बड़े कटु किस्से। परन्तु हमने तो सत्य लिखने की शपथ खाली है—इसीलिये लिखेंगे ज़रूर, चाहे फिर कुछ भी हो। यह है इन लोगों के गोत्रों की संक्षिप्त कथा। भाइयो!

कहानी से भण्डार पूरा भरा है।

गुड़ खांय, गुलगुलों से परहेज़

I feel more than ever that if untouchability lives Hinduism dies. (महात्मा गांधी)

आज हमारा देश अछूतों की समस्या से बेहद सताया जा रहा है। गंभीरता पूर्वक विचारा जाय तो इस अछूतपन का मुख्य कारण प्रचलित वर्णव्यवस्था है। अछूत माना जाने वाला व्यक्ति चाहे कितना ही विद्वान्, सदाचारी और पवित्र हो—वह इस प्रचलित वर्ण व्यवस्था को विध्वंस किये बिना नीच ही समझा जावेगा। एक चमार चमार ही रहेगा, चाहे वह संसार की सबसे बड़ी डिग्री प्राप्त करले, एक भंगी भंगी ही गिना जायगा चाहे वह एक ब्राह्मण के समान अत्यन्त शुद्ध जीवन बिताता हो, एक धोबी धोबी ही माना जावेगा चाहे वह किसी फौज़ का अफसर ही क्यों न हो !!! यह सब क्यों—इसी लिये कि हिन्दुओं की प्रचलित वर्णव्यवस्था किसी को पनपने नहीं देती। महान् खेद तो यह है कि हमारी सरकार में भी सारे हिन्दू कानून "मनुस्मृति" आदि के माने जाते हैं। सुनिये एक अंग्रेज महिला ने आर्यसमाजिओं की संस्कार विधि के अनुसार एक हिन्दू से विवाह करलिया। कुछ अर्से के बाद जायदाद सम्बन्धी झगड़ा खड़ा हुआ। हाईकोर्ट तक मुक़दमा चला। वहाँ फैसला दे दिया गया कि यह विवाह ही हिन्दू कानून के अनुसार नाजायज है। बेचारे

आर्यसमाजी मुँह वाये रह गये। प्रयोजन यह है कि हमारे देश में सर्वत्र मनुस्मृति का प्रभुत्व है। कहने को आर्यसमाजी बहुत बनते हैं—परन्तु इनका प्रभाव देश पर इतना भी नहीं जितना उर्द के ऊपर सफ़ेदी। हाँ! वैदिक सिद्धान्तों के कायल सभी हैं—परन्तु आर्यसमाज गेहूँ में जौ के बराबर भी नहीं है! आये दिन लाखों हिन्दू पाखाने से परिपूर्ण गंगा, जमना और नर्मदा में स्नान को दौड़ते हैं। कुरुक्षेत्र के तालाब में डूब मरते हैं-और पुष्कर के पोखर में प्रविष्ट होते हैं। न अजमेर की आर्य प्रतिनिधि सभा रोक सकती है, न पंजाब की आर्य प्रतिनिधि सभा और न युक्तप्रान्त की आर्य प्रतिनिधि सभा। क्यों! इसी लिये कि आर्यसमाज का देश पर कोई प्रभाव नहीं है। प्रभाव हो भी कैसे ? जब स्वयं आर्यसमाजी लोग प्रचलित वर्ण व्यवस्था के गुलाम हैं और गुण कर्म की वर्ण व्यवस्था की टट्टी की ओट में बैठ कर 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' का बेसुरा और भद्दा अलाप सुनाते हैं तो कौन समझदार इनके बाड़े में घुसे ?? फिर आये दिन आर्यसमाज के चुनावों में भी जो खैंचातानी प्रचलित वर्ण व्यवस्था के आधार पर होती है उससे तो समझदार सभी आर्यसमाज़ियों का सिर लज्जा के मारे झुक जाता है। बताइये आर्य समाज का प्रभाव कैसे पड़े ??? प्रयोजन यह है भारत में सर्वत्र प्रचलित वर्ण व्यवस्था का ज़ोर है और परिणाम स्वरूप अछूत अछूत ही रहेंगे। हाँ! यदि अछूतों ने पुराणों की सहायता से कहीं

यह सिद्ध कर दिखाया कि हम लोग ब्राह्मण हैं या क्षत्रिय—तब तो हमारी नेक सरकार की सहायता से कानूनन अछूतपन मिट सकेगा। ये मोटी चोटी वाले एक सौ ग्यारह नम्बरी हिन्दू तो अछूतों को त्रिकाल में भी उठने न देंगे। तो होगा क्या! अछूतों से परहेज़, अछूतों को इन्सान न समझना और वेचारे अछूतों से वेगार और उन पर अत्याचार। विचित्र बात तो यह है कि सारे द्विज नाम धारी विदेशी चीनी खाजायेंगे-जो हड्डी से साफ़ की जाती है, यहाँ तक कि उसी चीनी से बने हुये मिष्टान्न का भोग अपने ठाकुर जी (भगवान्) पर लगावेंगे। चर्बी वाला घी खा जायेंगे। शराब मिश्रित दवायें पी जायेंगे। चमड़े लगे हुये नलों का पानी गटक जायेंगे—लेकिन एक शुद्ध सदाचारी इन्सान से परहेज़ करेंगे और अछूत अछूत कह कर अपनी बुद्धिहीनता का परिचय देंगे। इसी प्रकार विदेशी वस्त्रों का व्यवहार करने वाले अपने को पवित्र समझें यह भी एक मज़ाक है। जिस विदेशी वस्त्र के निर्माण में गाय की चर्बी लगाई जाती हो—उसी को अपने मन्दिरों में देवी देवताओं के ऊपर लपेटने वाले यदि वर्ण व्यवस्था का आडम्बर खड़ा कर सकते हैं तो यह एक महा पाखण्ड है या नहीं! एक शुद्ध सदाचारी मनुष्य के प्रवेश से तो मन्दिर भ्रष्ट हो जाता है और गाय की चर्बी से लिपे हुये कपड़ों से मन्दिर की शोभा बढ़ जाती है यह कैसा विचित्र तर्क और वेहूदी बात है ??? अब ज़रा इन द्विजों की दशा का दिग्दर्शन कीजिये। कौन सा

ऐसा कुकर्म है जो ये लोग नहीं करते हैं। जुवा खेलना, चोरी करना, डाका डालना, गोवर की पूजा करना,। पेड़ों की प्रदक्षिणा करना, लड़की बेचना, पुलिस में नौकरी करना, झूठी गवाही देना, पानी पांडे वन कर पानी पिलाते फिरना, वाल विवाह कराना, झूठे पत्रे बनाना, वृद्ध विवाह रचना, कृष्ण राधिका वन कर स्वांगों में नाचना, चरस गांजा तम्बाकू शराव पीना, मांस खाना, दुर्गा काली के सामने निरपराव मूक पशुओं का नृसंश वध करना, स्वयं निरक्षर भट्टाचार्य रहना और किसी को विद्या न पढ़ने देना, ब्राह्मण वनकर भीख मांगना, पिण्ड दान करवाना और व्यभिचार का वाजार गरम रखना। फिर भी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य वनने का ढोंग करना—वताइये यह निरा प्रपञ्च प्रचलित वर्ण व्यवस्था का है या नहीं! कौन है जो इन रोज़ाना के कारनामों से इनकार कर सके? अव भारत देश की यह दुर्दशा है और गुण कर्म की वर्ग व्यवस्था(वर्ण-व्यवस्था नहीं) विना राज्य सभा के चालू नहीं हो सकती—तो क्यों नहीं प्रचलित वर्ण व्यवस्था का विध्वंस करके इस निरे झूठे अभिमान को सदा के लिये ज़मीन में गाड़ दिया जावे?? और अछूतोद्धार, दलितोद्धार, हरिजनोद्धार आदि नये नये नामों की रचना पद्धति को एकदम बन्द कर दिया जावे??? जिस दिन, नहीं नहीं—जिस क्षण भारत से वर्ण व्यवस्था मिटेगी उसी क्षण भारत से अछूतपन ऐसे भागेगा जैसे गधे के सिर पर से सींग। नहीं तो गुड़ खायें

और गुलगुलों से परहेज़ वाली कहावत चालू रहेगी और भारत का बेड़ा हिन्द महासागर के अथाह जल में डूबेगा। न हिन्दू रहेंगे, न हिन्दुस्तान और न हिन्दुओं की वर्णव्यवस्था। कहिये आप क्या सोच रहे हैं ???

भयंकर ऐतिहासिक भूलें

प्रचलित वर्णव्यवस्था का इतिहास भी भयंकर भूलों से भरा हुवा है। श्रीकृष्ण भगवान् ने वर्णव्यवस्था के ही आधार पर अर्जुन को लड़ने के लिये तैय्यार किया और कहा कि—'चातुर्वर्ण्यं मयासृष्टं–गुणकर्मविभागशः" अर्थात् मैंने गुणों के अनुसार चातुर्वर्ण्य का कर्म विभाग किया है। ठीक है–श्रीकृष्ण एक चक्रवर्ती राजा थे। राजा ही कर्म-विभाग पर नियंत्रण(Control) करता है। सारांश यह है कि वर्णव्यवस्था के ही कारण कर्ण को नीच बताया गया और कौरव पाण्डव परस्पर ईर्ष्याग्नि से जल जल कर 'महाभारत' करने पर संयुक्त हुवे। परिणाम भी महा भयंकर हुवा। इस प्रकार हिन्दुओं की वर्णव्यवस्था जनित ऊँच नीच और छूतछात के कारण भगवान् बुद्ध को अपने समय में प्रचलित हिन्दू धर्म से घोर घृणा हो गई। मुख्यरूप से वर्णव्यवस्था का विध्वंस करने के लिये ही भगवान् गौतम बुद्ध ने सर्वजनोपयोगी बौद्ध धर्म की स्थापना की, क्योंकि

वर्णव्यवस्था के ब्राह्मण भी पक्के पशु हन्ता (शर्मा) बने हुये थे। गौतम बुद्ध ने 'अहिंसा परमोधर्मः' का शंख बजाया और वैदिक सिद्धान्तानुसार ब्राह्मण से चाण्डाल तक सबको समान मानकर वर्णव्यवस्था का विध्वंस कर दिया। लगभग एक हज़ार वर्ष तक भारत में बौद्ध और द्विजों के बीच परस्पर घोर संघर्ष होता रहा। इसी संघर्ष के फल स्वरूप ईसाई और मुसलमान इस देश में आ घुसे। बस–इस पिशाचिनी वर्णव्यवस्था के ही कारण दक्षिण में, विशेषतः मद्रास में लाखों हिन्दुओं ने जो वर्णव्यवस्था के अनुसार शूद्र और अछूत समझे जाते थे इन अभिमानी ब्राह्मणों के अत्याचारों से अत्यन्त दुःखित होकर ईसाई धर्म की शरण ग्रहण कर ली। फलतः आज मद्रास की ओर गांव गांव में ईसाई मिलते हैं। इसी प्रकार लाखों शूद्रों और अछूतों ने इन अनाचारी द्विजों के अनाचार से हार कर मुहम्मदी मत को स्वीकार कर लिया। आज वे ही लाखों हमारे पीड़ित मुसलमान भाई करोड़ों की संख्या में भारत भूमि में दनदना रहे हैं और प्रतिदिन अछूतों और शूद्रों को हज़म कर रहे हैं। आश्चर्य तो यह है कि सौ में साठ ब्राह्मणों की स्त्रियां मुसलमानों के चक्कर में फँस जाती हैं—परन्तु हिन्दुओं की वर्णव्यवस्था के मारे हम लोग हाथ पर हाथ धरे मन मसोस मसोस कर चुपचाप बैठे हैं। हमारा सारा घर आतिशबाज़ी की दूकान की तरह जल रहा है लेकिन इस विनाशकारी वर्णव्यवस्था के मारे कोई चारा नहीं है।

उधर मुसलमानों में कोई वर्णव्यवस्था नहीं है। इस लिये वे लोग हिन्दुओं को भेड़ बकरी की तरह अपने अन्दर समेटे चले जाते हैं। अपरंच—इसी विध्वंसकारी वर्णव्यवस्था के कारण महमूद गजनवी, मुहम्मद गोरी, आदि आक्रमणकारी मुसलमानों ने भारत पर हमला करने का साहस किया। एक बार नहीं, अनेक बार सोने की चिड़िया को लूटा, खसोटा और बरबाद किया और यहां तक कि पराधीनता की बेड़ियों में जकड़दिया। देखिये—यदि भारत में वर्णव्यवस्था का रोग न होता तो सन् ६७७ ई० में राजा जयपाल को सुबुक्तगीन के साथ लज्जास्पद संधि करने के लिये लाचार न होना पड़ता। यदि भारत में वर्ण-व्यवस्था का यक्ष्मा न होता तो महमूद गजनवी के आक्रमण के सम य ब्राह्मण पूजारियों (पूजा+अरि) के बहकाये में आकर क्षत्रिय लोग युद्ध से हाथ न खींच लेते। यहां तक कि थानेसर आदि स्थानों में मुहम्मद गोरी के विरुद्ध ब्राह्मण, वैश्य और शूद्रों ने क्षत्रियों का साथ देने से इनकार कर दिया—अन्त में जयचन्द और पृथ्वीराज की फूट ने भारत को गोरियों से परास्त कराया। प्रारम्भ से लेकर आज तक इसी प्रकार भारतवर्ष वर्ण व्यवस्था के कारण छिन्न भिन्न रहा है। देखिये-प्रचलित वर्ण व्यवस्था से समानता नष्ट होती है, समानता विना एकता नहीं हो सकती और अनैक्य ही राष्ट्र की समस्त विपदाओं का मूल कारण है। भारत का यह तो सौभाग्य था कि मुसलमान शासकगण लड़

भिड़ कर फिर इसी देश के होकर यहां ही बस गये जिस से धन धान्य का प्रवाह बाहर नहीं हुआ। इसीलिये मुसलमानी शासन में बेकारी और बेगारी अधिक नहीं फैली। खाने पीने के लिये किसी प्रकार का कष्ट नहीं झेलना पड़ा। देखिये—अलाउद्दीन बादशाह के समय में भी साढ़े सात पैसे का एक मन गेहूँ और पांच पैसे का एक मन चना, चार पैसे का एक मन जौ, पांच पैसे का एक मन चावल और उड़द बिकता था। उस समय चौदह सेर का एक मन होता था। आज तो हम लोगों को रोटियों के लाले पड़ रहे हैं। प्रतिदिन लाखों दुधारू गऊ आदि पशुओं का वध हो रहा है। चाण्डाल से ब्राह्मण तक सभी घी में चर्बी उड़ा रहे हैं, तो भी वर्ण व्यवस्था का मनमोहक मद्य हम लोगों ने पीना नहीं बन्द किया ???

अकबर, सिकन्दर और नौवली

वर्ण व्यवस्था की व्यथा से पीड़ित भारत वर्ष कैसे कैसे सुवर्ण समय खो चुका है। देखिये—एक वार अकवर वादशाह ने बीरवल से कहा कि मैं हिंदू धर्म को पसन्द करता हूँ मुझे हिंदू वना लो। वीरबल इस युक्तियुक्त बात को सुनकर सन्न रह गया; क्योंकि उसके दिमाग़ में हिन्दुओं की वर्ण-व्यवस्था अड़ी हुई थी मनही मन सोचता रहा। एक दिन वादशाह की सवारी यमुना के पास से निकल रही थी। वीर-वल को मज़ाक सूझा। एक गधी को पकड़ कर यमुना के तट पर ले गया और खूव मल मल कर स्नान कराने लगा। इस विचित्र कार्य को देख कर अकवर पूछने लगा कि यह क्या हो रहा है? बीरवल ने उत्तर दिया कि इस गधी को स्नान कराकर गाय वना रहा हूँ। वादशाह ने हँसकर कहा कि कहीं गधी से गाय हो सकती है। वस—वीरबल ने मौका समझ कर झट उत्तर दे दिया "तव मुसलमान भी हिन्दू कैसे हो सकता है?" वादशाह चुपचाप चला गया। वीरवल के इस मज़ाक ने भारत का तख़्ता पलट दिया। यदि अकवर हिंदू हो जाता तो भारत को औरंगज़ेबी अत्याचारों का सामना न करना पड़ता और नादिरशाही ज़माना न देखना

पड़ता। परन्तु भारत ने तो वर्ण व्यवस्था का महान् विध्वंस भुगतना था। आज भी दक़ियानूसी हिन्दुओं की वही मनोवृत्ति है। आज भी गाय गधी वाली युक्ति भारत के कोने कोने में पुराण पन्थी लोग दे रहे हैं। इन अल्पज्ञों को पता नहीं है कि यह युक्ति तर्क शास्त्र के ही विरुद्ध है। देखिये—गाय और गधी की जाति भिन्न है परन्तु मुसलमान और हिन्दू की जाति भिन्न नहीं है। मुसलमान और हिन्दू दोनों मनुष्य जाति के हैं। फिर गाय गधी का दृष्टांत कैसे लागू हो सकता है ? प्रयोजन यह है कि बारम्बार कहने पर भी वर्ण-व्यवस्था के पोषक बीरबल आदि हिन्दुओं ने अकबर को हिन्दू नहीं बनाया। तो भी अकबर हिन्दू प्रेमी रहा और दोनों कौमों के साथ समान भाव से निष्पक्ष व्यवहार करता था। परन्तु पश्चात् औरंगजेब की पक्षपातिनी पद्धति ने हिन्दुओं को खूब पद दलित किया और वर्ण व्यवस्था का कड़वा नींबू खूब चुसाया।

इसी प्रकार १६ वीं शताब्दी में सिकन्दर नामी एक बादशाह जो ला मज़हब था, काश्मीर पर चढ़ आया और वहां के हिन्दुओं पर अपना अधिकार कर लिया। कुछ काल बाद वह काश्मीर के ब्राह्मणों को देख कर अत्यन्त प्रसन्न हुवा और उनसे हिन्दू धर्म में दीक्षा लेने के लिये कहा। उस समय भी वर्ण व्यवस्था के पोषक उन मूर्ख ब्राह्मणों ने उसकी हार्दिक इच्छा को अनसुना करके टाल दिया। पश्चात् सिकन्दर

बादशाह ने मौन तो धारण कर लिया परन्तु हृदय में उसने प्रतिज्ञा कर ली कि कल सूर्योदय होते ही पहिले पहिल जिसका मुख देखूंगा—उसी के मज़हब को स्वीकार कर लूंगा। यह बात बुलबुलशाह नामी फकीर को किसी प्रकार ज्ञात हो गई। फलतः वह सुबह होते ही राजमहलों में पहुँच गया और बादशाह सिकन्दर ने स्वभावतः बुलबुलशाह नामी मुसलमान फ़कीर के दर्शन कर लिये और उसी दिन उसने घोषणा करवा दी कि आज से मैं मुसलमान हो गया हूँ। अब मैं सच्चे मज़हब वाला हूँ। ला मज़हब नहीं रहा हूँ। इतना होने पर भी उसके बाल बच्चे हिंदू धर्म की तरफ़ ही झुके रहे। सौभाग्य से सिकन्दर की एक स्वरूपवती युवती कन्या भी थी। उसका विवाह भी वह किसी हिन्दू ब्राह्मण के साथ करना चाहता था। खोजने पर सोहाभट्ट नामक एक ब्राह्मण तय्यार हो गया। सिकन्दर ने अपनी कन्या का विवाह सोहाभट्ट से कर तो दिया—परन्तु वर्णव्यवस्था के ठेकेदारों ने बड़ा कोहराम मचा दिया। धर्म की दुहाई, शास्त्रों की दुहाई और ब्राह्मणत्व की दुहाई देने लगे। सिकन्दर ने उसको अपना मंत्री बना लिया और ब्राह्मणों से अनेक बार प्रार्थना की इन दोनों के विवाह को आप लोग हिन्दू शास्त्रों के अनुसार नियमित करा दीजिये। परन्तु वहाँ तो हिन्दुओं का मुख्य धर्म शास्त्र 'मनुस्मृति' माना जाता था। भला मनुस्मृति हिन्दुओं को

संगठित कैसे होने देती। इसको जबतक भस्मसात् न किया जायगा भारत उठकर खड़ा ही नहीं हो सकता। जब स्वामी दयानन्द जैसे कट्टर सुधारक भी मनुस्मृति के मोह को न छोड़ सके तब और कौन इसकी पकड़ से भारत को मुक्त करेगा? बस—मनुस्मृति के मानने वाले ब्राह्मणों की मूर्खता के कारण सोहाभट्ट कट्टर मुसलमान बन गया। मन्त्री तो वह था ही—उसने सिकन्दर को सलाह दी कि काश्मीर मुसलमानों के लिये है काफ़िर हिन्दुओं के लिये नहीं। फिर क्या था—बादशाह ने मनमानी करने की आज्ञा दे दी। सोहाभट्ट ने डट कर हिन्दुओं के मन्दिर तुड़वाये। सोने चाँदी की देव मूर्तिओं को पिघलवा कर उनके सिक्के ढलवा लिये। यहां तक ही हो जाता तो बस था—सोहाभट्ट ने मुसलमान सैनिकों द्वारा सैकड़ों ब्राह्मणों को पकड़वाया और झेलम नदी के किनारे 'बट-मज़ार' नामक चबूतरे पर खड़ा किया। जिन्होंने इसलाम को स्वीकार कर लिया उनको तो छोड़ दिया गया, बाकी ब्राह्मणों को बोरों में भरवा कर झेलम नदी के गहरे पानी में डुबवा दिया गया। यह स्थान आज तक बना हुआ है। काश्मीर जाने वाले इस स्थान को देख कर खून के आंसू बहाते हैं; यह स्थान 'बट मज़ार' नाम से प्रसिद्ध है। बट का अर्थ है ब्राह्मण और मज़ार कहते हैं कब्र को—अर्थात् ब्राह्मणों की कब्र, कहिये इस पिशाचिनी वर्ण-

व्यवस्था ने क्या क्या गुल नहीं खिलाये ? यदि मनुस्मृति की वर्णव्यवस्था का विध्वंस करते हुए ब्राह्मण लोग सोहाभट्ट को अपना लेते तो आज काश्मीर जैसी स्वर्ग भूमि में ६५ प्रतिशत म्लेच्छ (मुसलमान) क्यों होते ?? काश्मीर के ब्राह्मण पाण्डे के वाण्डे क्यों बनाये जाते ??? पे की जगह वे होगया। बस-एक अक्षर के बल पर गोरक्षक से गोभक्षक बन गये। फलतः आज सारा काश्मीर मुसलमानों से भरा है। सौभाग्य से गो हत्या काश्मीर में नहीं होने पाती। यह एक ग़नीमत है—नहीं तो वर्णव्यवस्था के पोषक उन अदूरदर्शी ब्राह्मणों की कृपा से काश्मीर में सबसे अधिक गोहत्या होती; क्योंकि काश्मीर के सौ में सौ ब्राह्मण भी मांस भक्षी हैं। तो भी कौन उनका ब्राह्मणत्व छीन सकता है ???

और सुनिये—भारतवर्ष की वर्णव्यवस्था और छुआछूत का पता पाकर योरप के पादरी लोगों ने बड़ी प्रसन्नता मानी। कई सौ वर्ष पूर्व पुर्त्तगाल से डी रौबर्ट नौबली नाम का एक पादरी मद्रास प्रांत में पहुँचा। आते ही उसने कपड़े रंग कर संन्यासी का भेष धारण किया। उस कपटी संन्यासी की वेषभूषा को देख कर लगभग ३०० ब्राह्मण उस पादरी के पिछलगुवे बन गये। यह भी तो एक मूर्खता थी कि अनजाने ही किसी के पीछे लग जाना। उस कपट-पादरी ने सबको पानी पिलाया। अब उसने एक विराट् सभा का आयोजन

किया—जिसमें सभी पेशों के लोग अधिक संख्या में उपस्थित थे। तब उस कपट-संन्यासी ने उठ कर कहा कि मैं वास्तव में पादरी हूँ—मेरा नाम नावली है। ये सभी लोग मेरे चेले हैं और इन्होंने मेरे हाथ से पानी पी लिया है। बस—विराट् सभा में गड़बड़ पड़ गई। अन्त में वहां के पण्डितों ने व्यवस्था दे दी कि अब ये लोग पुनः हिन्दू धर्म में सम्मिलित नहीं हो सकते। बेचारे सारे यों ही ईसामसी की भेड़ों में शामिल कर दिये गये। उन्होंने बड़ी प्रार्थनायें कीं—परन्तु एक न सुनी गई। उनकी बिरादरी वालों ने ज़ात से निकाल दिया। हुक्का पानी बंद कर दिया। यह है वर्ण-व्यवस्था का विकराल कृत्य—जिसने भारत को गारत कर दिया है। वास्तव में वर्णव्यवस्था न होती तो आज मद्रास में आर्य धर्म की ध्वजा फहराती होती। कौन बुद्धिमान् है जो ऐसी घटनाओं के बाद भी वर्णव्यवस्था का विध्वंस करने के लिये कमर न कसेगा???
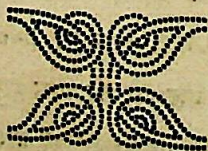
वर्णव्यवस्था की विष बेल

वर्णव्यवस्था एक संक्रामक रोग है। इस रोग की विष बेल ज़मीन से साढ़े तीन हाथ ऊपर 'मुंह के अन्दर जीभ के अग्रभाग पर विना जड़ के अमर बेल की तरह फैली हुई है। अमरबेल जिस प्रकार सारे पेड़ को सुखा देती है ठीक, उसी प्रकार यह वर्ण व्यवस्था की बेल सारे हिन्दू समाज को सुखाये देती है। जब कोई पूछता है। कि तुम कौन हो? तो इसका उत्तर जीभ से ही देना पड़ता है। यदि कह दिया जावे कि हम "आर्य" हैं या "हिन्दुस्तानी" तो वर्णव्वस्था की बेल तुरन्त मुरझाजाती है। एक तो वैसे ही विना जड़ की बेल है। फिर शाखा पर ही कुठाराघात हो जावे तब तो फ़क् से यह वर्णव्यवस्था की बेल सूख जाती है। परंतु किया क्या जावे जब देशके दौर्भाग्य ही आजावें किसी ने कहा है कि—

किस्मत की बद नसीबी को सैय्याद क्या करे।
सिर पर गिरे पहाड़ तो फ़र्याद क्या करे॥

जब हिन्दुओं ने क़सम ही खा रखी है कि हमें फिसलते फिसलते खड़ा ही नहीं होना तो कौन इनका उद्धार कर सकता है? इस देश ने कई बार ठोकरें खाईं, यदि बुद्धिमान् होता तो सम्भल जाता परंतु यहां तो सारे कूवे में भांग पड़ी है। हिन्दुओं की दशा तो ऊंट की तरह हो रही है। ऊंट से किसी

ने पूछा कि तेरी गर्दन टेड़ी क्यों है ? ऊंट ने जवाब दिया मेरा अङ्ग सीधा कौन है ? यही हालत हिन्दुओं की है। जिस पहलू पर देखिये पूरे ऊंट ही नज़र आयेंगे। बच्चे पैदा करना आता है लायक बनाना नहीं, धन कमाना आता है बुद्धि पूर्वक खर्च करना नहीं , विद्या पढ़ना आता है विद्या का उपयोग नहीं। इसी प्रकार ऊंच नीच का भेद भाव आता है, संगठन समता का सिद्धांत समझ में नहीं आता। देश की भलाई को यदि मद्दे नज़र रख कर चलते तो आज हमारे देश की यह दुर्दशा और दौर्भाग्य न होता ? परन्तु हिन्दू लोग अपने शुभचिन्तक को भी नहीं पहिचानते । शंकराचार्य को विष दिया एक ब्राह्मण ने,गुरुगोविन्द सिंह के लड़कों को पकड़वाया एक ब्राह्मण ने और स्वामी दयानन्द को कांच घोंलकर पिलाया एक ब्राह्मण ने—क्यों ! इसी लिये कि हिन्दू लोग अपने हित कोभी नहीं समझते और अपने हितैषी को भी नहीं पहिचानते।

आप अपने दोष से माहिर नहीं होता कोई ।
जिस तरह बू अपने मुंह की आती है कब नाक में ॥

दूसरे देश वाले मौके को खूब पहिचानते हैं और अपने देश को समृद्ध कर लेते हैं। देखिये—देहली का मुग़ल बादशाह फ़र्रुकसियर बीमार था। डाक्टर हैमिल्टनको इलाज के लिये बुलाया गया। जब उसको फ़ीस दी जाने लगी तो उसने नहीं ली। बहुत आग्रह करने पर उसने कहा कि यदि

आप मुझे कुछ देना ही चाहते हैं तो मेरे देश के भाइओं से आप चुंगी न लिया करें। देखिये डाक्टर हैमिल्टन ने कितनी बुद्धिमत्ता और दूरदर्शिता से काम लिया। आज उसके देश निवासी मालामल हो गये हैं। इधर हिन्दुओं की क्या हालत है। कोई रायबहादुरी मांग रहा है, कोई दीवानबहादुरी और किसी को अपनी जागीर और पेंशन से ही सरोकार है। भाइयो! यह तरीके उन्नति के नहीं हैं। देखिये—

नींव में हरगिज़ नहीं लगते अनार। नाशपाती में फलैं क्यों कर चिनार॥
आम गूलर में लगैं किस प्रकार। ऐसे वर्णों से ऊवें क्यों ना चमार॥

तभी तो आज चारों तरफ़ 'अछूतोद्धार' पर विचार हो रहा है। महात्मा गान्धी अपने जीवन का सवाल इसको बनाये हुए हैं-डा० अम्बेदकर तंग आकर धर्म परिवर्तन पर तुले हुये हैं तो भी महामना मालवीय जी वर्णव्यवस्था की बेहूदा बहंगी उठाये ही फिरते हैं। वास्तव में इन हिन्दुओं की तो बुद्धि ही क्षीण हो गई है। जड़ की पूजा करते करते बिलकुल जड़ हो गये हैं। कबरों पर सर पटकते पटकते बिलकुल पाषाण ही हो गये हैं। देखिये तो सही—

इष्ट देव इनके हुवे पशु पक्षी और पेर। मुर्दे पूजें जीवते यह देखो अन्धेर॥
नानक दुनिया बावरी मुर्दे पूजें ऊत। आप मुये जग छांड़ गये तिनसे मांगे पूत॥

कहिये ये लोग वर्णव्यवस्था नहीं मानेंगे तो क्या जापान, जावा और जर्मनी वाले मानेंगे ???

जापान की उन्नति का मूल

सम्प्रति जो दशा भारतवर्ष की है ठीक यही दशा सन् १८५० से पूर्व जापान की थी। भारत में जिस प्रकार वर्ण-व्यवस्था है। उसी प्रकार जापान में चार वर्ण माने जाते थे। जिन के नाम इस प्रकार हैं:—

(१) कोवेत्सु (२) शीनवेत्सु (३) बामवेत्सु और (४) समुराई इन में ऊंच नीच का भी खूब विचार था। परस्पर एक दूसरे को घृणा की दृष्टि से देखा करते थे। कोवेत्सु अपने को सूर्य से पैदा बतलाते थे। एवं शीनवेत्सु चन्द्रमा से। समुराई के अर्थ हैं समर करने वाले (क्षत्रिय)। ये लोग वे हैं जो भारतवर्ष से शंकराचार्य के प्रभाव से बौद्ध रूप में ही भाग गये थे और जापान में जा बसे थे। तब से जापान की सिविल और मिलिटरी में केवल समुराई वर्ण के लोग ही नौकरी किया किया करते थे। ये लोग अन्य वर्ण वालों को नहीं आने देते थे। इस के अतिरिक्त फौजों में लैफ्टिनेण्ट से लेकर कमाण्डर तक और डिप्टी कलेक्टर से लेकर गवर्नर तक समुराई वर्ण वाले होते थे। इन के अतिरिक्त जापान में अछूतों की तरह ईनिन, इत्ता और ह्यास्को भी थे। ये लोग भंगी और चमारों की तरह ग्राम और शहर से बाहर बसाये जाते थे। इन के

मुख्य रूप से चार पेशे थे। चमड़े का व्यापार, जल्लादी, कबरें खोदना और मैला साफ़ करना-ठीक उसी तरह इनमें भी वही भेद भाव था जो आज छूत अछूतों का भारतवर्ष में है। ये परस्पर ऊंच नीच का व्यवहार रखते थे और घृणा भी करते थे। इसी वर्ण-व्यवस्था के कारण चीनियों के हमले जापानियों पर प्रायः हुआ करते थे। फलतः सैकड़ों जापानी चीनियों के हाथों लूटे मारे और फूंके गये। सन् १८५२ में स्पेन के पादरी पहिले पहिल जापान में इस वर्ण व्यवस्था के ढंग को देख कर पहुँचे। उन्होंने जापान के अछूतों में अर्थात् ईनिन और इत्ता लोगों में ईसाई धर्म का प्रचार प्रारम्भ किया। बहुत से ईसाई हो भी गये—तब ठीक हिन्दुस्तान की तरह विदेशी मुसलमान ईसाई आकर अपना अपना उल्लू सीधा करते रहे। जगह २ आपसी विरोध हो कर बलवे होने लगे—पशु बध भी खूब होने लगा—यहां तक कि इन लोगों ने गाय मारने की भी सलाह दी। ईनिन और इत्ता लोगों के बुजुर्ग बौद्ध थे, इस लिये इन्होंने गाय मारने से तो स्पष्ट इनकार कर दिया। तब ईसाइयों ने मजबूर किया कि तुम लोग ईसाई हो गये हो कोई हर्ज़ नहीं है। बहुत समझाने के बाद इन लोगों ने गोवध प्रारम्भ किया। परिणाम यह हुआ कि गाय आदि पशुओं के बध के कारण जापान में हिन्दुस्तान की तरह आये दिन खूब बलवे और मारपीट होने लगी। ईसाई लोगों

की यह एक राजनैतिक चाल थी, जो हिन्दुस्तान में अभी जारी है। सावधान !!!

दूसरी बात यह हुई कि सन् १८५७ में हिन्दुस्तान में गदर हो गया और भारत तबाही की हालत में आ गया। इन दोनों का प्रभाव जापानियों पर विशेष रूप से पड़ा। जापानी लोग इन चालों को समझ गये। जगह जगह बड़ी बड़ी सभायें होने लगी। इन सभाओं में एक स्वर से जापान के वीर नेताओं ने आवाज़ उठाई कि जब तक इस व्यवस्था को मिटा कर तमाम कौमों को एक न कर दिया जायगा—तब तक जापान आगे न बढ़ेगा। सचमुच जापान का सौभाग्य सितारा चमक उठा। जापान २८६ राजाओं और सैकड़ों जातिओं में विभक्त था। पहिले पहिल मत्ता प्रांत के स्वदेश भक्त राजा ने अपना राज्य टोकियो के महाराजा मैकाडो को सौंप दिया और एक काठ का मकान बना कर साधारण प्रजा की तरह टोकिओ में रहने लगा। इसी भांति थोड़े ही समय में सब राजाओं ने अपना राजपाट, लाव लश्कर मैकाडो के सुपुर्द कर दिया। अब पहिले पहिल आज्ञा जो बुद्धिमान् जापान नरेश मैकाडो ने सन् १८६८ में निकाली वह यह थी कि अछूतों की बस्तियां तोड़ दी जावें और ईनिन इत्ता लोगो को ऊँचे माने जाने वाले लोगों के बीच में बसाया जावे एवं जो इनसे छूत छात करे, उसको

राज्य की ओर से कठोर दण्ड मिले। बस—इस आज्ञा के निकलते ही जापान में प्रचलित वर्णव्यवस्था टूट गई फलतः कोवेत्सु, शीनवेत्सु वामवेत्सु और समुराई, एवं ह्याक्को, ईनिन इत्ता यह कृत्रिम वर्ण-विभाग टूट गये और जापान एक 'जापानी क़ौम' का पवित्र देश बन गया। इसके बाद सन् १८६८ में ही जापान के दूरदर्शी नरेश मैकाडो ने तुरन्त राजाज्ञा द्वारा समस्त जापान में अनिवार्य शिक्षा प्रचलित कर दी।

अनिवार्य शिक्षा के कार्य में जापान के कुबेर फ़ूकूजावा और हीटो ने प्रचुर धन राशि उदारता और प्रसन्नता पूर्वक प्रदान की। आज तक जापानी लोग इन दोनों महानुभावों को आदर पूर्वक स्मरण करते हैं। इन दोनों ने जापान की उन्नति में अपने करोड़ों रुपये व्यय कर दिये। आज भारत निवासी वर्णव्यवस्था के बखेड़े में में खण्ड खण्ड हो रहे हैं। क्या भारतीय लोग अब भी उन्नति का मार्ग जापान की सच्ची कथा को पढ़कर समझेंगे??? जापानी लोगों ने अछूतोद्धार करके अपनी शक्ति को दुगुना कर लिया। यदि ईनिन और इत्ता लोगों को जापानी लोग अपने अन्दर न मिला लेते तो ईसाई लोग अपनी शक्ति बढ़ालेते परंतु बुद्धिमान् और दूरदर्शी जापानियों ने समय की गति विधि को समझा और खूब समझा। देखिये इन्हीं ईनिन

और इत्ता लोगों में से एक वहादुर ने जापान के चार चांद लगा दिये। सन् १६०० में जापान उन्नति करने लगा और सर्व प्रथम कैप्टन तनामा को दूत बनाकर मास्को (रूस) भेजा। तनामा वहुत ऊंचे क़द का आदमी था। साथ ही कुरूप भी था परंतु मिलनसार और बुद्धिमान् प्रथम कोटि का था वह मास्को में रूस के मिलिटरी अफ़सरों के साथ जुआ खेलने लगा और जान वूझ कर हार जाता था। उसी धन से रूसी अफ़सर अपनी स्त्रियों के लिये हीरे और मणिओं के हार खरीदा करते थे। रूस की स्त्रियां तनामा को वर्दी पहिने जव देखतीं थीं। तव उस पर मोहित हो जाती थीं। इस प्रकार वहुत स्त्रियों के साथ कैप्टन तनामा का पवित्र प्रेम हो गया। उन्हीं दिनों रूस की सरकार ने परम प्रसिद्ध पोर्ट आर्थर का क़िला वनवाया। उस क़िले में जापानी मज़दूर काम करते थे—जो पढ़े लिखे और समझदार थे। इन्होंने सलाह करके क़िले को कच्चा चिन दिया। दूसरी ओर सरकार ने पोर्ट आर्थर में लड़ाई लड़ने के लिये चक्रव्यूह का एक नक़शा गुप्त रूप से वनवाया और अपने दूत के पास जो जापान में रहता था भेज दिया। इस नक़शे की नकल कैप्टन तनामा ने बुद्धिमत्ता पूर्वक करवाली और अपनी सरकार के पास जापान में तुरन्त भेज दिया जव रूस के जापानी दूत को ज्ञात हुआ कि गुप्त नक़शे की नकल जापान में पहले ही पहुँच गई है तो उसने अपनी रूसी

सरकार को बड़ी डाँट बताई और पूछा कि यह नक़शा कैसे यहां पहुँचा ? तब दूसरा नक़शा तैयार किया गया वह भी बुद्धिमान् तनामा ने किसी प्रकार हाथ में कर लिया। परन्तु यह भी छिपा नहीं रहा कि दूसरे नकशे की नक़ल भी जापान में पहुँचगई। तब कैप्टन तनामा पर सबने संदेह किया। अतएव रूस के जर्नल पब्लोन्स्की आदि अफसरोंने गुप्त कमेटी की और खूब विचार परामर्श के बाद पलोन्सकाया नाम वाली एक नर्तकी को भेजा जो तनामा के चरित्र को भ्रष्ट करके सब भेद लेवे। पहिले तो वह नर्तकी न गई परन्तु खूब लोभलालच और धमकी देने केबाद वह कैप्टेन तनामा के बंगले पर गई और उस को अपने साथ विवाह करने के लिये मजबूर किया। परन्तु देश भक्त तनामा तयार न हुवा। तनामा को धन का भी लोभ दिया गया—परन्तु उसने देश की स्वाधीनता को अक्षुरण रखने के लिये सब को तृणवत् समझ कर त्याग दिया, क्योंकि वह नर्तकी सब रहस्यों को जानने के लिये भेजी गई थी। अन्ततोगत्वा तीसरा नक़शा तय्यार किया गया और बुद्धिमान् तनामा ने उसको भी प्राप्त कर लिया और तदनुसार जापान के अफ़सरों को लिख दिया कि डबल पलटनें एक महीना पूर्व तैनात कर दो हमारी जीत होगी। फौरन जापान की पलटनें रूसी पलटनों के आने के पूर्व ही भेज दी गई और इधर केप्टन तनामा को रूसिओं ने गिरफ्तार कर लिया और गोली से उड़ा देने

की आज्ञा रूस के राजा निकोलन ने निकाल दी। वीर कैप्टेन तनामा आज्ञा सुनते ही तुरन्त अपने कोट के बटन पकड़ कर छाती खोल खड़ा हो गया। निदान उस स्वदेश सेवक तनामा ने स्वामी श्रद्धानन्द की तरह छाती पर गोलियां खाकर स्वदेश के लिये स्वर्ग का मार्ग स्वीकार कर लिया। इस घटना से जापानी लोगों में गहरी देश भक्ति का पता पाया जाता है। ऐसी ऐसी घटनायें तो अनेक हैं परन्तु इस पुस्तक के लिये यह घटना प्रासंगिक है। अगर जापान में वर्णव्यवस्था का पाखण्ड प्रचलित रहता और जापान की अछूत मानी जाने वालो जाति ईनिन और इत्ता की सत्ता बनी रहती तो जापान आज खण्ड खण्ड होकर वर्ण व्यवस्था का घोर दण्ड भोगता होता। फिर कैप्टन तनामा जैसा अछूत कही जाने वाली इत्ता जाति का सरदार कैसे जापानिनों का प्राण प्यारा बन पाता ??? न जापान से वर्णव्यवस्था का प्रयाण होता और न जापानियों में से अछूतपन का प्लेग निकल पाता। जापानियों ने वीर तनामा को पाया। कब ? वर्ण व्यवस्था को विध्वंस करके। फलतः १८०५ में जो भयंकर प्रसिद्ध लड़ाई पोर्ट आर्थर पर हुई उसमें जापान विजयी रहा। इस विजय की प्राप्ति में ईनिन और इत्ता आदि अछूत कही जाने वाली क़ौमों ने ही विशेष वीरता दिखाई। आज जापान में उस विध्वंसकारी वर्ण-व्यवस्था का नामोनिशान नहीं है और

जापान एक महान् शक्तिशाली राष्ट्र है। सब प्रकार की उन्नति जापान में हो रही है। क्या भारत निवासी अपने पड़ोसी जापान निवासियों से शिक्षा लेंगे कि वर्ण व्यवस्था का विध्वंस करके भी कैसे दुनियां में उन्नति हो सकती है। जापान से वर्ण-व्यवस्था तो भाग गई—लेकिन Four Ms make the monarchey अर्थात् मिशनरी, मिलिटरी, मरचैन्ट, और मीनियल्स का वैदिक कर्म-विभाग (वर्ण-व्यवस्था), आज जापान में स्वतः प्रचलित हो गया है। इसी प्रकार यदि भारत-वर्ष प्रचलित वर्ण व्यवस्था का विध्वंस कर दे तो समय आने-आने पर स्वतः 'वैदिक वर्ण व्यवस्था' कायम हो जायगी। इसकी चिन्ता न करनी पड़ेगी। सावधान !!!

वेद में भी लिखा है—

क्षत्राय त्वं, श्रवसे त्वं, महीया इष्टये त्वं, अर्थमिव त्वं—इत्यै।

(ऋग्वेद १।११३।६)

अर्थात् यह चार प्रकार की प्रवृत्ति ही वैदिक वर्ण-व्यवस्था है। इस मन्त्र में शूद्र के लिये 'महीया' आया है। जिसका अर्थ पूज्य होता है।

टर्की की उन्नति का मूल

भारतवर्ष की तरह टर्की भी कुछ वर्ष पूर्व पूर्ण अवनति की दशा में था। टर्की में भी शेख, सैय्यद, मुग़ल और पठान यह चार विभाग थे—जो परस्पर एक दूसरे को नीच ऊँच समझ कर घोर घृणा करते थे। इसी प्रकार टर्की में रहने वाले निसारा, पारसी, यहूदी और ईसाइयों से भी टर्की के मुसलमान असन्तुष्ट रहा करते थे। फल स्वरूप ईसाई और मुसलमानों के बीच युद्ध छिड़ गया। हिन्दुस्तान की तरह लड़ाई के अवसर पर अन्य मज़हब वालों ने मुसलमानों का साथ न दिया। इसलिये टर्की का वहुत सा भाग त्रिपोली, स्मरना, वसरा और वग़दाद विदेशी बादशाहों के हाथ में चला गया। भारत की तरह टर्की को भी वहुत बड़ी हानि हुई। सौभाग्य से वीर बांकुरे 'मुस्तफ़ा कमालपाशा' के दिल में देश नाश का दुःख खटकने लगा। वीर पाशा ने टर्की के नौजवानों को साथ लेकर अर्ध रात्रि के समय ख़लीफ़ा सुलतान को गिरफ्तार करके जहाज़ में बैठा कर टर्की से बाहर निकाल दिया। ख़लीफ़ा के महल और माल असबाब पर पूरा अधिकार कर लिया और प्रजातन्त्र के सिद्धांत पर नई सरकार अंगोरा में स्थापित कर दी गई। टर्की में क्रांति का विग़ुल वजने लगा। औरतों का वुर्का उतार कर फेंक दिया

गया, अरबी में कुरान पढ़ना कानूनन बन्द कर दिया गया और आर्य्यसमाज की तरह रविवार के दिन हारमोनियम प्यानो आदि के साथ नमाज़ पढ़ी जाने लगी। दोसौ मसज़िदों को खोद कर फेंक दिया गया। अपनी भाषा में सब धार्मिककृत्य होने लगे। एक मनुष्य को एक स्त्री से अधिक रखने का अधिकार नहीं रहा और परस्पर ऊंचनीच एवं छूतछात के भावों को कानूनन जुर्म करार दिया। परिणाम स्वरूप टर्की में समानता, स्वतंत्रता और संयम के सिद्धान्त प्रचलित हो गये और आज टर्की एक समुन्नत एवं समृद्ध राष्ट्र गिना जाता है। अरब बदल गया। पर्शिया और मिश्र बढ़ गया। चीन और रूस सुधर गया— और काबुल ने भी करवट बदली थी—परन्तु काबुल के दकियानूसी मुल्लाओं ने काबुल की किश्ती को उलट दिया। प्रयोजन यह है कि संसारके सभी राष्ट्र उन्नति की घुड़ दौड़ में बाज़ी मार रहे हैं। परन्तु भारतके हिन्दू उसी डेढ़अरब वर्ष कीपुरानी वर्णव्यवस्था की दुम पकड़े हुये चिल्ल पों मचा रहे हैं। न इन को स्वराज्य मिलता है न समाज सुधार का सुन्दर सुयोग? कितना आश्चर्य हैकि मनुष्य मर कर अपना चोला बदल लेता है, वृक्षों की दशा बदल जाती हैं, सूर्य की स्थिति भी १२ घंटे में बदल जाती हैं और दो दो महीने में ऋतु भी बदल जाती है—लेकिन हिन्दुओं की पेटेण्ट वर्णव्यवस्था न जाने कौन से कानून द्वारा रजिस्टर्ड हुई है कि बुरी तरह हिन्दुओं की मुर्दा

लाश पर चिपटी है और हड्डी तक हिलाये देती है। हिन्दू लोग तो इससे तबाह हो गये। अब वर्णव्यवस्था की मुर्दा लाश में कोई तत्व बाकी नहीं रहा है। हिन्दू लोग कहते हैं कि वर्ण-व्यवस्था का विध्वंस हो गया तो धर्म का नाश हो जायगा। परन्तु इसके विपरीत हम देखते हैं कि सिक्ख, बौद्ध, जैन, मुसलमान, ईसाई और राधास्वामी वर्ण-व्यवस्था नहीं मानते। हिंदुओं की अपेक्षा इन सभी लोगों की दशा ठीक है। परंतु हिंदू लोग जो वर्णव्यवस्था के पूरे पृष्ठ-पोषक हैं अपने ही करतूतों के कारण गुलाम होगये हैं और आस्ट्रेलिया, कनाडा और अफ्रीका आदि में घुसने तक नहीं पाते। इसीलिये विदेशों में हिंदुओं का नाम 'कुलियों की कौम' पड़गया है। इन हिंदुओं से तो पशुपक्षी भी अधिक स्वतंत्र हैं, क्योंकि वे वर्णव्यवस्था के गुलाम नहीं। यह देखा गया है कि पालतू तोते या बंदर जब छूटकर अपने झुण्डों में पहुँचते हैं तो सब तोते मिलकर इस गुलामी की गलमाल पहिने हुवे तोते को मार डालते हैं एवं स्वतंत्र बंदरों में पालतू बंदर नहीं घुसने पाता। इसलिये पराधीनता के पाश से मुक्त होने के लिये भारतीयों को सर्व प्रथम जापान और टर्की आदि देशों की तरह अवश्य ही वर्णव्यवस्था का विध्वंस करना होगा। यहां तो सारे उपद्रव इसी जात पांत के कारण होते हैं। वर्णव्यवस्था के कारण ही चमारों पासियों और कोरिओं

से बेगार ली जाती है। यह बेगार की घृणित प्रथा भी जातपांत के कारण ही बद्धमूल है। जब वही चमार मुसलमान या ईसाई हो जाता है तब बिना किसी श्रम के बेगार से मुक्त हो जाते हैं; क्योंकि वर्णव्यवस्था के पचड़े से चमार निकल गया—मानो सुखी होगया। इस वर्णव्यवस्था के ही कारण विदेशी यहां राज करते हैं और हिंदू मुसलमान दोनों पराधीन हैं। यही फूट की जड़ है। तभी हम कहते हैं कि—

यत्र स्थिता जन्म मूला व्यवस्था,
तत्रास्ति राज्यं परदेशजाम्।
व्यापार भाषा धनुषा विहीना,
भयाच्च युक्ता पशवश्चरन्ति ॥

(देवीदत्त)

भारत की अवनति का मूल

एक हम हैं कि लिया अपनी भी सूरत को बिगाड़।

एक वह हैं जिन्हें तसवीर बना आती है ॥

वर्ण व्यवस्था का महारोग भारत की एक खास सौगात है। वैसे तो कर्म-विभाग की दृष्टि से संसार के सभी कोनों में मनुष्य बंटे हुये हैं—परन्तु भारत की वर्णव्यवस्था की तरह कहीं यह महामारी नहीं पाई जाती है। संसार के उन्नतिशील देशों में—जैसे इंगलैण्ड, फ्रांस, जर्मनी, इटली, जापान, चीन और अमेरिका आदि महादेशों में इस संगठन विघातिनी वर्ण-व्यवस्था का कोई पता नहीं है। वे लोग अपने अपने देशों के पवित्र नामों के साथ गौरव पूर्वक पुकारे जाते हैं। जैसे जापानी, चीनी, जर्मन, इटालियन, अमेरिकन आदि। भारत की भांति वर्ण व्यवस्था के बखेड़े में वे लोग नहीं पड़े हुये हैं। कई लोग यह कहा करते हैं कि योरप आदि देशों में भी ग़रीब, अमीर, विद्वान् और अशिक्षितों के भेद मौजूद हैं और अलग अलग श्रेणियां बनी हुई हैं जो प्रायः लड़ती रहती हैं। किन्तु वे भूल जाते हैं कि योरप आदि में वहां का कोई अमीर से अमीर या विद्वान् से विद्वान् मनुष्य-किसी भी गरीब या अशिक्षित के हाथ से भोजन करने में परहेज़ नहीं करता, न उसको छूकर अपने को अपवित्र मानता है। इसी प्रकार गरीब

से गरीब मनुष्य के साथ एक अमीर अपनी कन्या का विवाह करने या अपने पुत्र के साथ उसकी कन्या का विवाह करने में संकोच नहीं करता। वास्तव में छुआछूत और रोटीबेटी का परहेज़ ही भारत में प्रचलित वर्ण व्यवस्था का मुख्य स्वरूप है। संसार के अन्य किसी सभ्य देश में इसका नामोनिशान नहीं पाया जाता। योरप और अमरीका प्रभृति देशों में इस तरह की मिसालें मौजूद हैं कि जिन में जूता गांठने वालों और लकड़ी चीरने वालों के लड़के अपनी योग्यता के अनुसार प्राइम-मिनिष्टर (मुख्य-सचिव), राष्ट्रपति और बिशप (पुरोहित) तक हो गये और उनसे किसी प्रकार का भी किसी ने परहेज़ नहीं किया। परन्तु भारतवर्ष की दशा तो विचित्र है। यदि दो अपरिचित व्यक्ति यहां आपस में प्रथम मिलते और बातचीत करते हैं तो उनका सबसे पहिला सवाल होता है कि तुम कौन हो ? यदि वह बतादे कि मैं डाक्टर हूँ तो काम न चलेगा, यदि वह बतादे वकील हूँ तब भी काम न चलेगा, यदि वह बतादे कि दूकानदार हूँ तो भी मामला हल न होगा, यदि वह कहे कि मैं फौज में कैप्टेन हूँ तो भी समस्या त्रिशंकु की तरह अधबीच ही लटकती रहेगी। यद्यपि 'तुम कौन हो।' इस प्रश्न का उत्तर हो चुका—तो भी वह पूछेगा कि तुम्हारी जाति क्या है ? अब यदि आप कन्नौजिये हैं तो झट कह दीजिये-अन्यथा कलवार का जायसवाल, बढ़ई का

जाङ्गिड़ा ब्राह्मण और लोहार का विश्वकर्मा नाम बता कर अपना पिण्ड छुड़ा लीजिये। बेचारे धोबी सोलंकी बने हैं, भंगी वाल्मीकि बने हैं और कहार कश्यप बने हुये हैं। बेचारे अपने बुजुर्गों के देश में चोरों की तरह निवास करते हैं। हम ऐसे सैकड़ों पढ़े लिखे बाबुओं को जानते हैं जो अपनी असलियत को छिपाये हुये शर्मा वर्मा से काम चला रहे हैं। वे बेचारे करें भी क्या ? बदकिस्मती से यह देश इतना भ्रष्ट हो गया है कि इन तिलक छापधारी पुरोहितों के मारे कोई पूरी सांस लेकर जी भी तो नहीं सकता है ???

देखिये–इस वर्ण व्यवस्था का झगड़ा समाप्त भी तो नहीं होने पाता। कायस्थों को कोई वर्मा मानता है और शूद्र। गड़रियों को कोई पाल क्षत्रिय मानता है और कोई शूद्र। इसी प्रकार सुनारों को कोई वैश्य बताता है कोई क्षत्रिय। दर्जी (सूचीकार क्षत्रिय) सुई पकड़ने के कारण, भड़भूंजा (भुर्जी क्षत्रिय) कड़छुला धारण करने के कारण और घसियारा (वन्य क्षत्रिय) खुर्पी पकड़ने के कारण बनाये जा रहे हैं। जायसवाल (वैश्य) अहीर (यादव क्षत्रिय) और कलाल हैहय क्षत्रिय अभी तक अधबीच में हैं। यह सब क्यों ? इस का एक ही जवाब है कि भारत की वर्ण व्यवस्था के यह सब कुफल हैं। तभी तो स्वामी दयानन्द ने लिखा था कि प्रचलित वर्णव्यवस्था भारतीयों के लिये मरण व्यवस्था हो रही है। यही गुलामी

की भावना उत्पन्न कर रही है, इस से समानता का भाव लुप्त हो गया है और अपनी अपनी उच्चता का घमण्ड इतना अधिक बढ़ गया है कि जिस की कोई सीमा नहीं रही है। बहुधा भारत में इसी वर्ण-व्यवस्था की आड़ में उपद्रव खड़े होते रहते हैं। सम्प्रति भारत गुलामी की जंजीरोंमें जकड़ा हुआ है। सत्तर हज़ार बेचारी निरपराध गौवें नित्य प्रति ब्राह्म-मुहूर्त में मारी जाती हैं-तब भैंसों, बकरी, भेड़, मछली, मुर्गों और कबूतरों को कौन गिनावे ? आश्चर्य तो यह है कि अपने को ब्राह्मण कहलवाने वाले भी इन बेचारे मूक प्राणियों को अपने पेट में पालने से नहीं झिझकते। ऐसी दशा में 'वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः' की विडम्बना करना वर्णव्यवस्था के प्रति एक मज़ाक नहीं तो क्या है ? आज इस प्रचलित वर्ण व्यवस्था के कारण भारत के नर नारी गुलाम बने हैं। एक ब्राह्मण अपने को क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों से श्रेष्ठ बतलाता है एवं इन तीनों वर्णों को वह नीच दृष्टि से देखता है। इसी प्रकार क्षत्रिय, वैश्यों और शूद्रों को नीच समझता है और वैश्य शूद्रको दबाता है। अब रहे शूद्र इन्होंने अछूतोंको अपना गुलाम मान लिया है। शूद्रों को भी तसल्ली है कि हम से भी नीच ७ करोड़ अछूत हैं। अछूतों में भंगी नीच, परन्तु भंगी कहता है कि खटिक नीच, खटिक कहता है पासी नीच, पासी कहता है धानुक नीच, यह परम्परा कहीं समाप्त नहीं होती-फलतः

भारतवर्ष द्रुतगति से नीचे ही नीचे जल-प्रपात की तरह गिरता जा रहा है। भारतीयों में अन्दर ही अन्दर कलहाग्नि धधक रही है। न जाने कब वर्ण-व्यवस्था का ज्वालामुखी फूटेगा और छुआछूत का भूकम्प भारत भूमि में फटेगा। इतिहास बताता है कि सैकड़ों बरसों से यही अवस्था देश की होरही है। जब जब वर्णव्यवस्था का ज़ोर बढ़ा-शत्रुओं ने भारत को आकर खूब लूटा खसोटा। यह हमारा प्यारा पवित्र भारत देश सोने की चिड़िया कहलाता था; जिसमें इतना धन, धान्य उत्पन्न होता था कि स्वयं खा पी कर सारे संसार को खिला पिला दे। जिस की उन्नति हिमालय के शिखर से भी ऊंची मानी जाती थी। जिस देश में वीर शिरोमणि भीष्म पितामह जैसे बाल ब्रह्मचारी उत्पन्न हो कर अपने तेज से संसार को विस्मित कर चुके, मर्यादा पुरुषोत्तम राम जैसे राजा, स्थित-प्रज्ञ श्रीकृष्ण जैसे योगी; व्यास, वसिष्ठ, कपिल, कणाद जैसे उद्भट विद्वान्; भगवान् गौतम बुद्ध जैसे महातेजस्वी, त्यागी, तपस्वी महात्मा और स्वामी दयानन्द जैसे अखण्ड ब्रह्मचारी और आदर्श सुधारक उत्पन्न हुए। आज वही हमारा प्यारा भारत देश वर्ण व्यवस्था के बखेड़े में पड़ा हुआ मटियामेट हो रहा है। फिर प्राकृतिक दृष्टि से भी भारत बड़ा सौभाग्य शाली है। जिस पवित्र भारतवर्ष का क्षेत्रफल १८ लाख वर्ग-मील है, जिस की रक्षा में एक ओर हिमालय पहाड़ अपनी

बर्फ़ीली चट्टानों को चमका रहा है और दूसरी ओर हिन्द-महासागर अपनी उत्तुङ्ग तरङ्गों से भारत की पवित्र कोखों को प्रक्षालित कर रहा है। आज उसी भारतवर्ष को विदेशियों ने आ कर अपने बुद्धि बल से गुलाम बना लिया है। यदि आज यह वर्ण व्यवस्था न होती तो भारतीयों का संघ बल तो इतना महान् होता कि संसार की कोई शक्ति इस की ओर आंख उठा कर भी नहीं देख सकती, परन्तु शोक! महान् शोक !!! आज इस वर्ण व्यवस्था ने भारत को अन्धा, बहिरा, लूला, लंगड़ा, कोढ़ी और अपाहिज आदि बना दिया है। यदि हिम्मत कर के भारतीय लोग इस महा-मारी को मार कर भगा सकेंगे तब तो संगठित होकर ३२ करोड़ बने रहेंगे नहीं तो समय आ रहा है जब यह हिन्दुस्तान सचमुच इंगलिस्तान या अरबिस्तान बन जायेगा।

तभी हम कहा करते हैं :—

ज़ुल्म से भाई हमारे सैकड़ों, नित मुसल्मां और इसाई हो रहे।
ज़ुल्म होते हैं धरमके नाम पर, क़ौम के मिटने के ये आसार हैं॥

वर्ण व्यवस्था और स्वराज्य

कहूँ क्या हिन्दुओं के दिन दिला कैसे गुजरते हैं।
मिसाले नीम विस्मिल ये न जीते हैं न मरते हैं ॥
उठावे किस तरह कोई मरीज़े नातवानी को।
अगर बाज़ू पकड़ते हैं तो ये शाने उतरते हैं ॥

हिन्दुओं की दुर्दशा किसी से छिपी नहीं है। जितने भी कारण बरबादी के हो सकते हैं सभी हिन्दुओं में मौजूद हैं। उनमें सबसे मुख्य यही वर्ण व्यवस्था का झगड़ा है। यदि यह न होता तो कम से कम हिन्दू लोग संगठित तो हो जाते।

हमें भली प्रकार याद है- इसी कानपुर नगर में कांग्रेस के अधिवेशन में सभापति की हैसियत से पंजाब-केसरी लाला लाजपतराय ने ऊर्ध्वबाहु होकर घोषणा पूर्वक कहा था कि—

"अय हिन्दुओ! यदि आप लोग एक दर्जन भी सच्चे ब्राह्मण मुझे बता दो—तो मैं एक महीने के अन्दर भारत में 'स्वराज्य' की पताका फहरा दूँ।"

वास्तव में हममें झूठा अभिमान घर कर गया है। ब्राह्मणत्व का ढोंग करना हम लोग खूब सीख गये हैं। देखिये-जिस देश में असली घी नहीं मिल सकता, असली दूध नहीं मिल सकता, असली शहद और तेल नहीं मिल सकता, और तो और रहा पानी और हवा भी असली मिलना दुर्लभ है, उस देश में असली ब्राह्मण कहां रह गये हैं! न असली ब्राह्मण,

न असली क्षत्रिय और न असली वर्ण-व्यवस्था। न असली धर्म समाजी और न असली आर्य समाजी। सर्वत्र नकली और फसली का दौर दौरा है।

एक बात बड़े मज़े की—२४ करोड़ हिन्दुओं में ७ करोड़ अछूत हैं और ८ करोड़ शूद्र हैं। इन १५ करोड़ को तो वर्ण व्यवस्था की कोई ज़रूरत महसूस नहीं होती। अब रहे बाकी ६ करोड़ द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) बस-इनको 'वर्ण व्यवस्था' की चिन्ता दिन रात सताये रहती है और इनकी असली हालत क्या है सो भी सुन लीजिये —

इनकी काहे न हो बरबादी। जो नर हैं केवल उन्मादी ॥ध्रु वा॥

(१)

चन्दन चन्द्र रूप दिये भाल। गल में सोहे तुलसी माल।
लेकिन तकें पराया माल। भर रही भक्ति में जल्लादी ॥

(२)

गणिका मित्र चरित्र विहीन, निशि दिन कर्म मलीन मलीन।
बाहर हरिहर में तल्लीन। अन्दर पापी परम प्रमादी ॥

(३)

बने ब्राह्मण क्षत्रिय शर्मा वर्मा, बेच रहे टिकिया गर्मा गर्मा।
देखो! बैठे शंकर शर्मा, जड़ते देख नाल घोड़ेके मेढक जात बंठादी ॥

यह तो है दुर्दशा भारत की तिस पर "वर्णाश्रम स्वराज्य संघ" भी अपना सिर उठाये है। भला सोचिये-स्वराज्य का

और वर्ण व्यवस्था का क्या सम्बन्ध ? स्वराज्य के लिये चाहिये एकता और वर्ण व्यवस्था से पैदा होती है विषमता—यह आग पानी का कैसा खेल ? और फिर यह खेल खेलें बड़े २ स्वराज्यवादी। ये वर्णाश्रम स्वराज्य संघ वाले देश को पीछे की तरफ़ घसीट रहे हैं। जब ये लोग अछूतोद्धार के विरुद्ध हैं, उन बेचारों को मन्दिरों में घुसने तक नहीं देते और प्रतिक्षण वर्ण व्यवस्था की चकाचौंध में इनको अन्धा बनायें देते हैं—तब इनको तो 'स्वराज्य' इस शब्दोच्चारण का भी हक़ नहीं है। देखिये—वर्ण व्यवस्था का ढोंग रचना और स्वराज्य की आशा रखना—ठीक उसी प्रकार है जैसे मेंढकों का संगठन और चक्रवर्ती साम्राज्य। हिंदुओं की दशा तो मेंढकों की तरह हो रही है। एक को समेटते हैं तो दूसरा कूद कर बाहर हो जाता है। फलतः एक एक हिंदू छिन्न भिन्न हो रहा है। अमेरिका के प्रसिद्ध विद्वान् डाक्टर ब्लूम फील्ड ने अपनी पुस्तक Religion of Veda में लिखा है कि—

At present time there are nearly 2000 Casts of Brahmans alone; The kshatriyas asplit up into 950 casts, The Vaishyas even into more. There is Hindustani proverb eight Brahmans and nine kitchens.

"अन्त में वह बड़े ज़ोरदार शब्दों में लिखता है कि प्रचलित

वर्ण व्यवस्था (जात पाँत) ने हिंदुस्तान की राष्ट्रीयता को मिट्टी में मिला दिया है। देखिये—

This has Checked the development of India into a nation. They have made possible the spectacle of a Country of nearly three hundred millions of inhabitants governed by the skill of sixty thousand civilian foreigners. (शोक!)

एक तो वैसे ही हिंदुओं, मुसलमानों, सिक्खों के झगड़े हिन्दुस्तान को तबाह किये देते हैं—फिर हिन्दुओं की वर्ण-व्यवस्था तो गजब ढाये देती है। इनका तो अटल सिद्धान्त यह है कि चाहे स्वराज्य मिले या न मिले—हमें तो वर्ण-व्यवस्था चाहिये। उधर जापानियोंकी स्वदेश भक्ति उच्चशिखर पर पहुँची हुई है। एक बार एक अमेरिकन प्रोफ़ेसर जापान के एक स्कूल में पहुँचा। उसने जापानी लड़कों से पूछा कि तुम्हारा धर्मगुरु कौन है? जापानी लड़कों ने जवाब दिया—गौतम बुद्ध। उसने पूछा कि तुम्हारा अभीष्ट देव कौन है? जापानी लड़के बोले—'कनफ्यूशस'। उसने कहा अच्छा! यदि जापान पर अमेरिका की फौज धावा बोल दे—और अमेरिकन फौज के सेनापति गौतम बुद्ध हों तो तुम क्या करोगे? यह सुनते ही सब स्वदेश भक्त जापानी लड़के बोल उठे हम गौतम बुद्ध का सिर गर्दन से उतार देंगे। अमेरिकन प्रोफ़ेसर हैरान हो गया। उसने मन ही मन जापानी छात्रों के स्वाधीन्य स्नेह

की सराहना की। इसी प्रकार जब जापानियों का रूस के साथ घोर युद्ध हो रहा था—बारूदखाने के अफ़सर ने खबर दी कि बन्दूक की गोलियों पर पीतल की कील लगाने के लिये पीतल नहीं रहा है। उस समय बुद्धिमान् जापानी जनता ने एक स्वर से कहा कि गौतम बुद्ध की पीतल की मूर्तियां जो घर घर में रखी हुई हैं—पिघला कर बन्दूकों में पीतल की कीलें लगा दी जावें। जापानी लोग समझते थे कि यदि हमारी स्वाधीनता अक्षुण्ण रही तो हम फिर गौतम बुद्ध की हज़ारो मूर्तियां बना लेंगे, और यदि हम पराधीन होगये तो इन पीतल के गौतम बुद्ध को रख कर क्या करेंगे ? हमारी स्वाधीनता में जो बाधक होगा वह हमारा धर्मगुरु नहीं रह सकता। हमारे धर्मगुरु हमारे प्यारे देश के लिये हैं न कि हमारा देश धर्मगुरु के लिये। काश! यही सच्ची भावना हिन्दुओं की बन जावे- तो आज भारत में स्वराज्य हो जावे। हज़ारों देवी देवताओं के मन्दिर बने हैं; सैकड़ों तीर्थस्थान बने हैं और अनेकों धर्माचार्य महन्त बने हैं। यदि ये सब भारत की स्वाधीनता में साधक नहीं हैं तो इनको तुरन्त पञ्चम अन्यथासिद्ध की तरह पकड़ कर अरब सागर में डुबा देना चाहिये। तभी हम दावे के साथ कह सकेंगे कि—

आयेंगे बौर रसालन में, फिर कोकिल बाग में बिहरेंगे।
एक दिना नहिं एक दिना—वे भारत के दिन फेर फिरेंगे ॥

बोलो ! भारत माता की जय !! वन्दे मातरम् !!!

वर्णसंकर और द्विजों का षड्यन्त्र

एक बड़े मार्के की बात मनुस्मृति में दर्ज है। ब्राह्मण यदि शूद्र की भी कन्या से विवाह कर ले तो हर्ज नहीं, लेकिन यदि क्षत्रिय ब्राह्मण की कन्या से विवाह कर ले तो 'वर्णसंकर' हो जायगा! इसी प्रणाली से हजारों ही उपजातियां हो गईं। कोई तो पेशे के कारण नीच समझी जाने लगी और कोई वर्ण संकरता से बचने के लिये पृथक्, नाम से पुकारी जाने लगी। जैसे कायस्थ खत्री अरोड़े इत्यादि। मनुस्मृति का अनुलोम और प्रतिलोम विवाह भी तो 'द्विजों का षड्यन्त्र' है। शूद्रों के कुचलने के लिये ब्राह्मणों ने क्षत्रिय और वैश्यों को साथ लेकर मनुस्मृति में मनमाने कानून बना डाले। अस्तु—अब हम नमूने के लिये मनुस्मृति के कुछ श्लोक लिख कर उन का भावार्थ किये देते हैं।

शूद्रायां ब्राह्मणात् जातः श्रेयसा चेत् प्रजायते।
अश्रेयान् श्रेयसीं जातिं गच्छत्यासप्तमात् युगात् ॥१०।६४॥

यदि शूद्रा में ब्राह्मण से सन्तान हो तो वह उच्च जाति की बनजाती है।

अनार्यायां समुत्पन्नो ब्राह्मणात्तु यदृच्छया।
ब्राह्मण्यां अप्यनार्यात्तु श्रेयस्त्वं क्वेतिचेत् भवेत् ॥१०।६६॥

यदि ब्राह्मण का मन शूद्रा पर चल जाय तो भी सन्तान उच्च होगी।

जातो नार्यां अनार्यायां आर्याद् आर्यो भवेद् गुणैः।
जातोऽप्यनार्याद् आर्यायां अनार्य इति निश्चयः ॥१०।६॥

शूद्र स्त्री में द्विजों से सन्तान हो तो वे आर्य हैं। परन्तु शूद्र यदि द्विज स्त्री से सन्तान पैदा करे तो वह अनार्य ही रहेगी। देखिये शूद्रों को आर्यों की पंक्ति से कैसे बाहर कर दिया है? तब न जाने शूद्र लोग 'आर्यसमाज' में क्यों घुसते हैं और फिर आर्यसमाज में जब चारों वर्ण ही नहीं रहे तो वर्णव्यवस्था की दुर्गति होनी तो स्वाभाविक ही थी।

विप्रसेवैव शूद्रस्य विशिष्टं कर्म कीर्त्यते।
यदतोऽन्यद् हि कुरुते तद् भवत्यस्य निष्फलम् ।१०।१२३॥

ब्राह्मण की सेवा ही शूद्र का खास काम है। बाकी क्षत्रिय, वैश्य की सेवा से तो कोई फल नहीं मिलता। यहां शेष द्विजों को भी धता बतादी। न देंगे वेतन न देंगे इनाम, करा लेंगे अपना सारा ही काम। इसीलिये लिखा है कि—

शूद्रस्तु वृत्तिमाकांक्षन् क्षत्रमाराधयेद् यदि।
धनिनं वाप्युपाराध्य वैश्यं शूद्रो जिजीविषेद् ।१०।१२१॥

यदि कुछ वेतन लेने की इच्छा हो तो क्षत्रिय या वैश्य की सेवा करके जीवन बिताले।

स्वर्गार्थं उभयार्थं वा विप्रान् आराधयेत्तु सः।
जात ब्राह्मण शब्दस्य सा ह्यस्य कृतकृत्यता ॥१०।१२२॥

यदि स्वर्ग जाने की इच्छा हो तब तो विना कुछ लिये ही ब्राह्मण की सेवा करे। यदि 'ब्राह्मण के बन गये' तो समझ: जीवन ही सफल समझो।

उच्छिष्ट मन्नं दातव्यं जीर्णानि वसनानि च।
पुलाकाश्चैव धान्यानां जीर्णाश्चैव परिच्छदाः ।१०।१२५॥

शूद्र को झूठा अन्न, फटे कपड़े और बिछौने देना चाहिये; क्योंकि शूद्र को कोई पाप नहीं होता है। देखिये–अगला श्लोक तय्यार है।

न शूद्रे पातकं किंचित् न सः संस्कारमर्हति।
नास्याधिकारो धर्मेऽस्ति—न धर्मात् प्रतिषेधनम् ॥१०।१२६॥

शूद्र के लिये कोई संस्कार नहीं है और उनको धर्म में कोई अधिकार नहीं है। हां! स्वधर्म अर्थात् सेवा करने का सर्वाधिकार प्राप्त है। क्या खूब !!!

एक जातिः द्विजातींस्तु वाचा दारुणयाक्षिपन्।
जिह्वाया प्राप्नुयात् छेदं जघन्य प्रभवो हि सः ।।८।२७०॥

यदि शूद्र द्विजों को गाली देवे तो उसकी जीभ काट ली जाय, क्योंकि वह पैदायशी नीच है।

नामजातिग्रहं त्वेषां अभिद्रोहेण कुर्वतः।
निक्षेप्यो ऽयोमयः शंकुः ज्वलन्नास्ये दशांगुलः ।८।२७१॥

यदि द्विजों का नाम लेकर शूद्र यह कह बैठे कि 'ब्राह्मण' बना है तो उसके मुख में दस अंगुल को लोहे की शलाका जलती जलती घुसेड़ देवे।

धर्मोपदेशं दर्पेण विप्राणा मस्य कुर्वतः।
तप्त मासेचयेत्व तैलं वक्त्रे श्रोत्रे च पार्थिवः।८।२७२॥

यदि शूद्र ब्राह्मण को कोई धर्म की बात कहदे तो उसके मुख और कान में राजा खौलता हुवा गरम तेल डलवादे। परमात्मा बचावे ! हिन्दुओं के रामराज्य और स्वराज्य से। नहीं तो ये लोग अपनी मनुस्मृति के आधार पर सब कुछ करेंगे। इन्होंने क्या नहीं किया ? सबसे बढ़िया कहे जाने वाले रामराज्य में शम्बूक नामक शूद्र का सिर सिर्फ इसलिये स्वयं आदर्श राजा रामने काट दिया कि वह तप करता था, मुनि बनता था, देखिये—तब भी वे लोग वेद नहीं मानते थे। मनुस्मृति मानते थे। वेद में तो शूद्र के लिये लिखा है—तपसे शूद्रम्, अर्थात् शूद्र को तपस्या करने का पूर्ण अधिकार है। यह है मनुस्मृति का अन्याय !!!

श्रुतं देशं च जातिं च कर्म शारीर मेव च।
वितथेन ब्रुवन् दर्पाव दाप्यः स्याद्व द्विशतं दमम्।८।२७३॥

यदि कोई अपनी जात छिपावे (जैसा कि आजकल छोटी जाति वालों को मजबूरी करना पड़ता है) तो उससे दो सौ पण जुर्माना लिया जावे।

येन केन चिव्र अंगेन हिंस्याव श्रेष्ठमन्त्यजः।
छेत्तव्यं तत्तदेवास्य तन्मनो रनुशासनम्॥ ८।२७९॥

अन्त्यज (शूद्र और अछूत) जिस किसी अंग से द्विजों

को मारे उसका वही अंग काट लिया जावे।

सहासनमभि प्रेप्सुः उत्कृष्टस्यावकृष्टजः।

कट्या कृताङ्को निर्वास्यः स्फिचं वास्यावकर्त्तयेत् ।८।२८१ ॥

यदि अछूत द्विज के बराबर दरी आदि पर बैठ जावे तो उसके चूतड़ पर गरम लोहे से दाग दे अथवा थोड़े चूतड़ ही कटवा दे।

अब्राह्मणः संग्रहणे प्राणान्तं दण्डमर्हति ।

चतुर्णामपि वर्णानां दारा रक्ष्यतमा सदा ।८।३५९॥

यदि शूद्र किसी की स्त्री को भगाले तो उसको फांसी का दंड दिया जावे; क्योंकि चारों वर्णों की स्त्रियों की रक्षा कोशिश के साथ करनी चाहिये परन्तु ब्राह्मण यदि किसी की स्त्री को भगाले तो जुर्माना तक न करे। देखिये एक श्लोक में लिखा है–'कन्यां भजन्तीं उत्कृष्टां न किंचिदपि दापयेत्'।८।३६५।

ऊर्ध्वं नाभे र्मेध्यतरः पुरुषः परिकीर्तितः ।

तस्मात् मेध्यतमं त्वस्य मुखमुक्तं स्वयम्भुवा । १।९२॥

नाभि से ऊपर शरीर पवित्र है, उसमें भी मुख अत्यन्त पवित्र है। इसलिये पांव (शूद्र) तो अपवित्र ही रहेंगे।

उत्तमांगोद्भवात् ज्यैष्ठ्यात् ब्रह्मणश्चैव धारणात् ।

सर्वस्यैवास्य सर्गस्य धर्मतो ब्राह्मणः प्रभुः । १।९३॥

मुख से पैदा होने के कारण ब्राह्मण सबसे बड़े हैं और सृष्टि के मालिक हैं।

यस्यास्येन सदाश्नन्ति हव्यानि त्रिदिवौकसः ।

कव्यानि चैव पितरः किं भूतमधिकं ततः ।१।९५॥

देवता लोग ब्राह्मणों के मुख द्वारा ही भोजन करते हैं इस लिये संसार में ब्राह्मण से बढ़ कर कोई प्राणी नहीं है ।

सर्वस्वं ब्राह्मणस्येदं यत्र किंचित् जगती गतम् ।

श्रैष्ठ्येनाभिजने नेदं सर्वं वै ब्राह्मणोर्हति।१।१००॥

संसार में जो कुछ है सब ब्राह्मण का है, क्योंकि जन्म से ही वह सबसे श्रेष्ठ है ।

स्वमेव ब्राह्मणो भुंक्ते स्वं वस्ते स्वं ददाति च ।

आनृशंस्यात् ब्राह्मणस्य भुंजते हीतरे जनाः।१।१०१॥

ब्राह्मण जो कुछ भी खाता है, पहिनता और देता है सब अपना ही है । संसार के सब लोग ब्राह्मण की कृपा से ही खाते पीते और लेते देते हैं ।

विदुषा ब्राह्मणेनेदं अध्येतव्यं प्रयत्नतः ।

शिष्येभ्यश्च प्रवक्तव्यं सम्यङ् नान्येन केनचित् ।१।१०३॥

विद्वान् ब्राह्मण को चाहिये कि इस मनुस्मृति शास्त्र को खूब प्रयत्न से पढ़े और ब्राह्मण को ही पढ़ावे । दूसरे कदापि न पढ़ने पावें; क्योंकि श्रद्धेय स्वामी श्रद्धानन्द की कृपा से जैसे हम अब पढ़ गये हैं सो सब पोल खोल कर धरे देते हैं ।

अधीयीरन् त्रयो वर्णाः स्वकर्मस्था द्विजातयः ।

प्रब्रूयाद् ब्राह्मणस्त्वेषां नेतराविति निश्चयः ।१०।१॥

द्विजाति लोग विद्यापढ़ें। परन्तु पढ़ाने का काम ब्राह्मण ही करें। शूद्र पढ़ने न पावें। कैसा षड्यन्त्र है ?

एतान् द्विजातयो देशान् संश्रयेरन् प्रयत्नतः।
शूद्रस्तु यस्मिन् कस्मिन् वा निवसेत् वृत्तिकर्शितः।२।२४॥

इन ब्रह्मर्षि, ब्रह्मावर्त, आर्यावर्त्त आदि देशों पर द्विजाति लोग कोशिश करके अपना कब्जा करलें और शूद्र तो मुसीबत का मारा किसी कोने में पड़ा रहे। यह श्लोक गुरुकुल-कांगड़ी से प्रकाशित और स्वामी श्रद्धानन्द जी द्वारा संशोधित मनुस्मृति में भी पाया जाता है। कोई करे भी क्या, दो एक श्लोक हों तो निकाल दे। यहां तो सारी मनुस्मृति में ही जन्म का जादू ज़ोर मार है। इसलिये मनुस्मृति को तो जल मग्न ही कर देना पड़ेगा।

ब्राह्मणो बैल्व पालाशौ क्षत्रियो वाट खादिरौ।
पैप्पलो दुम्बरौ वैश्यो दण्डान् अर्हन्ति धर्मतः।२।४५॥

द्विजाति लोग दण्ड धारण करें। शूद्र के लिये कोई आज्ञा नहीं। यह संस्कार विधि में भी है।

अब्राह्मणादध्ययनं आपत्काले विधीयते।
नाब्राह्मणे गुरौ शिष्यो वासमात्यन्तिकं वसेत्॥२।२४२॥

क्षत्रिय आदि यदि पढ़ाने की योग्यता भी रखते हों तो भी, इनको पढ़ाने का काम न दे। इसके अनुसार आजकल स्कूलों में जितने गुप्ता मास्टर या हेडमास्टर हैं, सब के सब बायकाट के योग्य हैं।

यह है संक्षेप से द्विजों का षड़यन्त्र ? वास्तव में वाममार्गियों ने मनुस्मृति में प्रक्षेप अवश्य किया है—सो मांसादि का विषय है। इस वर्णव्यवस्था के मामले में तो मनुस्मृति का स्वमत यहीहै। यह प्रक्षेप में नहींहै। अब हम यहां यह भी वता देना चाहते—हैं यदि आप मनुस्मृति के सुन्दर श्लोकों का संग्रह पढ़ना चाहते है तो १) में पं० चन्द्रमणि विद्यालंकार 'कृत आर्ष-मनुस्मृति' भास्करप्रेस, देहरादून से मंगा लीजिये। सुयोग्य पण्डित जी ने पाखण्ड से परिपूर्ण ६वां तथा ११ वां अध्याय बिलकुल उड़ा दिया है। यह अति उत्तम किया है, और अपने बच्चों के हाथ में हमारी बनाई 'आर्यकुमार-स्मृति' अवश्य दीजिये। जिसमें अर्थ सहित मनुस्मृति के जीवनोपयोगी १०० श्लोक संगृहीत है। मूल्य भी सिर्फ़ चार आना है। अधिक क्या लिखें ? आर्य समाजो लोग यदि मनुस्मृति का मोह छोड़ कर वेदों पर ही अपने धर्म को स्थिर कर सकें-तभी आर्यसमाज सार्वभौम-धर्म का प्रचारक बन सकेगा। क्या वेदों में कुछ कमी है जो मनुस्मृति के पीछे पड़े हैं ? देखिये-आर्यसमाज यदि वर्ण व्यवस्था का ढोंग न छोड़ेगा तो मर जायगा और अकाल में मर जायगा। ये लोग तो—

सोये हैं शर्त बांध के मुर्दों से ख़्वाब में।
करवट नहीं बदलते हैं इस इज़्तराब में।

—:o:—

मनुस्मृति की मोह माया

Every word of the printed works passing muster as 'Shastras' is not in my opinion, a revelation. (महात्मा गांधी)

प्रचलित वर्ण—व्यवस्था का मूलाधार मनुस्मृति है। मनुस्मृति की रचना बहुत अर्वाचीन है, यह सभी ऐतिहासिकों का मत है। मनुस्मृति मनु की बनाई हुई है- ऐसा मानना भी एक बड़ी भारी भूल है। मनु के नाम से किसी दूसरे ने ही इस भयंकर पुस्तक की रचना कर दी है। तभी आज कल सभी मनुस्मृतियों में यह श्लोक पाया जाता है—

'इत्येतत्र मानवं शास्त्रं भृगुप्रोक्तं सनातनम्'

अर्थात् यह भृगुऋषि की कही हुई है। भारत में तो यह प्रवृत्ति चिरकाल से चली आई है कि जिस किसी भी पुरुष या पदार्थ का नाम प्रसिद्ध हो गया- सब लोग उसी की पूँछ में अपना पल्ला बांध देते हैं। जैसे—रामायण प्रसिद्ध हुई तो तुलसी रामायण, अध्यात्म-रामामण बन गई। गीता प्रसिद्ध हुई तो पाण्डवगीता, गांधीगीता बन गई। और तो और—पालक्षत्रियों के सिरमौर कविकुल गुरु कालिदास हुवे तो उनके नाम से ही अनेक काव्य बन गये। आजकल अछूतों की पूछ ज़्यादा होने लगी ती कहार भी अछूत, मल्लाह भी अछूत और

नाई भी अछूत बनने लगे। हरिजन नाम प्रसिद्ध हुआ तो सभी हरिजन बनने लगे। जैसे नागपुर के संतरे मशहूर हुवे तो सर्वत्र नागपुरी संतरे बिकने लगे। उसी प्रकार लखनऊ की रेवड़ी, हापुड़ के पापड़, कानपुर के जूते और बनारस का लंगड़ा (आम) कृत्रिम रूप से बिकता है। आगरे का पेठा और मथुरा का पेड़ा भी नकली बिकता है। इसी प्रकार 'मनु' एक बड़े प्रसिद्ध मुनि हो चुके थे। स्वार्थी लोगों ने उनके नाम पर ही 'मनुस्मृति का षड्यंत्र' रच दिया। आश्चर्य तो यह है कि स्वामी दयानन्द जी भी मनुस्मृति के षड्यन्त्र बच न सके। स्वामी जी तो यहां तक लिख गये कि मनुस्मृति सृष्टि की आदि में बनी है। देखिये— सत्यार्थ प्रकाश ११ समु० के प्रथम पृष्ठ पर लिखा कि—

"यह मनुस्मृति जो सृष्टि की आदि में हुई है"

शायद इसीलिये स्वामी जी कृत ग्रन्थों में आधे से अधिक प्रमाण मनुस्मृति के हैं। वैसे तो स्वामी जी परम वेदज्ञ और वेद भक्त थे—परन्तु सत्यार्थ प्रकाश आदि बनाते समय मनुस्मृति को ही मुख्य मान बैठे। सत्यार्थ—प्रकाश की रचना भी मनुस्मृति की क्रम शैली पर है। जिस क्रम से मनुस्मृति में ब्रह्मचर्य गृहस्थ आदि आश्रमों राजधर्मों और वेद आदि विषयों का प्रतिपादन है—ठीक उसी क्रम से सत्यार्थ-प्रकाश के समुल्लास सम्पादित हुये हैं। देखिये! शूद्रों को पूर्ण

रूप से पददलित करने वाले मनुस्मृति के १० वें अध्याय का निचोड़ सत्यार्थ प्रकाश के १० समुल्लास में विद्यमान है। स्वामी दयानन्द जैसे आदर्श सुधारक लिखते हैं कि—

शूद्र लोग — आर्यों के घर में जब रसोई बनावें तब मुख बांध के बनावें क्योंकि उनके मुख से उच्छिष्ट और निकला हुवा श्वास भी अन्न में न पड़े।

कहिये, कैसा मिलान मिला है। भला हो आर्यसमाजिओं का–जो आज तक किसी ने भी इस पाखण्डपूर्ण पाबन्दी का पालन नहीं किया। हम तो इस क्रांति के लिये आर्य समाजियों को दिल खोल कर साधुवाद (शाबास) देते हैं–जो स्वामी दयानन्द के इस भ्रमोत्पादक लेख को हवा में उड़ा दिया। यही तो बुद्धिमानी है कि चाहे कितना महान् महर्षि भी यदि बुद्धि के विपरीत और सभ्यता के विरुद्ध बात कहे या लिखे तो उस को हर्गिज, हर्गिज—नहीं मानना। यदि आर्यसमाज इसीप्रकार चल निकले तो शीघ्र ही मनुस्मृति के आधार पर प्रतिपादित नियोग, वर्णव्यवस्था और संस्कार विधि के प्रपंचो से शीघ्र छुटकारा पा जावे। मनुस्मति के १०वें अध्याय में कितना भारी षड्यन्त्र—है उसका नमूना इस एक श्लोक में और पढ़ लीजिये।

यो लोभाद अधमो जात्या जीवेत् उत्कृष्ट कर्मभिः।
तं राजा निर्धनं कृत्वा क्षिप्रमेव विवासयेत् १०।९६॥

अर्थात् जो शूद्र, अछूत या शिल्पी जोविका के लोभ से अच्छे कर्मों द्वारा अपने जीवन को बिताने लगे तो राजा इन सबका धन छीन ले और तुरन्त देश से निकाल देवें। कैसा रौलेट एक्ट वनाया है ???

आर्य समाजी लोग तो कह देंगे कि यह प्रक्षिप्त है। अब प्रक्षिप्त के मामले में भी दो वातें विचारणीय हैं। पहिली तो यह कि आर्यसमाजियों की सुनता कौन है ? शक्ति ही कितनी इनकी है ?? फिर इनका प्रभाव भी तो पोपपने से नष्ट होचुका है !!! हिन्दू लोग तो मनुस्मृति के एक श्लोक को भी प्रक्षिप्त नहीं मानते। आज सारे देश में सारी मनुस्मृति के अविकल अनुवाद विक रहेहैं। कौन इनको बन्दकरा सकताहै ? सवही प्रामाणिक हैं। कुल्लूक भट्टकृत अनुवाद को तो हमारी सरकार भी प्रमाण मानती है। सरकारी कानूनों में आर्यसमाजियों को कोई नहीं पूछता। आज तक गुण कर्मानुसार विवाह करने वालों को कानूनन जायदाद में कोई हक़ नहीं, बच्चों कोभी कोई हक़ नहीं, नियोग करने वालों को हिन्दू कानून के अनुसार सज़ा हो सकती है। फिर आर्य समाजी लोग स्वयं भी मनुस्मृति की माया में फँसे ही हैं। कहने को ये लोग जन्म से वर्ण व्यवस्था नहीं मानते, लेकिन रोटी वनाने वाले ब्राह्मण को महराज, पण्डित और शर्मा जी ही पुकारते हैं। न पुकारने की हिम्मत ही कहां है ? मनुस्मृति की मोहमयी माया ने तो मोह लिया है। देखिये—आर्य समाजियों

के रजिस्टरों को, प्रायः सर्वत्र जन्म मूलक वर्णव्यवस्था के आधार पर नामों से पूर्व पण्डित, ठाकुर, लाला और महाशय मिलेगा। चाहे पण्डित लिखा जाने वाला कपड़ेकी दूकान करता हो या सट्टेबाज। और चाहे गवर्नमेण्ट की गुलामी। लेकिन हैं शुक्ल, शर्मा और वाजपेयी। इसी प्रकार एक कालेजका त्यागी विद्वान् प्रोफ़ेसर पण्डित नहीं कहलायेगा वही लाला, गुप्ता या सेठ; क्योंकि आर्य समाज कोरा सिद्धान्तवादी फ़िर्का है। बेचारे शूद्र कुलोत्पन्न महाशयों की तो सर्वत्र शामत ही है। चाहे शास्त्री हो जायं और चाहे एम० ए०, रहेंगे वही 'पद्भ्यां शूद्रो-अजायत' कहिये कैसा मज़ाक गुण कर्म की वर्णव्यवस्था का इन लोग ने किया हुवा है। करें भी क्या जब मनुस्मृति का माया जाल और पुरोहितों का पाखण्ड सर्वत्र प्रसरित है। प्रचलित वैदिक सन्ध्या तक तो बेचारी इनके षड्यन्त्र से बचने नहीं पाई। अच्छा पढ़िये—

"ओं वाक् वाक्। ओं प्राणः प्राणः। ओं चक्षुः चक्षुः। ओं श्रोत्रं-श्रोत्रम्। ओं नाभिः। ओं हृदयम्। ओं कण्ठः। ओं शिरः। ओं बाहुभ्यां यशोबलम्। ओं करतल कर पृष्ठे॥

कहिये! कहीं आया पांव का जिक्र। न चाहिये पांव को यश और न बल। सब चाहिये शिर, हाथ, हृदय और नाभि को। क्यों जी! यह क्या हुआ? हुआ क्या—वही मनुस्मृति के

निर्माण करने वाले ब्राह्मणों का षड्यन्त्र। शिर का नाम अलग छिनाया और साथ में पांचों ज्ञानेन्द्रियों यथा आंख, नाक, आदि को भी याद कर लिया। बेचारे शूद्रों के प्रतिनिधि पैर रह गये। हमारी सम्मति में तो इस सिलसिले में यह एक वाक्य बढ़ाया जाना चाहिये; क्योंकि शूद्रों को उन्नत करने की भावना प्रतिदिन जगानी चाहिये। "ओं पद्भ्यां च तपो बलम्" अर्थात् मेरे पैरों में तप का बल होवे। तभी कल्याण है। तभी सामाजिक संगठन समताके आधारपर सुदृढ़ होसकताहै।

वेद में भी जब आया है कि 'तपसे शूद्रम्' और 'पद्भ्यां शूद्रो अजायत' तो इस वाक्य के बढ़ाने में ननु नच क्यों होना चाहिये? परन्तु वैदिक संध्या के ठेकेदार हमारी बात कब मानने लगे हैं; क्योंकि स्वामी दयानंद तो निर्भ्रांत थे न ??? हां! कई लोग यह कह बैठते हैं कि मार्जन मंत्रों में 'तपः पुनातु पादयोः' तो आगया है। परन्तु ध्यान रहे वहां दूसरा ही सिलसिला है। यश और बल के बटवारे में पांवों को भुला देना स्वाभाविक था; क्योंकि मनुस्मृति आदितो शूद्रों को सब प्रकार से पद दलित करना चाहती ही थीं। एवं 'पुनातु' का अर्थ है पवित्र करे-सो पैरों को पवित्र करने की तो विशेष आवश्यकता है ही; क्योंकि पांव के प्रतिनिधि शूद्र सर्वत्र अपवित्र और अयोग्य माने गये हैं। मनुस्मृति की दृष्टि में तो शूद्र से गन्दी कोई चीज ही नहीं है। मनुस्मृति

में 'शूद्रवत् बहिष्कार्यः' अर्थात् शूद्र की तरह बाहर निकालने योग्य (बायकाट) करने योग्य—ऐसा बहुतायत से आया है ? जब शूद्र को बायकाट के योग्य समझा गया है—तब फिर उसको सब संस्कारों में से निकाल देने में क्या आश्चर्य है ? शूद्र के लिये मुण्डन नहीं, शूद्र के लिये जनेऊ नहीं, शूद्र के लिये अन्नप्राशन नहीं। यहां तक कि शूद्र के लिये 'दण्ड धारण' का भी विधान नहीं—चाहे कुत्ता काट खावे और सांप डस जावे। हां! एक संस्कार में मनुस्मृति ने शूद्रों को अवश्य सम्मिलित किया है और वह है नामकरण। मनुस्मृति के षड्यंत्रकारी द्विजों को भयङ्कर विभीषिका हुई कि कहीं शूद्र लोग अपने नाम हमारे जैसे सुन्दर और सुबोध न रख लेवें। शर्मा वर्मा अपने लिये और शूद्र को दास (गुलाम) बनाया। मनुस्मृति में शूद्रों के नामों के लिये लिये लिखा है कि—'शूद्रस्य तु जुगुप्सितम्' और 'शूद्रस्य प्रेष्य संयुतम्' अर्थात् शूद्र का नाम निंदा से भरा हुआ, घिनौना और दास वाला रखे। जैसे पलटूदास (जो अपने वायदों से पलट जावे) घसीटूदास (जो घसीटने के योग्य हो) और रणछोड़दास (जो दुम दबा कर भाग जावे) ठीक है नाम रखने वाले ब्राह्मण—जैसा चाहा कानून बनाया और जैसा चाहा नाम रख दिया। इसीलिये आज हमारे देश में अछूतों के नाम सांवलदास, गुलामदास और मथुरादास

हैं। ब्राह्मण बने हैं मथुराप्रसाद शर्मा और शूद्र बने हैं मथुरा-दास वर्मा-कैसी सनातन जोड़ी मिलीहै। बदे बनाये जन्म भरके लिये गुलाम मिलगये। आज कल अछूतों, कायस्थों और भंगिओं ने भी वर्मा लिखना शुरू किया है। न जाने कौन से महाद्वीप की रक्षा करने में ये लोग लगे हैं। बेचारा भारत तो गुलाम है। इन द्विजों ने शूद्रों के नाम बिगाड़े तो आज स्वयं निन्दित नाम वाले होगये और अपने देश का नाम भी डुबो बैठे। कहां तो ये थे आर्य्यावर्त्त के आर्य्य और अब होगये इण्डिया के हिन्दू। देखिये ऊंट के गले में कैसी बकरी बंधी। इधर इण्डिया होगया उधर हिन्दू। जैसा अब तक किया वैसा फल पा लिया। अब आगे क्या होगा यह भगवान् जाने ??? यदि इसीप्रकार मनुस्मृति की मनमानी चलती रही तो न रहेंगे हिन्दू और न रहेगा हिन्दुस्तान। यहां तो अरब के मोहम्मद और ऑक्सफोर्ड के मैकन्जी साहब तशरीफ़ लायेंगे।

और सुनिये—आर्य्यसमाजी लोग मनुस्मृति में प्रक्षेप मानते हैं। ठीक है—इनसे पूछिये आप भागवत को क्यों नहीं मानते, आप गीता को क्यों नहीं मानते और आप रामायण को क्यों नहीं मानते ? तो झट कह देंगे कि सत्यार्थ-प्रकाश में स्वामी दयानन्द ने लिखा है कि—

'असत्य मिश्रितं सत्यं दूरतःत्याज्यम्'। अर्थात् झूंठ से

से मिले सच को दूर से ही प्रणाम करना चाहिये। और—'विषसम्पृक्तं अन्नं त्याज्यम्' अर्थात् विष मिलेहुए बढ़िया भोजन को भी फेंक देना चाहिये। इसी कसौटी पर आप 'मनुस्मृति' को कसिये। बस—यहां गाड़ी अटक जायेगी। यहां ये लोग 'वेदानुकूल' का झगड़ा खड़ा करदेंगे। देखिये! पहिले तो वेदों का ही पता किसी को नहीं। सम्पूर्ण वेदों के प्रामाणिक भाष्य भी अभी तक नहीं मिलते, फिर अर्थों का निर्णय नहीं हुवा और निर्णय करने वाले भी अभी कोई नहीं भये। तब 'वेदों के अनुकूल या प्रतिकूल' कह देना क्या कोई खेल है?

फिर बहुत सी बातें मनुस्मृति की बिलकुल मन घड़न्त हैं। जिन बातों का वेदों में नामोनिशान नहीं उनका फैसला कैसे होगा? सुनिये—वर्ण संकर का झगड़ा वेदों में नहीं हैं, आठ प्रकार के विवाह वेदों में नहीं हैं, अनुलोम प्रतिलोम का प्रपञ्च वेदों में नहीं और इसी प्रकार शर्मा वर्मा का गोरख-धंधा वेदों में कतई नहीं है। सच पूछिये तो इन ऊपर की बातों के लिये ही तो मनुस्मृति बनी थी। प्रचलित वर्णव्यवस्था का जाल बिछाने के लिये ही मनुस्मृति 'अथ से इति' तक घड़ी हुई है। तभी तो पहिले अध्याय के प्रथम श्लोक में ही लिख दिया है—

भगवन्! सर्व वर्णानां यथावद् अनुपूर्वशः।
अन्तर प्रभवाणां च धर्मान्नो वक्तुमर्हति॥

अर्थात् हे ऋषिवर ! सब वर्णों और अनुलोम प्रतिलोम विवाहों से उत्पन्न वर्ण संकरों के धर्मों को क्रमशः कहिये। बस—शुरू हुई वर्णव्यवस्था। सारी मनुस्मृति में ब्राह्मणों का आधिपत्य सिद्ध किया गया है। सर्वत्र ब्राह्मण मुनाफ़े में हैं और शूद्र घाटे में। शायद संसार की किसी भी कानूनी किताब में इतना अन्याय नहीं भरा है जितना मनुस्मृति में है। सुनिये—

शक्तेनापि हि शूद्रेण न कार्यो धन संचयः।
शूद्रो हि धनमासाद्य ब्राह्मणानेव बाधते॥१०।१०६

अर्थात् शूद्र यदि धन कमा भी सके तो न कमाने पावे; क्योंकि शूद्र धन पाकर ब्राह्मणों को ही सतावेगा। हां ! अपने समाचार-पत्र निकाल लेगा, अपने पक्ष की किताबें लिख लेगा और धन के कारण समाज में प्रधान बन बैठेगा !!! ठीक है। मनुस्मृति ने तो धृति क्षमा आदि दश लक्षणों से भी शूद्र को वंचित कर दिया है। लिखा है—'द्विजैः दश लक्षणको धर्मः सेवितव्यः।' बेचारा शूद्र सच भी न बोले, ब्रह्मचर्य भी न पाले-यों ही नष्ट हो जावे। ठीक है भाई मनुस्मृति में लिखा था ही कि

उत्पत्तिरेव विप्रस्य मूर्त्ति धर्मस्य शाश्वती।
स हि धर्मार्थ मुत्पन्नो ब्रह्मभूयाय कल्पते॥

अर्थात् ब्राह्मण पैदा होते ही (जन्म से है गुण कर्म से नहीं) धर्म की मूर्ति होता है। तभी अब तो नये नये तरीक़ों से

जन्म के जादू को जमाया जा रहा है। देखिये—आर्य समाजिओं के सुप्रसिद्ध सामवेद भाष्यकार और मनुस्मृति टीकाकार श्री तुलसीराम स्वामी के यहां प्रकाशित 'विष्णुस्मृति' का हम आपको दिग्दर्शन कराते हैं। यह पुस्तक हमने एक प्रसिद्ध आर्यसमाज के भवन के अन्दर एक आर्य-पुस्तक विक्रेता से खरीदी थी। इस स्मृति में जहां जहां इन कल्पित स्वामी जी को पसन्द नहीं था कुछ कुछ लिख भी दिया है। जहां इनको खूब पसन्द आया है वह हम लिखते हैं—'ऋतौ ऋतौ तु संयोगाद् ब्राह्मणो जायते स्वयम्' इसका अर्थ किया गया है कि ब्राह्मण प्रत्येक ऋतु पर स्वयं (पुत्र रूप से) उत्पन्न होता है। यह है आर्य समाज के उन पोप पण्डितों की दशा जो मनुस्मृति में से प्रक्षेप निकालने चले थे और अभी पुत्र रूप से ही ब्राह्मण मानते हैं। इनकी मनुस्मृति में प्रक्षेप लीला भी बड़ी विचित्र है। सैकडों श्लोकों को इन्होंने खूब फिट किया है और शूद्रों की शामत ली है। क्यों न हो—जब आप स्वामी (मालिक) हैं। यह स्वामी भी आप जन्म के हैं। बिना संन्यास लिये ही स्वामी कहलाये। इन्होंने मनुस्मृति को रक्षार्थ भागीरथ प्रयास किया है परन्तु मनुस्मृति का प्रक्षेप निकल नहीं सका।

भाई! प्याज का छिलका उतारते २ रहेगा ही क्या? मनुस्मृति का तो आधार ही जन्म मूलक है। शूद्रों की दलना

और ब्राह्मणों को दिलाना ही जिस पोथी का परम और चरम उद्देश्य हो—उसमें काट छांट करना व्यर्थ है। ब्राह्मण का सब से विशिष्ट लक्षण दान लेना है। बाकी काम तो क्षत्रिय और वैश्य भी करते हैं। तिस पर तारीफ़ यह कि हाथ पसार कर भी सब बड़े ब्राह्मण ही रहे। तभी तो कहा है—"वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः" और मनुस्मृति ने शिल्पी नीच बता दिये तभी शिल्पी शूद्र हो गये और इसी लिये भारत से शिल्प उड़ गया। देखिये! कुछ नमूने मनुस्मृति के—

(१) ब्राह्मणों की आज्ञा न मानने से, शिल्प व्यवसाय करने से, शूद्र सन्तान से खेती तथा राजा की नौकरी से कुल पतित होते हैं।३।६३॥

(२) लोहार, निषाद, तमाशबीन, सुनार, बांस का काम करने वाले, शस्त्र बेचने वाले, कलाल, धोबी, रंगरेज, और कुम्हार पतित हैं। द्विज इनके यहां भोजन न करे।४।२१५।

(३) बढ़ई का अन्न सन्तति का नाश करता है। सुनार का आयु को। वैद्य का अन्न पीपके समान और सूद लेने वाले का अन्न विष्ठाके समान है।

४।२१८।२१९॥

कहिये! किस खूबी से यजुर्वेद अ० ३० में बताये सभी पेशों को मनुस्मृतिकार ने खत्म कर दिया। जिस खेती के लिये ऋग्वेद की आज्ञा है कि—

"अक्षैः मा दीव्य कृषिमित् कृषस्व" अर्थात् हे मनुष्य! जुआ मत खेल और खेती ही कर—उसके लिये मनुस्मृति

के शूद्र विध्वंसकारी १० वें अध्याय में लिखा है कि— 'कोई कहते हैं कि खेती अच्छी है किन्तु वह वृत्ति साधुओं से निन्दित है।' इसीलिये इस कृषि प्रधान देश के कृषिकार भी 'शूद्र' बनाये गये। वैसे वैश्यों के लक्षण में 'वणिक्पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिमेव च' दिया है—तोभी कृषि को नीच बता दिया। फिर शूद्र का लक्षण तो बड़ा विचित्र है। क्यों न विचित्र हो ? जिस लक्षण के लिये सारी मनुस्मृति का षड्यन्त्र ब्राह्मणों ने द्विजों के साथ मिल कर किया था। उसी शूद्र के लिये लिखा है —

एकं एव तू शूद्रस्य प्रभुः कर्म समादिशत्।
एतेषामेव वर्णानां शुश्रूषा मनसूयया ॥

अर्थात् शूद्र के लिये (एकं एव) एक ही काम प्रभु की तरफ़ से सौगात की तरह मिला है कि इन सब वर्णों की सेवा करता रहे। देखिये—प्रभु ने तो वेद द्वारा 'तपसे शूद्रम्' की आज्ञा दी अर्थात् शूद्र तपस्या के लिये है—परन्तु स्वार्थी लोगों ने शूद्रों को पैर से पैदा करके अपने ही पैर दबवाये। वेदों के अनुसार जो वर्ण-व्यवस्था (कर्म विभाग) है-उसमें ब्राह्मण आदि के क्या लक्षण हैं ? यह हम विस्तृतरूप से अपनी 'वैदिक वर्णव्यवस्था' पुस्तक में लिखेंगे। अभी इतना ही लिख कर समाप्त करते हैं कि 'अध्यापन मध्ययनं' आदि ब्राह्मणों के जो लक्षण हैं ये सब मनमाने हैं। एक प्रोफ़ेसर वेतन के

लिये ही पढ़ाता हुआ वैश्य है और एक साबुन का दूकानदार ब्राह्मण हो सकता है। यह तो सत्व, रज, तम, के उत्कर्ष और अपकर्ष के साथ सम्बन्ध रखता है। आजकल मनुस्मृति के इन वेद विरोधी लक्षणों द्वारा घोर अनर्थ हो रहा है। इसमें तो आमूलचूल परिवर्तन करना होगा। बहुत से लोग इस व्यथा में पड़े हैं कि यदि वर्णव्यवस्था उड़ गई तो ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र का नाम भी न रहेगा और उनके प्रकाशक शर्मा वर्मा भी समूल नष्ट हो जायंगे। उनको हम बतला देना चाहते हैं कि जब समय आयगा तब स्वयं वेदोक्त-वर्णव्यवस्था (कर्म विभाग) क़ायम हो जायगी। एवं गुण कर्म के प्रकाशक 'ज्ञानी, मानी, दानी और तापस' यह चारों वेदोक्त शब्द स्वयं प्रचलित हो जायंगे। हमें तो अभी एक दम क्रांति का आवाहन करना पड़ेगा। चारोंतरफ़ क्रान्ति का बिगुल बजाना पड़ेगा; क्योंकि बिना उथल पुथल किये अछूतों और शूद्रों का कल्याण असम्भव है। चिरकाल से ये लोग सताये जारहे हैं। फलतः धर्म, कर्म, राजनीति, आचार, एकता, विद्या, कलाकौशल सब नष्ट भ्रष्ट हो गया है। अब सारे देश में आलस्य, कूट, स्वार्थपरता, जन्माभिमान, कायरता और अनुदारता का दौर दौरा हो गया है। यह अत्याचार और अन्याय अब घोर क्रान्ति के बिना नहीं मिट सकता। संसार कहाँ पहुँच गया लेकिन हमारे देश में अभी अछूतों

को कुवे पर न चढ़ने देने के लिये शास्त्रार्थ हो रहे हैं। क्या ऐसे लकीरपन्थी और कल्पित शास्त्रों की दुहाई देने वाले हिन्दू या आर्य कभी उन्नति कर सकते हैं ???

सुनिये—यह वर्णव्यवस्था नहीं है, यह तो मरण व्यवस्था है। हिन्दू जाति में घुसा हुआ तपेदिक़ है। मानसिक गुलामी की जंजीर है। इसलिये इस जंजीर के टुकड़े टुकड़े करके वर्णव्यवस्था का भण्डा फोड़ना होगा। यह काम अब बूढ़ों से नहीं होगा वे तो किसी न किसी कल्पित धर्म के बाडे में बन्द हो चुके हैं। यह क्रान्तिका शंख तो देश के नौनिहाल नवयुवक ही फूंकेंगे। नवयुवक ही देश को रसातल में जाने से बचावेंगे। नवयुवक ही देश को मुल्ला पण्डितों के पाखण्ड से छुड़ावेंगे। सर्वत्र क्रांति हो! क्रांति की विजय हो!! और क्रांति अमर हो !!! इसीलिये हम कहा करते हैं—

उठो नौजवानो! बदल दो ज़माना।
करो बन्द ज़ुल्मों को तुम आज़माना॥
ज़मी को बदल दो ज़मा को बदल दो।
बदल दो सभी ढोंग अब ये पुराना॥
मकीं को बदल दो मकां को बदल दो।
बदल दो छुआछूत का कुल बहाना॥
दुआयें बदल दो सदायें बदल दो।
बदल दो जनम जातिओं का बताना॥

———:o:———

नवयुवको !

हमारी आशा को पूर्ण करो। मनुस्मृति आदि शास्त्रों की दुहाई देने वालों के जाल में मत फँसो। इन शास्त्रों ने तो वेदों का महत्व कम कर दिया है। इसलिये पूरे जोश के साथ क्रांति का बिगुल बजादो और सामाजिक बहिष्कार का स्वागत करते हुए इस वर्णव्यवस्था को एकदम मिटादो। देखिये–

किस काम की नदी वो जिसमें नहीं रवानी।
जब जोश ही नहीं तो किस काम की जवानी॥

इसलिये–

कोई समर न रह जाय जहां में।
मिला दो इस ज़मी को आसमां में॥

महात्मा गाँधी ने भी लिखा है कि—The most effective, quickest and the most unobtrusive way to destroy Cast is for reformers to begin the practice with themselves and where necessary take the consequences of social boycott.

ओ३म् । क्रान्तिः। क्रान्तिः। क्रान्तिः॥
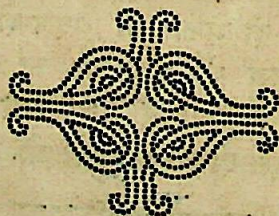
वर्ण व्यवस्था या मरण व्यवस्था

अहा ! कैसी वह सत्य सुन्दर घड़ी थी ।
कि जब वेद विद्या की इज्ज़त बड़ी थी ॥
लड़ी प्रेम की सबके दिल में पड़ी थी ।
तभी सम्पदा हाथ जोड़े खड़ी थी ॥
मनुष्यों में था मेल आपस में भारी ।
दुखी सब के दुखसे सुखों से सुखारी ॥
वह रहते थे सबके सभी नर औ, नारी ।
न थी ऊँच औ, नीच की रस्म जारी ॥
मगर जब हुआ ह्रास विद्या का प्यारे ।
तो प्रसरित हुए पंथ याँ न्यारे न्यारे ॥
उदय हो गया चार वर्णों का भाई ।
विषमता ने आ धाक अपनी जमाई ॥
बने ब्राह्मण वैश्य क्षत्री औ, नाई ।
गई फूट की खुद परस्पर में खाई ॥
बताने लगा एक को एक नीचा ।
परस्पर के व्यवहार से हाथ खींचा ॥
गई छूट आपस की सब रोटी बेटी ।
समझने लगे ऐसा करने में हेटी ॥

अलग दायरा सबने अपना बनाया।
बने संकुचित प्रेम सारा भुलाया ॥
जलन सबके पैदा हुई छातिओं में।
गये बट हज़ारों ही उपजातियों में ॥
कोई कानकुब्ज औ, कोई है तिवारी।
कोई शुक्ल चौबे दुबे नाम धारी ॥
कोई वाजपेयी कोई वेद पाठी।
कहीं गौड़ औ, दाहिमा लेके लाठी ॥
कहे—हम बड़े हैं सभी हमसे छोटे।
फिर यूँ काश्मीरी कहे–सब ये खोटे ॥
कहे शाक द्वीपी कहे सरयू पारी।
'जो मुझको कहे नीच आवे अगाड़ी' ॥
इसी भाँति हैं क्षत्रियों में भी ज़ाते।
रहा फेंक है एक पै एक लातें ॥
न पूछिये बनियों की जो दुर्दशा है।
चढ़ा क़ौम अपनी का सबको नशा है ॥
कोई अग्रवाल औ, कोई ओसवाल हैं।
कोई पोरवाल औ, कोई जैसवाल है ॥
कोई है तिसैनी कोई है चौसेनी।
कोई देखो दस्सा कोई है पचैनी।
कोई देखो पद्मावती कोई जैनी।

कोई कहता विश्नोई कोई सुखैनी ॥
इसी भांति का शूद्रों में भी क़िस्सा ।
पड़ा इनमें भी ऊँची नीची का हिस्सा ॥
अगर एक हो उसको तो रोया जावे ।
कहाँ तक विषम मैल को धोया जावे ॥
कोई एक का एक छूआ न खाता ।
नहीं एक को एक देखे सुहाता ॥
हरेक अपनी २ हो ढपली वजाता ।
हरेक अपना २ अलग राग गाता ॥
न होते शुरू में अगर वर्ण जारी ।
तो शायद न होती कभी ऐसी ख़्वारी ॥
बना करता है बीज से वृक्ष जग में ।
यह है बात सच्ची रुकावट न मग में ॥
अगर चार वर्णों को हम बीज माने ।
तो यह जातियाँ वृक्ष उसका बखानें ॥
यह है बात निश्चित अगर यह न होते ।
तो आज़ादी का आज रोना न रोते ॥
नहीं फूट का बीज आपस में बोते ।
नहीं हाथ से माल औ, राज खोते ॥
अगर रहते मिलकर न होती लड़ाई ।
तो क्यों आके करते विदेशी चढ़ाई ॥

हुई हानि इतनी कहाँ तक सुनावें।
हुए ज़ुल्म इतने कहाँ तक गिनायें॥
मगर फिर भी दो चार दे दूँ मिसालें।
कृपा करके अन्दाज़ा उनसे लगा लें॥
यही वर्ण चारों लड़ाई के घर हैं।
इन्हीं से कटे आर्य जाती के पर हैं॥
यह यूं तो सभी जातिओं को क़हर हैं।
मगर ख़ास कर शूद्रों को ज़हर हैं॥
रखी ब्राह्मणों पै महर की नज़र है।
करें आड़ इसकी में अपनी गुज़र है॥
परशुराम की बात सब जानते हैं।
जो क्षत्रियों के नाश की ठानते हैं॥
किया एक क्षत्रिय ने अपराध भारी।
तो गुस्सा सभी क्षत्रियों पर उतारी॥
परशुराम थे ब्राह्मण यानी ऊँचे।
इसी से किये नष्ट क्षत्री समूचे॥
इसी ही तरह राम की लो कहानी।
जो थे वीर क्षत्री सदाचारी ज्ञानी॥
अयोध्या थी जिनकी सुभग राजधानी।
पिये शेर बकरी जहां घाट पानी॥
उन्ही राम ने शूद्र शम्बुक को मारा।

कि बेदर्दी से शीश उसका उतारा ॥
था अपराध इतना ही वह था तपस्वी ।
अहिंसक सदाचारी ज्ञानी मनस्वी ॥
मगर शूद्र था बस यही इक जलन थी ।
थी क़ीमत नहीं इस लिये उसके तन की ॥
कहा—"शूद्र को ना तपस्या का हक़ है"
इसी से लिया काट सर बेधड़क है ॥
कहो राम ने न्याय कैसा किया था ।
भगत शूद्र से कैसा बदला लिया था ॥
इसी भाँति की कर्ण की लो कहानी ।
जो अत्यन्त बलवान था स्वाभिमानी ॥
मगर सूत का पुत्र था वर्ण हीना ।
इसी से नहीं द्रोपदी ब्याह कीना ॥
कहा—'इसको हर्गिज़ नहीं मैं वरूँगी ।'
"कभी सूत सुत से न शादी करूँगी ॥"
किया कैसा अपमान ज्ञानी कर्ण का ।
था उसके लिये प्रश्न जीवन मरण का ॥
कहां तक मैं इतिहास इसका सुनाऊँ ।
बहुत सा समय चाहिए सबको गाऊँ ॥
हमें तो यहां बस दिखाना यही है ।
कि वर्णों का कोई ठिकाना नहीं है ॥

यह है हिन्दू जाती के दुख की निशानी।
बढ़े इससे ज़्यादा कुटिल औ, गुमानी॥
हरेक ने अलग ही अलग तानी।
दिया योग्यता कर्म पर फेर पानी॥
सुना है कि था वर्ण पहले करम पर।
न था जन्म से कोई था शुभ मरम पर॥
हर इक दृढ़ व्रती था बशर निज धरम पर।
न था काले या गोरे के कुछ चरम पर॥
पता है नहीं कौन था ऐसा टायम।
जो थे वर्ण गुण कर्म के बल पर कायम॥
अगर थे भी तो भी हुई क्या भलाई।
या नाहक़ में यूं ही व्यवस्था चलाई॥
सिवा इसके हर इक बना वे वफ़ा है।
कहो न्याय से औ, हुआ क्या नफ़ा है॥
चहे जन्म से मानो चाहे करम से।
नहीं कुछ भलाई अगर पूछो हमसे॥
है जब से गया जन्म से वर्ण माना।
न तब से रहा कुछ दुखों का ठिकाना॥
है अफ़सोस दो शब्द जिनको न आते।
वे भी 'इण्डिया' में हैं पण्डित कहाते॥
करें रात दिन में काम बावर्ची वाला।

उन्हें भी तो ब्राह्मण कहा जाता आला ॥
इसी ही तरह के हैं ठाकुर औ, लाला ।
गया है अक़ल का निकल के दिवाला ॥
चहे शूद्र कितना ही विद्वान् होवे ।
रहे नीच अपनी युंही आयु खोवे ॥
कहो—क्यों न फिर दुर्दशा ऐसी होवे ।
भारत माँ पराधीन हो क्यों न रोवै ॥
है अफ़सोस खाईं हजारों ही ठोकर ।
मगर फिर भी जागे नहीं हाय ! सोकर !!
रहे रास्ते में वही काँटे बोकर ।
कि जिससे हुआ क़ौम का हाल अबतर ॥
यह निश्चित है गर वर्ण क़ायम रहेंगे ।
हमेशा सहे दुख औ, आगे सहेंगे ॥
मैं कहता हूँ सबसे इसे नोट करलो ।
यह है सत्य बिल्कुल हृदय बीच रखलो ॥
जो चाहो भला सबको इन्सान जानो ।
किसी को नहीं ब्राह्मण शूद्र मानो ॥
सभी को तुम सन्तान प्रभु की बखानो ।
हैं सब भाई भाई यही दिल में ठानो ॥
बनो सबके सेवक यही फ़र्ज़ आला ।
करो स्वार्थ का मुँह सभी मिलके काला ॥

नहीं सेवा कुछ शूद्र का ही करम है।
मनुषमात्र का करना सेवा धरम है ॥
नहीं शूद्र कोई करम जिसका सेवा।
इसे जो करेगा वह पायेगा मेवा ॥
अगर शूद्र का है करम सेवा करना।
तो इस दृष्टि से हैं सभी शूद्र वरना—
बताओ—कि सेवा से है कौन खाली।
या यूँ ही टिकट दे रखा सबको जाली ॥
कोई करता बल से कोई करता धन से।
कोई ज्ञान से कोई करता बदन से ॥
है सबका तरीक़ा अलग सबकी ताक़त।
जुदा है सभी की नज़र और लियाक़त ॥
न समझो मैं हूँ ऊँचा औ, यह है नीचा।
उजड़ जायगा इससे सारा बग़ीचा ॥
गई इससे लुट सारी रत्नों की थैली।
इसी से ही जग में छुआछूत फैली ॥
इसी से रही आज रुपया की धेली।
गयें अन्य कौमों के बन चेला चेली ॥
इसी से नहीं संगठन है तुम्हारा।
सदा फूट की बहती रहती है धारा ॥
जो हो चोर ज्वारी या हिंसक शराबी।
चुग़लखोर व्यभिचारी हो या कबाबी ॥

वही नीच है ऐसा सिद्धांत धारो।
जहां तक हो उसकी ख़राबी सुधारो॥
यह सब त्रुटियाँ हैं दुखों की निशानी।
समाज और बल को सदा इससे हानी॥
पहुँचती है इसमें नहीं कोई शक है।
इन्हें दूर करना सदा सबका हक़ है॥
मगर वर्ण से ऊँचा नीचा न मानो।
भले औ, बुरे कर्म से वैसा जानो॥
मगर यह हमेशा रखो ध्यान में तुम।
कि भूलो न ईश्वर को अभिमानमें तुम॥
नहीं कोई भी ग़लतिओं से बरी है।
कि यह भूल हिस्से में सबके पड़ी है॥
अगर भूल या ग़लतिआं हो किसी से।
तो दो दूर करने का मौक़ा खुशी से॥
न माने तो उसको उचित दण्ड दीजे।
व्यवस्था व्यवस्थित इसी भांति कीजे॥
बिला हीलो हुज्जत इसे मान लीजे।
यह नुस्ख़ा है 'गोपाल' का छान पीजे॥
विषम रोग कट जांयगे सब तुम्हारे।
सभी गीत फिर गाँयगे यह तुम्हारे॥
"कि विद्याओं का देश भारत गुरू है।"
"हुआ ज्ञान का बस यहीं से शुरू है"॥

रचयिता— सिद्धगोपाल आर्यकवि
(अजीतमल, इटावा-निवासी)

—————:०:—————

श्री दयानन्द भारती विद्यालय,

अजीतगंज-कानपुर
की
पांच-विशेषतायें

(१) इस विद्यालय में निःशुल्क शिक्षा दी जाती है। यद्यपि भोजन व्यय के लिये पांच रुपया मासिक लेने का नियम हैं-तो भी निर्धन विद्यार्थियों को भोजन आदि भी विद्यालय की ओर से दिया जाता है।

(२) सब विद्यार्थियों के साथ समान वर्ताव किया जाता है। प्रचलित वर्णव्यवस्था (जातपांत) के आधार पर कोई ऊँच-नीच का भेद भाव नहीं रखा जाता है।

(३) विद्याध्ययन के अतिरिक्त कुछ शिल्प की शिक्षा भी दी जाती है—ताकि विद्यार्थी गण स्वावलम्बी बन सकें।

(४) विद्यालय का पाठ्यक्रम इस प्रकार का रखा गया है कि पांच वर्ष में विद्यार्थी 'धर्म-विशारद' परीक्षा के साथ संस्कृत में प्रथमा और केवल अंग्रेजी में मैट्रिक पास करले; क्योंकि इस विद्यालय का मुख्य उद्देश्य धार्मिक, सदाचारी और स्वावलम्बी उपदेशक व प्रचारक उत्पन्न करना है! इसीलिये मैट्रिक या प्रथमा में वे ही छात्र सम्मिलित हो सकते हैं जो पहिले 'धर्म-विशारद' का 'प्रमाण-पत्र' प्राप्त करलें।

(५) चौथी कक्षा उत्तीर्ण अविवाहित विद्यार्थी जिनकी आयु १० से १६ वर्ष तक हो, प्रविष्ट किये जाते हैं—परन्तु मिडिल या प्रथमा पास विद्यार्थियों को तरज़ीह दी जाती है।

विशेष जानने के लिये जवाबी पत्र व्यवहार करना चाहिये।

पताः—डा० फ़क़ीरेराम I. M. D. संस्थापक,

श्री दयानन्द भारती विद्यालय, मेस्टनरोड-कानपुर.

इस विद्यालय के संस्थापक विद्याप्रेमी श्री डाक्टर फ़क़ीरेराम जी I. M. D. हैं—जिन्होंने यह अपना १५ हज़ार का बंगला विद्यालय के लिये धर्मार्थ दे रखा है।

(स्थापित—सितम्बर १६१५ ई०)
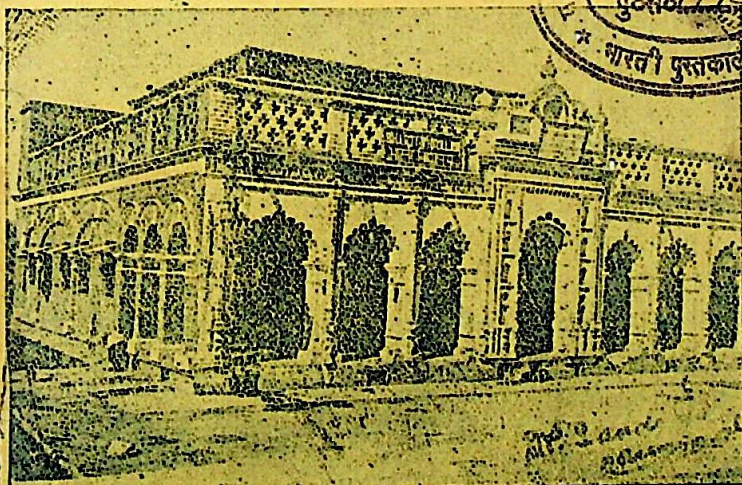
श्री दयानन्द भारती विद्यालय, कानपुर.

इस पुस्तक से जो कुछ भी आमदनी होगी, वह सब इस विद्यालय के लिये लेखकों ने प्रसन्नता पूर्वक भेंट की है।

एतदर्थ अनेक धन्यवाद हैं !

Only Cover Printed At The Khanna Press, Cawnpore.

युक्तप्रान्तीय वर्ण-व्यवस्था विध्वंसक संघ, के पदाधिकारी—

(दशास्मिन् सम्यानाधेहि, पतिमेकादशं कृधि.)

(१) सभापति—पूज्यपाद श्री १०८ स्वामी बोधानन्द महास्थविर (लखनऊ)

(२) उपसभापति—रा. सा० श्रीरामचरण एडवोकेट M. L. C. (लखनऊ)

(३) उपसभापति—पं० देवीदत्त आर्य, टैम्परेन्सप्रीचर (फतेहपुर)

(४) उपसभापति—डाक्टर धर्मप्रकाश, प्रधान यू. पी. डिप्रेस्ड क्लास लीग (बरेली)

(५) प्रधानमन्त्री—भगत दयालदास, प्रधान, आर्य-समाज, कुलीन बाज़ार (कानपुर)

(६) प्रचारमन्त्री—भिषगाचार्य श्री ईश्वरदत्त मेधार्थी विद्यालंकार (गुरुकुल-कांगड़ी)

(७) प्रबन्धमन्त्री—पं० रामस्वरूप शास्त्री, आचार्य, श्री दयानन्द भारती विद्यालय (कानपुर)

(८) अन्तरंग-सदस्य—प्रो० रामविहारीलाल शास्त्री वेदतीर्थ, एम. ए. L. L. B. (कानपुर)

(९) श्री गौरीशंकर एम. ए. एल. एल. बी. (लखनऊ)

(१०) श्री लक्ष्मीनारायण बी. ए. एल. एल. बी. (झाँसी)

(११) श्री डा० फ़कीरेराम आई. एम. डी. (कानपुर)

वार्षिक १) 'प्रबन्ध-मंत्री' के पास भेजकर सदस्य बनिये।